

विशेषांक



पर्यावरण

अगस्त 2007

विकास को समर्पित मासिक

मूल्य : 20 रुपये



1857

1947

2007

1857

क्रांति के केंद्र

वर्तमान अंतरराष्ट्रीय
सीमा
क्रांति के केंद्र •



आवरण पृष्ठ की कलाकृति :

शीर्षक : दि राइजिंग

चित्र : सतीश गुजराल

विषय : कंटीले अवरोधों में फौजा मुकित के लिये संघर्षित आदमी



वर्ष : 51 अंक 5

अगस्त 2007 श्रावण-भाद्रपद, शक संवत् 1929

योजना

कुल पृष्ठ : 108

प्रधान संपादक
अनुराग मिश्रा

कार्यकारी संपादक
राकेशरेणु

सहायक संपादक
रमेश कुमारी

संपादकीय कार्यालय

कमरा नं. 538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23096738, 23717910
23096666/2508, 2511
टेलीफँस : 23359578
ई-मेल : yojana@techpilgrim.com
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजूमदार

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516

आवरण चित्र - सतीश गुजराल

आवरण सज्जा - आशा सक्सेना

इस अंक में

● आर्थिक संकेतक	-	2
● संपादकीय	-	3
● परिचय	सव्यसाची भट्टचार्य	5
● दादाभाई नौरोजी और अपवहन मिन्दांत	विपिन चंद्रा	11
● अंग्रेजी राज में भारतीय उद्योगों का विनाश	स्मृतिकुमार सरकार	19
● प्रयाण गीत : बागी फैजियों का कौमी गीत	अजीमुल्ला खां	22
● प्रयाण गीत : कदम कदम बढ़ाए जा	-	22
● 1857 और संचार तंत्र	अरविंद कुमार सिंह	24
● कामगारों के इतिहास की सतहें	अनिल चमड़िया	31
● 1857 : किसानों व दबले-कुचलों का संघर्ष	स्वतंत्र मिश्र	34
● कविता : 1857	गुलजार	37
● बिहार में 1857 का स्वाधीनता संग्राम	कुमार अमितेश रंजन अजय कुमार	39
● तराना-ए-हिन्दी की एक सदी	अबरार रहमानी	41
● भारत में नियोजन का विकास	राधवेंद्र चट्टोपाध्याय	43
● द्विटिश भारत और आजाद भारत में मानव विकास	अबुसलह शरीफ	47
● भारत का कृषि क्षेत्र में नियति से मिलन	एम.एस. स्वामीनाथन	59
● भारत को शिक्षा - कैसे?	माधव चवण	64
● भारत में बैंकिंग : पुनरावलोकन	ओ.पी. भट्ट	71
● आर्थिक विकास के 150 वर्ष : लंबा है रास्ता और मंजिल अभी दूर	नारायण एन.आर. बब्मूर्ति	79
● भारत की महान पैदावार	अजीम प्रेमजी	97
● 1857 पर पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक	श्याम सुशील	101

योजना हिन्दी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, डिंडिया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एंजेंसी आदि के लिये मनीआर्ड/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आडर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें :

व्यापार प्रबंधक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुराम, नयी दिल्ली-110 066 टेलीफँस : 26100207, 26105590

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. द्विवार्षिक : 180 रु.; त्रिवार्षिक : 250 रु.; विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश : 500 रु.; यूरोपीय एवं अन्य देश : 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जूली नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिये 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

आर्थिक संकेतक

संकेतक: आर्थिक		इकाइयां		2004-05		2005-06		2006-07 (अनु.)		2007-08 (प्रेषित)	
जनसंख्या (1 अक्टूबर तक)				1090		1107					
जीएनपी वर्तमान बाज़ार मूल्य पर		करोड़ रुपये		3104221		3542208					
जीडीपी वर्तमान बाज़ार मूल्य पर		करोड़ रुपये		3126596		3567177					
जीएनपी प्रतिव्यक्ति (वर्तमान मूल्य)		रुपये		28479		31998					
जीडीपी प्रतिव्यक्ति (वर्तमान मूल्य)		रुपये		28684		32224					
सकल खजकार्यांय हानि		अरब रुपये		1258		1464		1523		1509	
		जीडीपी का प्रतिशत		4.0		4.1		3.7		3.3	
मूल्य (आर्थिक औसत)											
थोक मूल्य सूचकांक (सभी सामग्रियां)		प्रतिशत परिवर्तन		6.4		4.4		5.4			
उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आई. कर्म, आम सूचकांक)		प्रतिशत परिवर्तन		3.8		4.4		6.7			
कृषि: उत्पादन											
खाद्यान		मि.टन		198.4		208.6		211.8			
मोटा अनाज		मि.टन		185.2		195.2		197.7			
चावल		मि.टन		83.1		91.8		91.1			
गेहूं		मि.टन		68.6		69.4		73.7			
दलहन		मि.टन		13.1		13.4		14.1			
तिलहन		मि.टन		24.4		28.0		23.3			
		प्रतिशत परिवर्तन		8.4		8.2		11.3			9
विदेश व्यापार											
निवात		मिलि. अमरीकी डॉलर		83501.6	102710.02		124514.0				
		प्रतिशत परिवर्तन		30.7	23		20.8				
आयात		मिलि. अमरीकी डॉलर		111471.5	142395.39		181221.0				
		प्रतिशत परिवर्तन		42.54	27.74		26.4				
विदेशी मुद्रा भंडार (स्वर्ण एवं एसडीआर को छोड़कर)		अरब अमरीकी डॉलर		135.6	145.1		191.9				
प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (शेयर अधिग्रहण सहित)		मिलि. अमरीकी डॉलर		6051	7722		17745				
		प्रतिशत परिवर्तन		40.0	27.6		129.8				
आर्थिक संकेतक : मासिक											
	इकाइयां	अप्रैल 2006	मई 2006	जून 2006	जुलाई 2006	अगस्त 2006	सित. 2006	अक्टू. 2006	नव. 2006	दिस. 2006	जन. 2007
मूल्य											
थोक मूल्य सूचकांक (सभी सामग्रियां)	1993-94=100	199	201.3	203.1	204	205.3	207.8	208.7	209.1	208.4	208.8
	प्रतिशत परिवर्तन	3.85	4.76	5.12	4.82	5.13	5.38	5.47	5.49	5.68	6.38
उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आई.डब्ल्यू. सी. सूचकांक)	आधार 2001-100	120	121	123	124	124	125	127	127	127	127
	प्रतिशत परिवर्तन	5.03	6.31	7.66	6.71	6.32	6.78	7.3	6.33	6.91	6.72
कृषि											
चावल भंडारण (जनरल पूल)	मि. टन	12.8	12.0	11.1	9.5	7.8	6.0	12.5	12.1	12.0	12.6
गेहूं भंडारण (वही)	मि. टन	9.0	9.3	8.2	7.3	6.7	6.4	6.0	5.6	5.4	5.1
दौषिण											
औद्योगिक उत्पादन सूचकांक	1993-94=100	225.2	237.9	234.4	235.5	234.8	243.5	234	247.8	263.7	265.5
	प्रतिशत परिवर्तन	9.9	11.7	9.7	13.2	10.3	12	4.5	15.4	13.42	11.6
ऊर्जा/बुनियादी ढांचा											
कोशला उत्पादन	मि.टन	31.5	33.1	32	31.1	29.1	29.2	33.6	36.4	39.5	42.2
	प्रतिशत परिवर्तन	3.4	8	11.9	10.9	0.6	-0.8	2.3	4.6	3	10
कच्चा तेल उत्पाद	मि.टन	2.75	2.86	2.81	2.86	2.7	2.81	2.93	2.82	2.92	2.9
	प्रतिशत परिवर्तन	-1.8	1	0.8	4.1	12.1	9.3	9.4	9.8	10.7	4.7
विद्युत उत्पादन	विलियन कि.वा.	53.4	55.6	53.5	53.8	54.3	54.4	57.5	52	59	58.4
	प्रतिशत परिवर्तन	5.9	5.1	4.9	8.2	4.3	11.7	10	5.2	12.9	8.5
रेलवे मालभाड़ा परिवहन	मि.टन	58.1	59.5	58.2	57.4	55.3	55.8	58.8	61.1	63.6	65.7
	प्रतिशत परिवर्तन	11	7.6	11	11.7	7.3	10.8	10	11	7.5	6.5

स्रोत: भारतीय अर्थव्यवस्था निगरानी केंद्र (सीएमआईडी), योजना आयोग में स्थित आई.क्यू.बी

संपादकीय

आ

ज से 150 साल पहले एक देश के रूप में भारत की स्थिति काफी भिन्न थी। दादाभाई नौरोजी, एम.जी. रानाडे और आर.सी. दत्त ने अंग्रेजों की आर्थिक नीति और भारत पर उनके प्रभाव का विश्लेषण कर बताया कि उनकी नीति भारत की अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की अधीनस्थ बनाने की है। अंग्रेजों की नीति वस्तुतः हमारी अर्थव्यवस्था को कमज़ोर और पिछलगू बनाने की थी। खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य की हालत खस्ता थी और अ-औद्योगीकरण ने पारंपरिक हस्तशिल्प को तहस-नहस कर डाला था।

आज का भारत अंग्रेज़ी औपनिवेशिक दासता की काली परछाई को पार कर चुका है। भारत का स्वाधीनता संघर्ष आर्थिक विकास का संघर्ष भी था। इस संघर्ष से हमारे नेताओं को भारत के आर्थिक विकास हेतु नीतियां निर्धारित करने की दृष्टि मिली। 1947 में स्वतंत्रता मिलने के उपरांत देश की अर्थव्यवस्था में गति आई। खासतौर पर 1991 से आर्थिक सुधारों के बाद यह गति और तेज़ हुई। आज भारत एक नयी कथा लिख रहा है।

लेकिन एक अरब से ज्यादा लोगों के इस देश में विकास के लाभ अब तक सभी नागरिकों को समान रूप से नहीं मिल पाए हैं। शिक्षण सुविधाओं की कमी, पीने के पानी की किल्लत, बच्चों का कुपोषण, खासतौर पर गांवों में स्वास्थ्य और सफाई की ख़राब स्थिति आदि ने भारत को सुविधासंपन्न और सुविधाविहीनों के रूप में के दो हिस्सों में बांट दिया है। कृषि की ख़राब स्थिति चिंता का सबब है। हालांकि सरकार यह कहती है कि आर्थिक सुधारों का 'मानवीय चेहरा' है, फिर भी ऐसा मानने वालों की तादाद बहुत बड़ी है कि सुधारों ने बहुलांश आबादी को छुआ तक नहीं, बल्कि उनके बगल से निकल गया है। इस परिदृश्य में 11वीं पंचवर्षीय योजना के सूत्र वाक्य 'तेज़ और समावेशी विकास की ओर' का महत्व बढ़ जाता है।

इस विशेष अवसर पर योजना ने पीछे मुड़कर देखने का फैसला किया है। विशेषांक को तीन भागों में बांटकर संयोजित किया गया है। पहले भाग में अंग्रेजी उपनिवेशवाद की आर्थिक समीक्षा है, दूसरे भाग में 1947 से लेकर आज तक भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख मुद्दों पर चर्चा है जबकि तीसरे भाग में भावी विकास की रणनीति पर निग़ाह डाली गई है। 1857 से लेकर अब तक के भारत के सफर पर हमने विशेषज्ञों के विचारों को शामिल करने का प्रयास किया है। विशेषांक के दो अन्य आकर्षण हैं - इसके कवर पर छपी चित्रकृति जिसे मूर्धन्य चित्रकार सतीश गुजराल ने तैयार किया है तथा गुलज़ार की कविता जो उन्होंने खास इस अवसर के लिये उपलब्ध कराई हैं।

योजना आगामी अंकों में भी भारत की शासन व्यवस्था और अर्थव्यवस्था से जुड़े मुद्दों के साथ-साथ 1857 के विभिन्न पहलुओं पर रोशनी डालती रहेगी। आने वाले साल और भी रोचक और उत्साहवर्धक होंगे और हमें उम्मीद है कि अब तक उपेक्षित रहे लोगों की भी सुध ली जाएगी। इसलिये भारत को जानने के लिये योजना पढ़ते रहें और भारत के लाज़वाब सफर की दास्तां जानने के लिये तैयार हो जाएं। □



जय हिन्द

150वीं वर्षगांठ का प्रतीक चिह्न

- 1857 - आज़ादी की पहली लड़ाई
- 1907 - शहीद भगत सिंह का जन्म वर्ष
- 1947 - भारत की स्वतंत्रता का वर्ष
- 2007 - उपरोक्त वर्षगांठों का आयोजन वर्ष

डिजाइन : ज्ञान सिंह ज्ञान, राष्ट्रीय हिपलोमा (फाईन आर्ट)

निदेशक : कला विभाग, आईएसई, वास्तु कला अकादमी, कृषि महाविद्यालय, मीडिया मंचार संस्थान

1857

1947

2007

परिचय

○ सव्यसाची भट्टाचार्य

सन् 1857 के दशकों के आर्थिक इतिहास पर क्रांति का गहरा प्रभाव था। आजादी के संघर्ष का उत्पव मनाते समय आज हम इस तथ्य को भूल जाते हैं। इस प्रभाव के सूत्र दो क्षेत्रों में खोजे जा सकते हैं : पहला, सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में और दूसरा, आम आर्थिक नीतियों के व्यापक क्षेत्र में। अंग्रेज़ों ने जिसे विद्रोह की संज्ञा दी, उसके तत्काल बाद भारत में अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा फौज़ पर किए जाने वाले व्यय में खासी बढ़ोतरी हो गई। 1858 में महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध उद्घोषणा द्वारा आरंभ हुई सरकार का सबसे बड़ा मद, कुल परिव्यय का 30 से 35 प्रतिशत, सेना पर होने वाला व्यय था। ऐसा क्यों कर हुआ?

1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज़ों ने वारेन हेस्टिंग्स द्वारा सालों पहले कही गई वह बात मान ली कि अंग्रेज़ों को भारत पर अपना नियंत्रण 'तलवार के बल पर' बनाए रखना होगा। खासतौर पर, अंग्रेज़ अधिकारियों का यह मानना था कि भारत पर अंग्रेज़ी आधिपत्य को 1857 में उत्पन्न होने वाले ख़तरे का कारण अंग्रेज़ी फौज़ में भारतीय सिपाहियों की तुलना में ब्रिटिश सैनिकों की काफी कम मौजूदगी थी। 1857 में यह अनुपात 1: 6 था। अनेक छावनियों में तो ब्रिटिश मूल के केवल गिनती के गोरे अधिकारी थे जबकि उनके मातहत लगभग सारे सैनिक 'देसी' थे। आंकड़े बताते हैं कि 1857 में जहां भारतीय फौज़ में सात में से केवल एक

सैनिक अंग्रेज़ था वही 1858 से 1860 की अवधि में इस अनुपात में अंग्रेज़ों के पक्ष में जबर्दस्त परिवर्तन देखा गया। भारतीय मूल के फौजियों की तुलना में उनका अनुपात बढ़कर 1:2 हो गया। तो पखाने जैसी कुछ इकाइयों को खासतौर पर अंग्रेज़ों की सुरक्षा के लिये तैयार किया गया और उसमें केवल गोरे सिपाही रखे गए। भारतीय फौज़ में हरेक तीन फौजी में एक इंग्लैंड से लाए अंग्रेज़ फौजी के रखरखाव पर आने वाला ख़र्च काफी ज्यादा था। गोरे सैनिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, खान-पान, बैरकों में रहने और अंत में उनके सेवानिवृत्त होने पर जाने वाले लाभ पर आने वाली लागत अंग्रेज़ सरकार द्वारा 'देसी' सिपाहियों के लिये अनुमत ख़र्चों की तुलना में काफी ज्यादा थी। अंग्रेज़ अधिकारियों के मामले में तो यह लागत और भी अधिक थी, जबकि अंग्रेज़ी राज के आखिरी कुछ वर्षों को छोड़ दें तो भारतीय मूल के लोगों को कमीशन अधिकारी के पद पर लिये जाने की अनुमति नहीं थी। अंतिम वर्षों में जब उन्हें कमीशन दिया भी जाने लगा तब भी रंगभेद जारी था और उन्हें राजा का कमीशन न देकर वायसराय का कमीशन दिया जाता था। इन सबका समग्र परिणाम यह हुआ कि सैन्य मद में भारत द्वारा इंग्लैंड को दिया जाने वाला प्रभाव 1856-57 के 3.4 लाख पौंड स्टर्लिंग से बढ़कर 1860-61 में 16.2 लाख पौंड स्टर्लिंग हो गया। आगे इसमें लगातार वृद्धि होती गई। हालत यह हो गई कि 1869 में वायसराय

लॉर्ड मेयो ने ब्रिटिश कैबिनेट में राज्य सचिव अथवा भारत मंत्री लॉर्ड आर्गिल को निजी बातचीत में बताया कि भारत में "दायित्वहीन सैनिक अधिकारी और निरीक्षण अधिकारी भरे हुए हैं जिनके पास निरीक्षण करने को कुछ नहीं है तथा ऐसे 'इयूटी डूइंग' अधिकारी हैं जिनके पास करने को कोई इयूटी नहीं है।"

संक्षेप में 1857 की क्रांति पर ब्रिटिश प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारत पर भारी सैन्य व्यय का बोझ पड़ा। क्रांति के दूसरे परिणाम के रूप में सार्वजनिक ऋणों में वृद्धि हुई जिसकी वजह से वार्षिक सेवा प्रभार या व्याज का बोझ बढ़ा। भारतवासियों को अपने विद्रोह को दबाने के लिये किए गए ख़र्च का भुगतान करना पड़ा। 1857 से 1861-62 की पांच वर्ष की अवधि के दौरान भारत की अंग्रेज़ी हुकूमत का कुल कर्ज़, जो मुख्यतया इंग्लैंड में लिया गया कर्ज़ था, 5.9 करोड़ पौंड स्टर्लिंग से बढ़कर 10.8 करोड़ पौंड स्टर्लिंग हो गया। 1872 आते-आते यह कर्ज़ बढ़कर 12.2 करोड़ पौंड स्टर्लिंग हो चुका था। यह बढ़ोतरी मुख्यतः बजट में सैन्य व्यय और यूरोपीय सैनिकों के लिये बैरकों के निर्माण जैसे सैन्य निर्माण कार्यों पर व्यय जैसे अतिरिक्त मदों पर हुई वृद्धि के कारण थी। इनके परिणामस्वरूप व्याज में भारी बढ़ोतरी हुई और सिंचाई व्यवस्था आदि जैसे लोक निर्माण कार्यों के लिये कोष की कमी हो गई।

1857 की क्रांति का तीसरा प्रभाव तथाकथित 'होम चार्जेज' अथवा गृह प्रभाव पर पड़ा। यह भारत की अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा इंग्लैण्ड में किए जाने वाले ख़ुर्चें को कहा जाता था। आरंभ में 1857-58 में इसमें बढ़ोतरी सैन्य लागत के कारण हुई। ब्रिटेन से भारत में लाए जाने वाले सैनिकों और अधिकारियों को भारतीय करदाताओं के पैसे से भुगतान किया जाता था और लंदन में स्थित वार ऑफिस इस मद में ख़ुर्च होने वाली पाई-पाई का हिसाब रखता था। इनके अलावा सार्वजनिक ऋण और अंग्रेज़ी मिल्कियत वाली रेलवे कंपनियों को किए जाने वाले भुगतान पर लगातार बढ़ते व्याज की मद्दें थीं। समय के साथ-साथ इंग्लैण्ड से आए भंडार, नागरिक एवं सैन्य सेवाओं के अधिकारियों का पेंशन, ब्रिटिश कैबिनेट में भारतमंत्री का वेतन, उनके लंदन स्थित कौंसिल सदस्यों और अधिकारियों का वेतन, एशिया में विभिन्न जगहों पर अवस्थित राजनयिक कार्यालयों के व्यय, और तो और, भारत में कार्यरत अधिकारियों के आश्रितों के लिये मानसिक आरोग्यशाला जैसी मद्दें भी इसमें जुड़ती चली गईं।

इस प्रवृत्ति के बढ़ते रहने के कारण भारत में करों का बोझ भी बढ़ता चला गया। इस तथ्य को दादाभाई नौरोजी तथा अन्य राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने रेखांकित किया। लोकवित्त के क्षेत्र में हुए परिवर्तन 1857 की क्रांति से उत्पन्न संकट का सीधा परिणाम थे। मैंने अपनी पुस्तक दि फाइनेंशियल फाउंडेशंस ऑफ दि ब्रिटिश राज शीर्षक पुस्तक में भी इस बारे में लिखा है जिसका 2006 में पुनर्मुद्रण हो चुका है। इसलिये यहां इस इतिहास के बारे में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये आइए, लोकवित्त के क्षेत्र से अलग 1857 का आम आर्थिक नीति पर प्रभाव की ओर बढ़ें। एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति यह उभरी कि रेलवे के निर्माण पर बहुत ज़ोर दिया जाने लगा। इसकी शुरुआत 1853 में तब हुई, जब यह महसूस किया गया कि रेलवे और संचार व्यवस्था से छावनियों में स्थित अंग्रेज़ी फौजों को भावी विद्रोहों को दबाने के लिये आने-जाने में

सहूलियत होगी। 1857 के जनविद्रोह से अंग्रेज़ों को दूसरी सबक मिली। वह ये कि जब किसानों ने 1857 में विद्रोह कर दिया तब भी भूस्वामी अभिजात्य वर्ग, तालुकदारों, जर्मांदारों और दूसरे वर्गों के अनेक सदस्य अंग्रेज़ों के प्रति विश्वासपात्र बने रहे। इसलिये भू-स्वामियों तथा अन्य बिचौलियों के लिये स्पष्ट रूप से मैत्रीपूर्ण भूराजस्व नीति अपनाई गई।

प्रशुल्क (टैरिफ) नीति के लिहाज़ से 1857-60 महत्वपूर्ण है। मोटेंटौर पर 1820 से ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीपतियों के हितों ने भारत की प्रशुल्क नीति को प्रभावित करना आरंभ कर दिया था। लेकिन 1860 में ब्रिटेन द्वारा भेजे गए एक व्यक्ति ने इस दिशा में एक संपूर्ण कार्यक्रम आरंभ किया। इस व्यक्ति का नाम था जेम्स विल्सन जो लंदन की प्रमुख आर्थिक पत्रिका द इकोनॉमिस्ट का संस्थापक था। उसे भारत का पहला वित्तमंत्री (तब उसे वायसराय कौंसिल का फाइनेंस में बर कहा जाता था) बनाया गया। विल्सन और उसके बाद आए वित्तमंत्रियों ने लगातार इंग्लैण्ड से भारत में आयात होने वाले तैयार माल और भारत से निर्यात होने वाले कच्चे माल पर से सीमा शुल्क कम करने की नीति अपनाए रखी। यह नीति एक ओर जहां अंग्रेज़ औद्योगिक व्यापारी वर्ग के लिये लाभदायक थी, वहां दूसरी तरफ भारत के कारीगरों और शिल्पियों को बर्बाद करने वाली थी। आज हरेक स्कूली विद्यार्थी इस नीति के विध्वंसक परिणामों से अवगत है। रमेशचंद्र दत्त से लेकर महात्मा गांधी तक अनेक राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने इस विध्वंसक नीति पर प्रहार किया। 1857 के बाद की स्थितियों ने एक ऐसी नीति को आगे बढ़ाने का माहौल तैयार कर दिया था जो प्रकट रूप में इंग्लैण्ड के औद्योगिक हितों के पक्ष में झुका हुआ था। इसकी बजह यह थी कि ब्रिटिश भारत की सरकार न केवल विद्रोहियों को कुचलने के मामले में क्रूर थी बल्कि देसी हितों को ब्रिटिश हितों के अधीन लाने के मामले में भी क्रूरता बरत रही थी। अपवादस्वरूप कुछ अंग्रेज़ अधिकारी और नेता उससे असहमत रहे हों, लेकिन विद्रोह के बाद से मोटेंटौर पर स्थिर

नीति बनी रही और शासक वर्ग को शासित तबके से अलग करती रही।

संदर्भवश यह भी गैरतलब है कि 1857 के बाद ब्रिटिश भारत की नौकरशाही और राजनीतिक निर्णयकर्ताओं के नज़रिये में आए परिवर्तन से सामाजिक नीति में भी एक महत्वपूर्ण बदलाव आया। महारानी विक्टोरिया ने 1858 की अपनी उद्घोषणा के द्वारा देसी संवेदनाओं का आदर करते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक मामलों में कम-से-कम सरकारी हस्तक्षेप की नीति भी स्थापित की। उसके पूर्व भारतीय समाज सुधारकों के साथ मिलकर सरकार द्वारा सामाजिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप की कुछ घटनाएं घटित हो चुकी थीं। उदाहरणार्थ, विधवा दहन अथवा सती प्रथा के विरुद्ध प्रसिद्ध कानून। 1857 की क्रांति की व्याख्या अंग्रेज़ों ने उन्हीं दिनों इस्तेमाल में आए एनफिल्ड राइफल की ग्रीज़ के विरुद्ध पैदा हुई देसी संवेदना की प्रतिक्रिया के रूप में की। इसलिये उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आइंदा समाज सुधार के प्रति उदासीन रहना ही सबसे बेहतर रहेगा, हालांकि इस समय तक पहले की तुलना में बड़ी तादाद में भारतीय लोग सुधार अथवा परिवर्तन हेतु दबाव डालने लगे थे। इसलिये सामाजिक स्तर पर एक अहस्तक्षेप जैसी नीति अस्तित्व में आ गई।

संक्षेप में, ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास में 1857 की क्रांति का प्रत्यक्षतः लोकवित्त पर तथा परोक्षतः आम नीतिगत सोच पर गहरा असर पड़ा। 1857 के बारे में हालांकि काफी कुछ लिखा गया है, तथापि इस तथ्य की प्रायः बहुत कम चर्चा की जाती है। 1857 के जिन प्रभावों की चर्चा हम कर आए हैं; वे अगली आधी सदी की आर्थिक नीतियों को कई रूपों में प्रभावित करती रहीं। प्रथम विश्वयुद्ध के आसपास एक नया चरण आरंभ होता है। इस नियोजन को एक सांकेतिक विकास से चिह्नित किया जा सकता है; भारतीय सूती कपड़ा उद्योग अपने प्रतिस्पर्धी मैनचस्टर से भारत में आयात के मामले में आगे बढ़ जाता है। इस काल को भारतीय उद्यमियों के स्वामित्व में एक आधुनिक देसी औद्योगिक क्षेत्र के आरंभ के

रूप में भी चिह्नित किया जाता है क्योंकि 1907 में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी ने उत्पादन आरंभ किया। यहां से आरंभ कर 1929 की भारी मंदी की शुरुआत का काल दूसरा चरण है। तीसरे चरण को उथल-पुथल के वर्ष के रूप में देख सकते हैं जो मंदी और उसके बाद विश्वयुद्ध के दौर से होते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति तक के समय तक फैला हुआ है।

इस संकलन में विशेषज्ञों के उत्कृष्ट लेख शामिल हैं जो 1850 के दशक से लेकर 1940 के दशक के काल तक के विभिन्न चरणों में आए परिवर्तनों पर विस्तार से चर्चा करते हैं। इसलिये 'परिचय' में इस विषय पर चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

लेकिन यहां कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों पर ध्यान देने की ज़रूरत है। 1858 में भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत हो गया। एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक दि केल्थ ऑफ नेशंस (1776) में इसके शासन का उल्लेख बहुत थोड़े शब्दों में किया है : "केवल व्यापारियों की कंपनी की सरकार किसी भी देश में तमाम तरह की शासन व्यवस्था में संभवतः सबसे बुरी होती है।" आज के इस युग में भी कंपनी सरकार से शासन व्यवस्था का अधिग्रहण करने वाली सरकार के सभी प्रकार के गुणों की चर्चा कोई असामान्य बात नहीं है। उस सरकार के तहत स्थापित आर्थिक तंत्र का क्या परिणाम हुआ? अगर हम तुलनपत्र में आमतौर पर उद्धृत सकारात्मक पहलुओं, जिनमें ब्रिटिश भारत सरकार की पहल और निवेश से तैयार रेलवे, सड़कों और बंदरगाहों आदि जैसे बुनियादी ढांचे, जिनका भुगतान वस्तुतः भारत के करदाताओं ने किया। आधुनिक प्रौद्योगिकी जो आगे चलकर भारतीय औद्योगिक उद्यमियों को भी हासिल हुई, वित्तीय संस्थानों से लेकर कानूनी तंत्र, व्यापक सांस्थानिक व्यवस्था और ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित शांति व्यवस्था आदि को रखकर भी तुलना करें तो भी आखिर में तुलनपत्र में जो हासिल प्राप्त होता है उसे किसी भी प्रकार से इतने लंबे समय तक चली शासन व्यवस्था की उपलब्धियों के तौर पर प्रस्तुत नहीं किया

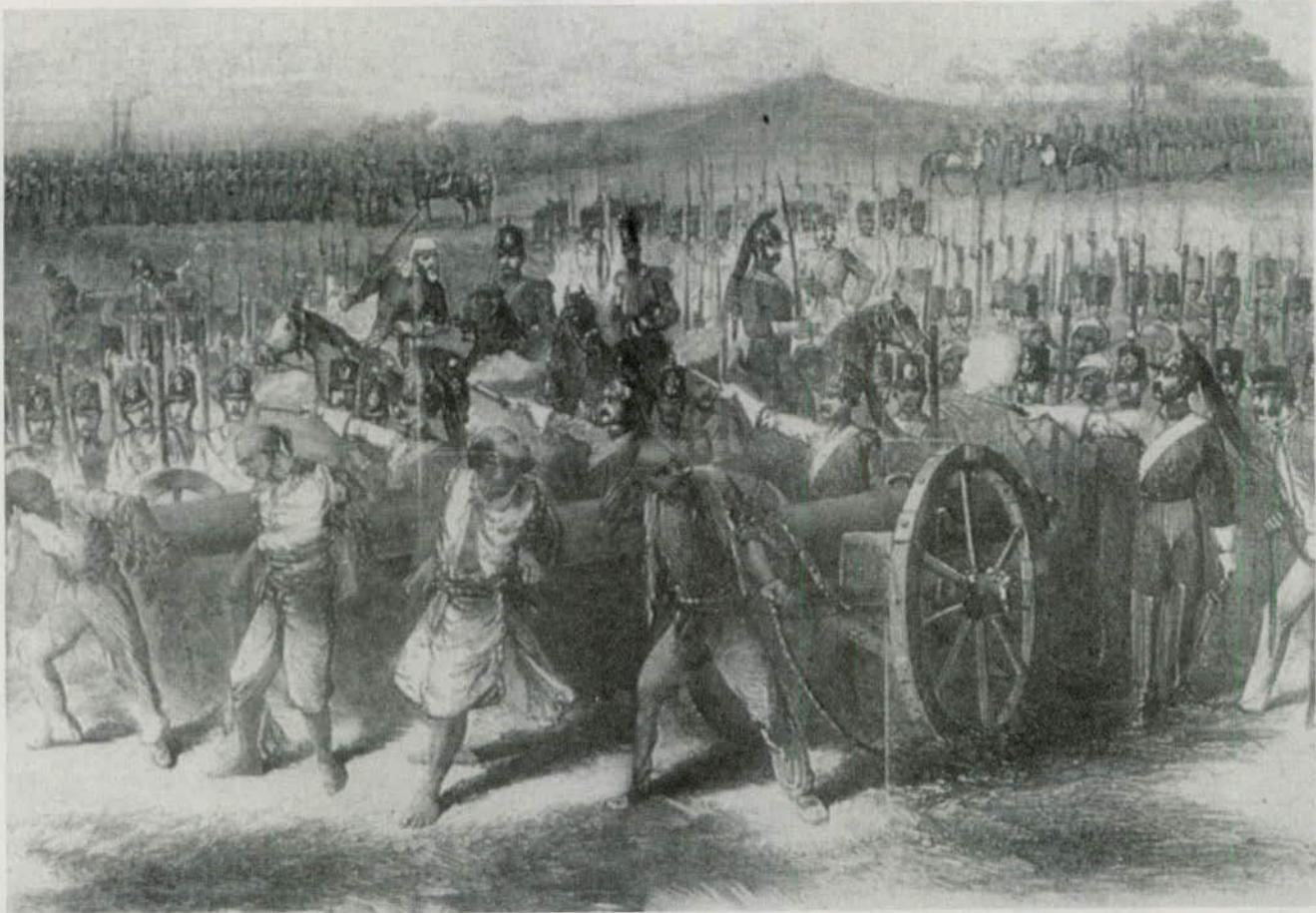
जा सकता।

अंग्रेज़ी राज में भारतवासियों की ग़रीबी को दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने उठाया। डब्ल्यू. एच. मोरलैंड जैसे अनेक अंग्रेज़ इतिहासकारों ने तब यह सवाल उठाया कि क्या भारत अंग्रेज़ी राज से पहले की शासन व्यवस्थाओं में ज्यादा खुशहाल था?

इस सवाल के जवाब पर तर्क तो किया जा सकता था, लेकिन उसे कभी भी मात्रात्मक रूप से स्थापित नहीं किया गया था। लेकिन राष्ट्रवादी आलोचना का मुद्दा अंग्रेज़ी राज के दौरान देश की ग़रीबी और अविकसित भारत तथा पश्चिम के उन्नत औद्योगिक देशों के बीच बढ़ती आर्थिक दूरी थी। यहां उस बहस में पड़ने की ज़रूरत नहीं है। अंग्रेज़ी राज में भारतवासियों के कल्याण की सोच को सीधे-सपाट तथ्य बल प्रदान कर रहे थे। उदाहरण के लिये, आमलोगों के मस्तिष्क में बार-बार अकाल पड़ने की घटना एक पैमाना था। 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश भारत में पड़े अकालों की संख्या उल्लेखनीय रूप से गौरतलब है। उत्तर भारत में 1800-04, 1837-38, 1860-61, 1868-70, 1877-78, 1896-97, 1899-1900; पश्चिमी भारत में 1800-04 1812-13, 1824-25, 1833-34, 1866-67, 1876-78; पूर्वी भारत में 1873-74, 1888-89, 1896-97 और दक्षिण भारत में 1806-07, 1824-25, 1833-34, 1866-67, 1876-78 में अकाल पड़े। सरकारी रिपोर्टों में इन अकालों को प्रमुख दुर्भिक्ष कहा गया है। 19वीं शताब्दी के मध्य से हमारे पास दुर्भिक्षों में मरे लोगों के सरकारी आंकड़े उपलब्ध हैं जो यह बताते हैं कि कुछ अकाल विध्वंसक साबित हुए। 1876-78 और 1896-97 के अकाल में क्रमशः 43 लाख और 51.5 लाख जाने गई। प्रशासनिक कार्यवाही के लिये तैयार की गई एक 'अकाल संहिता' के अनुसार भारत सरकार की इन महाविपत्तियों के प्रति प्रतिक्रिया यह थी कि उसने निगरानी का एक व्यापक तंत्र कायम किया और राहत कार्य चलाए। इसके

परिणामस्वरूप बंगाल में 1943 में पड़े अकाल को छोड़ दें तो 20वीं शताब्दी में अकाल से मृत्यु की दर में कमी आई। बंगाल में पड़े अकाल के दौरान दूसरे विश्वयुद्ध के पूर्वी मंच की ख़राब हालत के कारण आपूर्ति पूरी तरह बाधित थी और राहतकार्य प्रायः नदारद थे। इस संदर्भ में अमर्त्य सेन का तर्क यह है कि 1947 में बंगाल खाद्य आपूर्ति की उपलब्धता पिछले पांच सालों के औसत में मात्र पांच प्रतिशत कम थी। इसलिये बंगाल के अकाल की मुख्य बजह युद्धकालीन अर्थव्यवस्था के प्रभाव के कारण विनियम अधिकारों में किए जाने वाले परिवर्तन थे। 19वीं और 20वीं सदी के आरंभिक वर्षों की समूची कालावधि में आए अकालों ने मुख्यतः किसी तरह गुज़ारा करने वाले ग़रीब कारीगरों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों और लद्यु कृषकों को अपना ग्रास बनाया।

20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में आकस्मिक अकालों से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता में आई कमी थी। जॉर्ज ब्लीन, शिवसुब्रमण्यन और ए. हेस्टन ने अपने अलग-अलग आकलन में सन् 1901 से लेकर 1946 की अवधि में एक जैसी अधोमुखी प्रवृत्ति का संकेत दिया। हालांकि इस कमी की मात्रा संबंधी उनके अनुमान एक-दूसरे से भिन्न थे। 20वीं शताब्दी में आए अकालों में गुज़ारे के घोर संकट वाली स्थितियों को बारंबारता में बीती सदी के मुकाबले कमी आई। अब रेलवे और स्टीम नौका के द्वारा खाद्यान्न पहुंचाकर स्थानीय संकटों को निपटारा किया जा सकता था। लेकिन इस सदी में सामान्य दिनों में लोगों के पास पेटभर खाना उपलब्ध नहीं था। एक दूसरा महत्वपूर्ण आंकड़ा चिकित्सा सेवा के प्रमुख, जो एक अंग्रेज़ अधिकारी था, द्वारा 1933 में कंगारे गए एक अभिनव सर्वेक्षण का यह निष्कर्ष था कि भारत की ग्रामीण आबादी का लगभग 26 प्रतिशत कुपोषण का शिकार था। स्वास्थ्य की दशा का बेहतर संकेतक जन्म के समय उत्तरजीविता की संभाव्यता होती है। जन्म के समय उत्तरजीविता की यह संभाव्यता क्या थी?



पेशावर में बागी सिपाहियों को तोप के मुँह से बांधकर उड़ाने का दृश्य

ब्रिटिश भारत की जनगणना के सरकारी आंकड़ों के अनुसार, जन्म के समय उत्तरजीविता की संभाव्यता 1881-91 में 25.1 वर्ष, 1901-11 में 23 वर्ष, 1921-31 में 26.7 वर्ष और 1931-41 में 31.7 वर्ष थी। आज़ादी के पचास साल बाद जन्म के समय उत्तरजीविता की संभाव्यता 1941 के ब्रिटिश भारत की जनगणना की तुलना में दोगुनी हो चुकी थी।

एक अन्य आम पैमाना साक्षरता स्तर का है। आज़ादी मिलने तक यह नकारात्मक रूप से कम था, किसी भी भाषा में 10 प्रतिशत से भी नीचे। राउंड टेब्ल कांफ्रेंस के दौरान अंग्रेज़ी राज में भारत में साक्षरता स्तर में कमी को लेकर महात्मा गांधी की हटींग के साथ बहस काफी प्रसिद्ध है। इस बहस में कोई भी पक्ष अपना पक्ष स्थापित नहीं कर पाया, क्योंकि ब्रिटिश काल से पूर्व साक्षरता स्तर को बता पाना असंभव था। लेकिन इस तथ्य से कोई

इंकार नहीं कर सकता था कि औपनिवेशिक काल में साक्षरता में किसी किस्म की उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज नहीं की जा सकी और आरंभिक पढ़ने-लिखने तथा अंकगणित सिखाने की देसी पद्धति इसलिये धराशायी हो गई क्योंकि उसे पहले मिलने वाला राजकीय और स्थानीय अभिजात्य वर्ग का संरक्षण अब तिरोहित हो चुका था।

19वीं सदी और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ बुनियादी तथ्य इस प्रकार हैं : जीवन संभाव्यता कम थी, चक्रीय अकालों को झेलना पड़ता था, पोषण स्तर निम्न था, जिससे आबादी का काफी हिस्सा प्रभावित होता था तथा साक्षरता का स्तर काफी नीचे था। औपनिवेशिक भारत की इन विशेषताओं के साथ-साथ निम्नांकित विशेषताएं जुड़ी थीं, सुदूर अतीत की विरासत नौ वर्ष और जातियों में विभाजित समाज; धर्मशास्त्रों में वर्णित कुछ जातियों की निम्न

स्थिति तथा छुआछूत; पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति और शास्त्र सम्मत लैंगिक भेदभाव; आदिवासियों का शोषण जिन्हें हिंदू समाज के दायरे से बाहर रखा गया था; हिंदू और मुस्लिम समाजों को उनके जीवन और निजी आचार-व्यवहार में एक-दूसरे से सर्वर्था अलहदा करने वाले विभिन्न सामाजिक नियम कायदे (हालांकि सार्वजनिक जीवन में उन्हें अनेक मर्तबा एक साथ रहना और मिलकर काम करना पड़ता था)।

भारतीय गणतंत्र को यह विरासत हासिल हुई। 1947 से अब तक स्वतंत्र भारत ने क्या हासिल किया, क्या नहीं; इस पर अतीत की इसी रोशनी में विचार करना होगा।

(लेखक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवी दिल्ली में प्रोफेसर तथा विश्वभारती विश्वविद्यालय, शास्ति निकेतन के कुलपति रह चुके हैं। वर्तमान में वह भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष हैं)



मेरठ में सिपाही विद्रोह, 10 मई, 1857



इसे प्राकृतिक गैर स बनाने में 300 मिलियन वर्ष लगेंगे।

आइए, रायथं तें कि तब तक हम इन लोतों का समझदारी से उपयोग करेंगे।



प्रतिवर्ष हम अपने ऊर्जा प्रबंधन सेवा दल के माध्यम से अपने उपभोक्ताओं में जागरूकता लाने का भरपूर प्रयास करते हैं और संपूर्ण ऊर्जा प्रबंधन हेतु उपायों को बढ़ावा देते हैं।
आइए हम सब मिलकर स्पष्ट और बेहतर कल के लिए कार्य करें।



And we have just begun...

दादाभाई नौरोजी और अपवहन सिद्धांत

○ विपिन चंद्रा

अपवहन सिद्धांत अथवा ड्रेन थ्योरी का प्रतिपादन सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने किया था। अपवहन सिद्धांत के अनुसार भारत की राष्ट्रीय संपत्ति या कुल राष्ट्रीय उत्पाद का एक हिस्सा भारत को कोई आर्थिक अथवा भौतिक प्रतिफल दिए बगैर इंग्लैण्ड भेजा जा रहा था। दादाभाई नौरोजी का जन्म 1825 में हुआ था और 1917 में उनका देहावसान हो गया। उन्होंने अपने सक्रिय जीवन का आरंभ गणित के अध्यापक के तौर पर किया पर आगे चलकर अपना संपूर्ण जीवन और धन भारत में एक राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा करने में लगा दिया।

भारतवासियों के जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं था जो उनसे अल्पता रह गया हो। वह एक समाज सुधारक, पत्रकार, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जिसके वह तीन बार अध्यक्ष रहे, सहित अनेक राष्ट्रवादी संघों के संस्थापक, राजनीतिक उत्प्रेरक तथा इन सबसे पहले एक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री, अंग्रेजी उपनिवेशवाद के कटु आलोचक और विभिन्न पीढ़ियों के करोड़ों भारतवासियों के राजनीतिक गुरु थे।

दादाभाई ने 1855 में एक व्यापारिक फर्म में इस शर्त पर काम करना आरंभ किया कि उनका अफीम के कारोबार से कोई लेना देना नहीं रहेगा। आगे चलकर उन्होंने अफीम और शराब के व्यापार से हासिल मुनाफे में हिस्सा लेने से इंकार कर दिया।

भारत के आमजन की उनमें गहरी समझ और सहानुभूति थी। उस दौर में अंग्रेज़ अधिकारी भारतीयों की गुरीबी की एक वज़ह उनकी बचत न करने की प्रवृत्ति तथा शादी-ब्याह, सामाजिक उत्सवों और निर्धनों तक की आभूषण खरीदने की प्रवृत्ति में शामिल फिजूलख़र्ची को मानते थे।

दादाभाई ने इन आरोपों का खंडन करते हुए उनके आय-व्यय की अल्प राशि को इंगित कर कहा, “क्या भारत की जनता को खुशी के कुछ पलों का अधिकार नहीं है?” और “क्या उन्हें सभ्यता में, जीवन में तथा जीवन की भौतिक, नैतिक, मानसिक एवं सामाजिक उत्थान का कोई अधिकार नहीं है? क्या उन्हें हमेशा हाशिये पर जीना चाहिए... और किसी किस्म का सामाजिक ख़र्च नहीं करना चाहिए? क्या यह सब फिजूलख़र्ची और बेवकूफी है?”

उनका मानना था कि उस समय भारतवासियों की राजनीतिक मांगों और आंदोलनों के कम होने की वजह अंशतः यह थी कि उन दिनों आंदोलन बुद्धिजीवियों और थोड़े से आधुनिक मध्यवर्ग के बीच सीमित था। बड़ा कारण यह था कि राजनीतिक सक्रियता और राजनीतिक आंदोलनों में भागीदारी भारतवासियों के लिये नयी चीज़ थी। इसलिये दादाभाई की पीढ़ी की प्रमुख प्राथमिकता लोगों का बहुसंख्यक राजनीति में राजनीतिकरण करना था। दादाभाई नौरोजी के शब्दों में, “नया पाठ यह था कि राजा

जनता के लिये होता है, न कि जनता राजा के लिये।” इसलिये भारतवासियों को राजनीतिक सक्रियता के लिये जगाना ज़रूरी था। वास्तविक संघर्ष, उसकी समुचित परिभाषा, संघर्ष के तरीकों का सवाल बाद में आना था, जो कि वस्तुतः उनके जीवनकाल में ही बाद में सामने आई।

जब भारतीय कांग्रेस के एक दूसरे महत्वपूर्ण नेता डी.ई. वाचा ने यह शिकायत की कि भारत के युवा उदार मत वालों की बात नहीं सुन रहे, तो दादाभाई नौरोजी ने कहा, “युवा पीढ़ी में कांग्रेस ने अपने खिलाफ़ जो असंतोष और बेचैनी पैदा की है वही इसका सबसे उत्तम परिणाम है। इसका अपना उदय और अपनी प्रगति होगी... हमारा लक्ष्य क्रांति लाना है – चाहे वह शांतिपूर्ण हो या हिंसक। क्रांति की प्रकृति ब्रिटिश सरकार की बुद्धिमता अथवा मूर्खता और ब्रिटिश लोगों की गतिविधियों पर निर्भर करेगा।”

दादाभाई लगातार नवीन प्रयोग और परिवर्तन कर रहे थे और इस तरह वह सतत युवा बने हुए थे। उन्होंने शुरुआत भारत में अंग्रेज़ी हुक्मत के फायदों में यकीन रखने वाले व्यक्ति के रूप में की और कदम-दर-कदम आगे बढ़ते हुए इस प्रक्रिया का समापन अंग्रेज़ नौकरशाही, राजनीतिक नेताओं, सांसदों, ब्रिटिश उदारवादियों, ब्रिटिश कामगार वर्ग से भारत में अनुचित, स्वेच्छाचारी, लुटेरी, अस्वाभाविक, विध्वंसक

ब्रिटिश नीति को समाप्त करने की अपील करते हुए किया।

अंग्रेज़ों की अपनी नीति को दुरुस्त करने की क्षमता में भरोसा रखते हुए उनका निष्कर्ष था : “अगर भारत को आर्थिक रूप से विकास करना है तो उसे राजनीतिक रूप से आजाद होना होगा।” 1904 में उन्होंने इंटरनेशनल सोशलिस्ट कांग्रेस में शिरकत करते हुए वहां घोषणा की, “समाधान भारत को स्वशासन देने में निहित है... उन्होंने (भारतवासियों ने) स्वशासन के अधिकार और दुनिया के देशों के विकास में अपने हिस्से की मांग की है।” यह उनकी ताज़ा और युवा जोश को श्रद्धाञ्जलि थी। आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस सत्र में भेजे गए अपने संदेश में उन्होंने साफ़ शब्दों में कहा, “स्वशासन के बगैर भारतवासी मौजूदा अपवहन से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते... भारत के दुखों और ग़लतियों का एकमात्र इलाज स्वशासन है।” 1906 में कलकत्ता में कांग्रेस सत्र की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने घोषणा की कि भारत के लोगों की राजनीतिक मांगों को केवल एक शब्द में व्यक्त किया जा सकता है, वह है - ‘स्वराज़’, जो यूनाइटेड किंगडम जैसा अथवा उपनिवेशों जैसा हो। वह एक महान राजनीतिक अर्थशास्त्री थे। उनका पहला आर्थिक निबंध 1867 में प्रकाशित हुआ। अगले 40 साल तक वह भारत की अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर लेख लिखते रहे और अपने लेखों एवं भाषणों में उसका विश्लेषण करते रहे जिनका संकलन 1901 में पोवर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया नामक पुस्तक के रूप में सामने आया। इन लेखों और उनके संकलन से लाखों लोगों को आर्थिक सवालों से अवगत कराया जा सका। उदाहरण के लिये 1924 में गांधीजी ने लिखा, “भारत की ग़रीबी के विस्तार के बारे में पहली बार में दादाभाई की किताब के मार्फ़त अवगत हुआ।”

दादाभाई भारत के आर्थिक विकास के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध थे क्योंकि वह जानते थे कि यहां की ग़रीबी दूर करने के लिये यह आवश्यक है। पहले उल्लेख किया जा चुका

है कि दादाभाई आरंभ में मानते थे कि भारत में ब्रिटिश शासन के फ़ायदे हैं लेकिन 1871 आते-आते वह प्रायः रोज़ ही ‘देश की लगातार बढ़ती ग़रीबी और थकान’ का उल्लेख करने लगे थे। वह भारत में उपनिवेशवाद के सबसे प्रमुख पूर्णकालिक आलोचक बन गए थे।

उनकी निगाह भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं पर थी लेकिन उन्होंने अपनी आर्थिक समीक्षा को भारत के लोगों की ग़रीबी और भारत से धन के अपवहन पर केंद्रित कर दिया।

दादाभाई की बुनियादी मान्यता थी कि भारतीय जन ग़रीब हैं और दिन-ब-दिन उनकी ग़रीबी बढ़ती ही जा रही है। उन्होंने अपना समग्र जीवन भारतवासियों के साथ-साथ ब्रिटेनवासियों को ‘भारत की निरंतर बढ़ती निर्धनता और साधनहीनता’ तथा दयनीय, हृदय दहलाने वाली एवं खून खौलाने वाली स्थिति के प्रति जाग्रत करने में लगा दिया। उन्होंने इसे बुनियादी और केंद्रीय सवाल बना दिया था। भारत न केवल निर्धन था, इसे निर्धन से निर्धनतर बनाया जा रहा था। इसलिये उन्होंने पीड़ा में भरकर कहा कि अंग्रेज़ी शासन “भारत का अब तक का सबसे बड़ा अभिशाप है।”

अपनी बात की पुष्टि के लिये उन्होंने देश के पहले प्रतिव्यक्ति आय संबंधी सांख्यिकीय अनुमान का हवाला दिया। सन् 1873 में प्रतिव्यक्ति आय 20 रुपये थी जो मोटे अनुमान के अनुसार काफ़ी कम थी। उन्होंने यह भी कहा कि चूंकि इस मोटे अनुमान में उच्च पदस्थ विदेशी अधिकारियों, विदेशी पूंजीपतियों, बड़े जर्मांदारों, शहरी व्यापारियों, गांवों के सेठ-साहूकारों और शहरों और गांवों के मध्यमवर्गीय लोगों की आय भी शामिल है, इसलिये आम लोगों की वास्तविक स्थिति इससे सामने नहीं आ पाती। इस विषय की व्याख्या करते हुए उन्होंने निर्धनता और अकाल के अंतर्संबंध की भी व्याख्या की और कहा कि निर्धनता सूखे को अकाल में बदल देती है।

उनका मानना था कि अंग्रेज़ शासकों को भारत के लोगों की ग़रीबी की कोई फ़िक्र

नहीं है, उन्हें फ़िक्र है तो केवल करदाताओं की बड़ी तादाद की।

उनकी दृष्टि में ग़रीबी दूर करने की बुनियादी शर्त, आर्थिक विकास थी। उन्होंने निर्धनता की समस्या को मुख्यतया उत्पादन के अभाव की समस्या से जोड़कर देखा। वह मानते थे कि आर्थिक विकास के लाभ का विभाजन भी महत्वपूर्ण है लेकिन मूल समस्या लोगों की आम ज़रूरियांत की पूर्ति में उत्पादन का अपर्याप्त होना थी। भारतवासियों की निर्धनता की मुख्य वजह अपर्याप्त आर्थिक विकास थी। उनके शब्दों में, “एक भारतीय कहावत है : ‘अगर कुएं में पानी है तो बाली में आएगा’, यदि हमारे पास समृद्धि का कुआं हो तो हरेक आदमी उसमें से अपना हिस्सा निकाल पाएगा। लेकिन अगर कुआं सूखा हो तो हमें प्यासा ही रहना होगा।”

उनकी मान्यता थी कि भारत की निर्धनता और अल्प विकास की वजह अंग्रेज़ शासकों द्वारा भारत से धन बाहर निकाल ले जाना थी। इस मुद्दे को उन्होंने 1867 में अपने इंग्लैंड्स डेट टु इंडिया शीर्षक लेख में उठाया। अपवहन के सिद्धांत की उन्होंने 1876 तक स्पष्ट रूप से व्याख्या कर दी थी और तदुपरांत इसे अंग्रेज़ी हुकूमत के सम्मुख पेश किया गया। इसका समापन इस वक्तव्य के साथ किया गया था : “ब्रिटिश सरकार की इस एक अप्राकृतिक नीति के कारण... समूची हुकूमत एक ग़लत, अस्वाभाविक और आत्महत्ता रास्ते पर बढ़ चली है।”

इसके बाद दादाभाई ने प्रायः अपना सारा जीवन अपवहन के सिद्धांत का प्रचार करने और भारत के धन को देश से बाहर ले जाने के खिलाफ़ सशक्त और आक्रामक अभियान चलाने में लगा दिया। उन्होंने घोषणा की कि भारत में अंग्रेज़ी राज की बुनियादी बुराई यहां का धन बाहर ले जाना थी। 1880 में उन्होंने कहा, “आज के समय का सबसे ज़रूरी सवाल यह है कि किस तरह खून की तरह बाहर बहते भारत के धन को बाहर निकलने से रोका जाए। इस अपवहन को रोकने की सक्षमता ही किसी भी उपाय की सफलता

होगी।” 1881 में उन्होंने कहा, “सारे मामले का सार-संक्षेप यह है कि भारतीय व्यय के मौजूदा कुत्सित और अनधिकृत प्रशासन का रोमांटिक पहलू यह है कि अंग्रेज़ी राज को लाभ मिल रहा है लेकिन सच्चाई यह है उसका रक्त बाहर निकल रहा है। उन्होंने भारत की गुरीबी का कारण धन के बाहरी प्रवाह, अर्थात् अपवहन को ठहराया और रात-दिन इसके खिलाफ़ प्रचार किया। शीघ्र ही यह उपनिवेशवाद की राष्ट्रवादी आलोचना की केंद्रीय वस्तु और भारत के शोषण एवं अल्पविकास का प्रतीक बन गया। इसमें उपनिवेशवाद की राष्ट्रवादी आलोचना के तमाम ताने-बाने शामिल कर लिये गए। उपनिवेशवादी स्थिति में यह राष्ट्रवादी नेताओं की विवेचनात्मक, परस्पर-संबद्ध और एकीकृत आर्थिक विश्लेषण की पराकाष्ठा थी।

अपने आर्थिक और राजनीतिक आंदोलन के दौरान दादाभाई ने लगभग सभी समकालीन मुद्दों पर विचार किया। इनमें तीव्र औद्योगीकरण, आर्थिक विकास में राज्य और विदेशी पूँजी की भूमिका, विदेशी व्यापार की प्रकृति, स्वरूप और उसका प्रभाव, रेलवे की भूमिका, राज्य की वित्तीय नीतियां, खासकर कराधान, बिक्रीकर, आयकर तथा भू-राजस्व, सैनिक एवं नागरिक व्यय, दर नीति, मुद्रा के सवाल और सेवाओं का विनियम और उनका भारतीयकरण जैसे ज्वलंत मुद्दे शामिल थे।

दादाभाई ने स्पष्ट रूप से यह इंगित किया कि आयात-निर्यात का स्वरूप एकात्मक होने के कारण संसाधनों का अपवाही निर्यात अधिक हुआ। इस लेनदेन में आयात पर निर्यात के आधिक्य का अतीत अथवा भविष्य में भुगतान शामिल नहीं है। दादाभाई के अनुसार अपवहन के तीन घटक हैं :

1. सैनिक एवं असैनिक ब्रिटिश कर्मचारियों, वकीलों, चिकित्सकों आदि के वेतन, आय और बचत के मद में ब्रिटेन भेजा जाने वाला धन। 1892 के एक संसदीय प्रतिवेदन के आधार पर दादाभाई नौरोजी ने हिसाब लगाया था कि सैनिकों को

छोड़कर यूरोपीय लोग भारत और इंग्लैंड में वेतन और पेंशन के रूप में 15 करोड़ रुपये ले रहे हैं जो भारत सरकार के कुल राजस्व का 30 प्रतिशत है।

2. अपवहन का दूसरा महत्वपूर्ण घटक भारत सरकार का होमचार्ज, अर्थात् ब्रिटेन में स्थित भारत सचिव द्वारा भारत सरकार के नाम पर किया जाने वाला व्यय था।
3. तीसरा प्रमुख घटक भारत के व्यापार और उद्योग में निवेशित निजी विदेशी पूँजी पर भेजा जाने वाला मुनाफ़ा था।

दादाभाई ने अपवहन के परिमाण के बारे में कई अनुमान प्रस्तुत किए। 1905 में उन्होंने घोषणा की कि हर साल 51.5 करोड़ रुपये देश से बाहर भेजे जा रहे हैं।

अपवहन के सिद्धांत की व्याख्या में दादाभाई ने काफी दुरुहता और गहराई का परिचय दिया। उदाहरण के लिये, लॉर्ड कर्जन की आलोचना के बावजूद आयात-निर्यात का तुलनपत्र तैयार करने के दौरान उन्होंने स्वर्ण और चांदी के लेनदेन को भी शामिल किया। लेकिन उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि उन्होंने अपना सारा ध्यान अंग्रेज़ कर्मचारियों पर होने वाले व्यय पर केंद्रित कर लिया था।

दूसरे, उन्होंने दृश्यगत और अदृश्य आयात तथा व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन के बीच अंतर भी रेखांकित किया।

तीसरे, दादाभाई ने रेखांकित किया कि अपवहन का अभिप्राय उस धन के नुक़सान अथवा राष्ट्रीय उत्पाद में कमी से है जिसको अन्यथा देश के भीतर वितरित या व्यय किया जाता। इसका अर्थ यह था कि देश के भीतर पूरक आय के रूप में किए जाने वाले रोज़गार का नुक़सान हो रहा था।

चौथा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण, अपवहन पूँजी की क्षति का प्रतीक था। देश के सामाजिक आधिक्य के एक बड़े हिस्से को बाहर भेज कर भारत की उत्पादक पूँजी का हरण किया जा रहा था। जब भी उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त किए, हमेशा पूँजी की इस क्षति को उजागर किया। वस्तुतः यही उनके

अपवहन के सिद्धांत का मूल था।

विशेषताएँ पर पूँजी के निर्यात के फलस्वरूप देश के भीतर पूँजी की कमी हो रही थी जिससे उद्योग और कृषि का विकास अवरुद्ध हो रहा था, और यही भारत के पिछड़ेपन की जड़ थी।

दादाभाई के साथ-साथ अनेक दूसरे नेताओं ने भी भारत से बाहर अपवाहित होने वाली राशि के आकलन का प्रयास किया। उदाहरणार्थ, आर.सी. दत्त और जी.वी. जोशी के अनुसार, बाहर ले जाई जाने वाली राशि राष्ट्रीय बचत के एक तिहाई से भी अधिक थी। आज के संदर्भ में यह भारत की राष्ट्रीय आय के 8 प्रतिशत के बराबर होती।

दादाभाई ने यह भी गौर किया कि अतीत में भारत से ले जाई गई संपत्ति की बदौलत इंग्लैंड में पूँजी संग्रहित हुई और उसके तीव्र औद्योगीकरण में सहायता मिली।

उन्होंने अपवहन के सिद्धांत का इस्तेमाल यह बताने के लिये भी किया कि भारत में विदेशी पूँजी का वास्तविक निवेश शून्य था और भारत पूरी तरह पूँजी का शुद्ध निर्यातक था।

दादाभाई ने यह महसूस कर लिया था कि सरकार की दर आदि जैसी सभी नीतियों में एक सीमा तक परिवर्तन संभव है लेकिन उसकी अपवहन की नीति में कोई रियायत संभव नहीं। सरकार की यह असंगत नीति अंग्रेज़ी राज का अविच्छिन्न हिस्सा थी।

अपवहन के सिद्धांत के राजनीतिक परिणाम

अपवहन के सिद्धांत के विश्लेषण से हासिल निष्कर्षों ने धीरे-धीरे दादाभाई की सोच को प्रभावित करना आरंभ किया और भारत में अंग्रेज़ी हुकूमत की प्रकृति और मकसद के बारे में उनका दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। अपवहन के आर्थिक परिणामों की आलोचना करते हुए आरंभ में दादाभाई को भारत और इंग्लैंड के साथ-साथ होने की मूल्यवत्ता में भरोसा था, लेकिन अपवहन के विरुद्ध उनके आजीवन अभियान ने उन्हें राजनीतिक उग्रवाद के रास्ते पर पहुंचा दिया।

दादाभाई को ज़ोर देकर यह कहना पड़ा कि “भारतीय व्यय के मौजूदा दुष्ट और अनधिकृत प्रशासन का रोमांटिक पहलू यह है कि अंग्रेज़ी राज को लाभ मिल रहा है लेकिन सच्चाई यह है कि उसका खून बाहर निकल रहा है।”

इस प्रकार अपवहन के सिद्धांत के अध्ययन से दादाभाई व अन्य लोगों को (i) इस निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायत हुई कि उपनिवेशवाद का सार तत्व क्या है; (ii) भारत के लोगों और विदेशी शासकों के बीच वह कौन-सा बुनियादी अंतर्विरोध है जिसकी वजह से दोनों के बीच पूर्ण राजनीतिक संघर्ष पैदा हुआ; (iii) इससे राजनीतिक शक्ति का सवाल भी सामने आ गया और दादाभाई बार-बार इस बात पर ज़ोर देने लगे कि अपवहन भारतीय लोगों की अधीनता का परिणाम है। अभिप्राय यह निकला कि अंग्रेज़ी हुकूमत को उखाड़ फेंकना अनिवार्य है। अपवहन के सिद्धांत से निकले इन निष्कर्षों ने दादाभाई को अंततः उग्र राजनीति की ओर उन्मुख किया। और इस प्रकार, बेहद उदारवादी राजनीतिक मांगों के साथ अपना राजनीतिक जीवन शुरू करने वाला व्यक्ति गुज़रते सालों के साथ-साथ, धीरे-धीरे अपनी राजनीति और राजनीतिक मांगों में अधिकाधिक उग्र होता चला गया। 1905 में बनारस में संपन्न कांग्रेस अधिवेशन को भेजे अपने संदेश में उन्होंने घोषण की : “स्वशासन के बाहर भारतवासी मौजूदा अपवहन से कभी भी मुक्त नहीं हो पाएंगे... भारत के दुख-तक़लीफ़ों का एकमात्र इलाज स्वशासन है।”

भारत के ग्रामवासियों सहित आम लोगों ने इस तथ्य को सरलता से समझ लिया कि भारत के लोगों और अंग्रेज़ी शासकों के हितों में परस्पर विरोध है। क्रांति के लिये ‘धन बाहर न भेजो’ जैसे एक ऐसे नारे की ज़रूरत थी जो अपनी गवाही खुद देता था, उसके लिये किसी साक्षी की ज़रूरत न थी।

मैं यहां दादाभाई के विचारों की दो अन्य दुरुहत और सूक्ष्मताओं की चर्चा भी करना चाहूंगा।

पहला, वह पूरी ताक़त से विदेशी पूंजी का

विरोध कर रहे थे क्योंकि उनकी मान्यता थी कि विदेशी पूंजी से भारतीय पूंजी को दबाया जा रहा था। इसलिये यह बुरी थी। अगर भारतीय पूंजी को विकसित होने, संग्रह करने और विदेशी पूंजी के साथ स्पर्धा करने की स्वतंत्रता होती तो इसकी सकारात्मक भूमिका हो सकती थी। 1895 में उन्होंने कहा, “अगर हमें अपनी पूंजी इकट्ठा करने की पूरी आज़ादी होती, तो हम देश में आने वाली विदेशी पूंजी से समानता के आधार पर प्रतियोगिता कर पाते। तब विदेशी पूंजी की बुराइयों की बजाय उसके अधिक फ़ायदे हमें मिल पाते। वर्तमान स्थिति में यह केवल एक बुराई है क्योंकि हम असहाय अवस्था में नीचे पड़े हैं।”

दूसरा, उन्होंने यह समझ लिया था कि अंग्रेज़ी सरकार एक विदेशी सरकार है जो भारत पर अपनी राजनीतिक प्रभुसत्ता कायम कर एक विदेशी अर्थव्यवस्था और देश के लिये भारत का शोषण कर रही थी, जिसकी इज़ाज़त नहीं दी जा सकती थी।

भारत का राजनीतिक नेतृत्व भारत के शासकों और अंग्रेज़ों के बीच फ़र्क समझ रहा था। जहां पिछले विजेताओं ने विजित देश को अपना बना लिया, वहीं अंग्रेज़ हुक्मरान भारत पर आधिपत्य कर उसका शोषण एक बाहरी देश के हित साधन के लिये कर रहे थे। नादिरशाह तो यहां केवल एक बार आया था, लेकिन अंग्रेज़ी लूटपाट तो स्थायी चीज़ बन गई थी।

दादाभाई ने अन्य नेताओं के साथ मिलकर भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की मज़बूत बुनियाद रखी और लोगों के दिमाग से अंग्रेज़ी स्वामित्व अथवा भारत में उपनिवेशी शासन की चूँतें हिलाने में सफलता प्राप्त की जो भारतवासियों के मार्ड-बाप या दाता बन बैठे थे।

इसलिये राष्ट्रवादी आंदोलन का यह कथन सशक्त और लोकप्रिय हुआ कि भारत एक सोने की चिड़िया थी जिसे लूटकर ग़रीबी तथा असहायता के इस हाल में पहुंचा दिया गया है।

परिणामस्वरूप सरकारी और गैरसरकारी, सभी अंग्रेज़ लेखकों ने ज़ोर-शोर से अपवहन

के सिद्धांत और उसके मुख्य प्रतिपादक तथा प्रचारक दादाभाई नौरोजी पर हल्ला बोल दिया। ब्रिटिश शासन के प्रति दादाभाई की निष्ठा आरंभ में हालांकि सबसे गहरी थी, बावजूद इसके उनको सपने देखने वाला, उग्रवादी, पाखंडी, भीतरी देशद्रोही कहकर लगातार भर्त्सना की जाने लगी। भारत सचिव जॉर्ज हेमिल्टन ने 1890 में कहा, “आप अपने आप को अंग्रेज़ी राज का गंभीर समर्थक बताते हैं, जबकि आप उन स्थितियों और परिणामों की ज़ोरदार आलोचना करते हैं जो इस शासन व्यवस्था से अलग नहीं किए जा सकते।” इसी प्रकार जे.डी. रीस ने दि रियल इंडिया नामक अपनी पुस्तक में दादाभाई पर आक्रमण करते हुए लिखा, “उन्होंने अपने सिद्धांत के प्रतिपादन में इस तथ्य को छोड़ दिया है कि हमें चार्जेंज़ के बाहर भारत में अंग्रेज़ी राज हो ही नहीं सकती।”

गैरतलब है कि दादाभाई नौरोजी को आज भी भारत के ‘ग्रैंड ओल्ड मैन’ की संज्ञा दी जाती है। मैं 1924 में दिए गए गांधीजी के एक उद्धरण से अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा : “दादाभाई ने एक त्रृष्णि का जीवन जिया... भारत के यह ‘ग्रैंड ओल्ड मैन’ उन महान लोगों में से हैं जिन्होंने मेरे जीवन को दिशा दी... उनके दिमाग में हमेशा सबसे ऊपर यह बात रहती थी कि किस प्रकार भारत ऊपर उठे और आज़ादी हासिल करें... एक ऐसे समय में जब सरकार की आलोचना को राजद्रोह माना जाता था और सच बोलने की हिम्मत शायद ही कोई कर पाता था, तब दादाभाई ने कटुतम शब्दों में सरकार की आलोचना की। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि दुनिया में भारत का जब तक अस्तित्व रहेगा, भारतवासी दादाभाई को स्नेहपूर्वक याद करते रहेंगे।”

अगर मेरी राय की बात की जाए तो मैं उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के चार शीर्षस्थ नेताओं में शुमार करूंगा, और तिलक, गांधीजी एवं नेहरू के साथ रखूंगा। □

(लेखक प्रतिष्ठित इतिहासकार एवं नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं)

1857

1947

2007

हमारी प्रेरणा के स्रोत

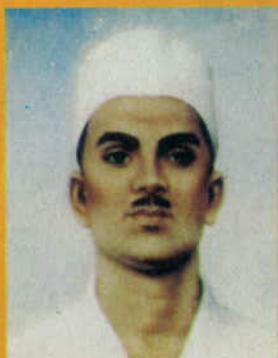
1857 की महान क्रांति



स्रोत : भारत का स्वतंत्रता संग्राम (चित्र एवं दस्तावेज़), एनसीआरटी



युद्ध के मैदान में राजी लक्ष्मी बाँड़



सुर्योदय



भगत सिंह



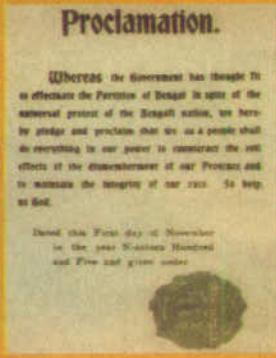
राजगुरु



विश्वा मुंडा



बलगंगाधर तिळक





दांडी, गुजरात में नमक कानून तोड़ते महात्मा गांधी (ऊपर) और उनके सुलेख में संघर्ष में विश्वभर से महायोग की अपील (नीचे)

I want world
sympathy in
this Nettle I
Right against
Wrong.
Sarbojaya
5.4.30

The Pledge of Independence

AS TAKEN BY THE PEOPLE OF INDIA ON PURNA SWARAJ DAY, JANUARY 26, 1930

We believe that it is the inalienable right of the Indian people, as of any other people, to have freedom and to enjoy the fruits of their toil and have the necessities of life, so that they may have full opportunities of growth. We believe also that if any government deprives a people of these rights and oppresses them, the people have a further right to alter it or to abolish it. The British Government in India has not only deprived the Indian people of their freedom but has based itself on the exploitation of the masses, and has ruined India economically, politically, culturally and spiritually. We believe therefore that India must sever the British connection and attain Purna Swaraj or complete independence.

India has been ruined economically. The revenue derived from our people is out of all proportion to our income. Our average income is seven pice per day, and of the heavy taxes we pay 20% are raised from the land revenue derived from the peasantry and 5% from the salt tax, which falls most heavily on the poor.

Village industries, such as hand spinning, have been destroyed, leaving the peasantry idle for at least four months in the year, and dulling their intellect for want of handicrafts, and nothing has been substituted, as in other countries, for the crafts thus destroyed.

Customs and currency have been so manipulated as to bear further burdens on the peasantry. British manufactured goods constitute the bulk of our imports. Customs duties betray clear partiality for British manufactures, and revenue from them is used not to lessen the burden on the masses but for sustaining a highly extravagant administration. Still more arbitrary has been the manipulation of the exchange ratio which has resulted in millions being drained away from the country.

Politically, India's status has never been so reduced as under the British regime. No reforms have given real political power to the people. The tallest of us have to bend before foreign authority. The rights of free expression of opinion and free association have been denied to us and many of our countrymen are compelled to live in exile abroad and cannot return to their homes. All administrative talent is killed and the masses have to be satisfied with petty village offices and clerkships.

Culturally, the system of education has torn us from our moorings and our training has made us bug the very chains that bind us.

Spiritually, compulsory disarmament has made us unmanly and the presence of an alien army of occupation, employed with deadly effect to crush in us the spirit of resistance, has made us think that we cannot look after ourselves or put up a defence against foreign aggression, or even defend our homes and families from the attacks of thieves, robbers and miscreants.

We hold it to be a crime against man and God to submit any longer to a rule that has caused this fourfold disaster to our country. We recognise, however, that the most effective way of gaining our freedom is not through violence. We will therefore prepare ourselves by withdrawing, so far as we can, all voluntary association from the British Government, and will prepare for civil disobedience, including non-payment of taxes. We are convinced that if we can but withdraw our voluntary help and stop payment of taxes without doing violence, even under provocation, the end of this inhuman rule is assured. We therefore hereby solemnly resolve to carry out the Congress instructions issued from time to time for the purpose of establishing Purna Swaraj.



1857

1947

2007

उपनिवेशवाद : एक आर्थिक समीक्षा

अंग्रेज़ी राज में भारतीय उद्योगों का विनाश

○ स्मृतिकुमार सरकार

अंग्रेज़ी शासन से पहले भारत एक महत्वपूर्ण उत्पादक देश हुआ करता था। मन् 1600 के आसपास पाइरीयर्ड ने लिखा था कि आशा अंतरीप से चीन तक स्त्री-पुरुष सभी सिर से पैर तक वस्त्रावृत होते थे। यह कपड़ा भारत में हथकरघों पर बुना जाता था। इससे कुछ पहले सालबैंक ने गुजरात की यात्रा करते हुए पूरे गांव को कताई, बुनाई में लगे देखा था। 18वीं सदी के मध्य में बंगल से गुजरते हुए राबर्ट ओर्म को किसी बड़े शहर या मुख्य सड़क के पास एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला था जो बस्त्र तैयार करने में न लगा हो।

1750 में भारत दुनिया के कुल के एक चौथाई उत्पादित माल का आपूर्तिकर्ता था। एशिया के विभिन्न भागों के व्यापारी यहां आते थे। उसके बंदरगाहों पर चीन और अरब के जहाज़ आते थे और बाद में यूरोपीय देशों के जहाज़ पहुंचा करते थे। भारत में तैयार कपड़ा एशियाई व्यापार में माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाता था और यह दक्षिण-पूर्व एशिया तक जाता था जहां इसके बदले मसाले प्राप्त किए जाते थे।

इसके एक सौ वर्ष बाद स्थिति एकदम बदल गई। भारत में उद्योग नष्ट हो गए। अंग्रेज़ी शासन भारतीय रजवाड़ों को अगर खत्म नहीं कर सका तो उन्हें कमज़ोर करने में कामयाब रहा। इसके कारण समृद्ध भारत

में इन उत्पादों की खपत एकाएक कम हो गई। इस प्रकार से जो शिल्पकार राजे-महाराजों को अपना माल दिया करते थे वे राजनीतिक संरक्षण से कट गए। अंग्रेज़ी शासन आने के बाद उन्हें संरक्षण देने वाले खत्म हो गए। यह कहना गुलत होगा कि यूरोप से शुरू हुए व्यापार से इसकी भरपाई होने लगी। 1747 में जेम्स टेलर ने लिखा था कि ढाका में तैयार कुल के सिर्फ़ एक तिहाई मलमल के यूरोपीय व्यापारी खरीदार थे, बाकी माल एशियाई और भारतीय बाज़ारों में खपता था।

इस प्रकार से अंग्रेज़ी शासन के कारण शहरों में रहने वाले वे शिल्पकार अपने व्यवसाय से उत्थाने गए जिन्हें शासक वर्ग का संरक्षण मिलता था। अंग्रेज़ों ने इंग्लैंड में बना माल जब बड़े पैमाने पर भारत में खपाना शुरू कर दिया तो हालत और अधिक बिगड़ गई। 1813 के चार्टर एक्ट से कंपनी को भारत से व्यापार का अधिकार मिल गया और भारत के बाज़ार मशीन से बने बस्त्रों के लिये खुल गए। परिणाम यह हुआ कि जहां पहले भारत में बना कपड़ा इंग्लैंड में बिकता था, वहां अब इंग्लैंड का बना कपड़ा भारत में बिकने लगा। 1840 में एक ब्रिटिश फर्म के सर जॉन लार्पेट ने ब्रिटेन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स की प्रवर समिति को दी गई रिपोर्ट में कहा था - “हमने भारत के उत्पादकों को नष्ट कर दिया है।” इसी बात को कार्ल मार्क्स ने कुछ समय

बाद और खुले शब्दों में कहा, “अंग्रेज़ों ने उसी देश को सूती बस्त्रों से पाट दिया जो सूती बस्त्रों का उद्गम स्थल हुआ करता था।”

1813 में बनारस के कलेक्टर ने शहर के कटुवा कहे जाने वाले बुनकरों में आक्रोश पाया। इसके दो दशक बाद पाया गया कि वे बुनकर छोटी-मोटी दुकान खोलकर आजमगढ़ में रहने लगे। 1850 तक यूरोपीय व्यापारियों ने भारतीय बाज़ार में पैठ बना ली और भारत से कताई का काम एकदम खत्म हो गया। मऊ के बुनकरों को मुगलों का संरक्षण प्राप्त था। वह भी बिलकुल समाप्त हो गया। मोमिन कहे जाने वाले बुनकर उत्तर भारत छोड़ गए और कलकत्ता और मुंबई में बस गए।

सिर्फ़ बुनकर ही नहीं, लोहा उद्योग को भी जबरदस्त धक्का लगा। स्वीडन और इंग्लैंड का लोहा जनजातीय घरेलू संगठनों तक पहुंच गया। धावड़ कहे जाने वाले मराठा घुमंतू लोहारों को अपना परंपरागत व्यवसाय छोड़ देना पड़ा। 1857 में विद्रोही नेताओं ने आजमगढ़ घोषणा में कहा था, “ज़ाहिर है कि यूरोप के लोगों ने भारत में अपना माल भर दिया है और उन्होंने बुनाई, रुई धुनाई, बढ़ईगिरी, लोहार और जूते बनाने के काम में लगे लोगों को बेरोज़गार कर दिया है। उन्होंने उनका व्यवसाय छीन लिया है। देश

के सभी कारीगर भुखमरी के काग़ार पर पहुंच गए हैं। इसीलिये इन शिल्पकारों को अंग्रेज़ों की नौकरी छोड़ कर युद्ध में हमारा साथ देना चाहिए।”

19वीं सदी के शुरू में ही भारत में मशीनें आ गई थीं। इनमें स्टीमर, आटा, तेल, धान मिलें और रुई साफ़ करने की मशीन शामिल थीं। बाद में रेलगाड़ी आई, इन सबसे लोगों के मन में उम्मीदें जारी हुईं। ये तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में प्रकट हुईं। एक व्यंग्यकार ने इन भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है – “ऐ मशीनों, तुम ने हमारे गांव और शहर जीत लिये हैं। मैं तुम्हारा नमन करता हूं।”

जो भी हो, लेकिन खेती की प्रगतिहीन स्थिति और धीमी औद्योगिक प्रगति से लोग जल्दी ही निराश हो गए। बार-बार पड़ने वाले अकाल से स्थिति और निराशाजनक हुई और राज में बंगाल में बुनकरों की बिगड़ती हालत ने इसे और गंभीर बनाया। कार्ल मार्क्स पहले ही ब्रिटेन के भारतीय अर्थव्यवस्था पर बुरे प्रभाव की बात कह रहे थे। इन सबसे निश्चय हो गया कि ब्रिटेन की स्वतंत्र व्यापार नीति और ब्रिटेन से आयात को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति के कारण भारत के उद्योग बर्बाद हो गए।

राष्ट्रवादियों ने अंग्रेज़ी शासन के कारण भारतीय उद्योगों की दुर्दशा को उनके खिलाफ़ मुख्य दलील बनाया। उनका कहना था कि पुराने उद्योग बर्बाद हो गए और नये उद्योग पनप नहीं पा रहे जिसके कारण भारत में ग्रेरीबी बढ़ती जा रही थी। अन्य लोग समझते थे कि अंग्रेज़ी राज्य के बिना भी हस्तशिल्प खत्म हो जाएंगे। सच भी है, अन्य जिन देशों में औद्योगीकरण बढ़ा, वहां हस्तशिल्प समाप्त हो गए क्योंकि वे मशीनों से प्रतियोगिता नहीं कर पाए। लेकिन भारत में यह स्थिति और भी ख़राब थी क्योंकि भारतीय दस्तकारों को लंकाशायर मैनचेस्टर के मिलों से बराबरी करनी पड़ रही थी। कोई भी स्वदेशी सरकार, चाहे वह कितनी ही उदासीन होती, ऐसा न होने देती। लेकिन राष्ट्रवादी यह नहीं बता पाए कि ब्रिटेन

से आयात के कारण किस हद तक भारतीय उद्योग प्रभावित हुए। उन्होंने इस बात की भी अनदेखी की कि कुछ संरक्षित क्षेत्र और संरक्षित उत्पाद भी आयात से प्रभावित नहीं होते थे।

ब्रिटिश राज से हमदर्दी रखने वाले शुरू से ही उद्योगों को नष्ट होने के सिद्धांत के खिलाफ़ बोलते थे। उनका विश्वास था कि ब्रिटेन से सूती माल आयात को अनायास ही बढ़ा-चढ़ा कर बताया जा रहा है। क्राफर्ड ने कहा कि ब्रिटेन से आयात के कारण भारतीय उद्योगों पर कोई बुरा असर नहीं पड़ रहा था क्योंकि वह भारत में तैयार होने वाले सूती माल का मात्र 6 प्रतिशत बैठता था। इसी तरह विक्टर किएरनन ने कहा था कि 1837 में कुल 6 करोड़ 40 लाख गज मलमल आयात किया गया। इससे औपनिवेशिक भारत के निवासियों को एक-एक गज कपड़ा भी नहीं दिया जा सकता था। उन्हें औसतन प्रतिव्यक्ति पर 16 गज कपड़े की ज़रूरत थी। लेकिन आंकड़ों का आधार कुछ भी हो, स्थिति अस्पष्ट और ऐसी बनी रही कि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता था।

औपनिवेशिक शासन के बाद के युग में इस पुरानी बहस में एक नया मोड़ आ गया। उद्योग नष्ट करने वालों ने जनगणना के आंकड़ों के जरिये बताने की कोशिश की कि भारत में व्यावसायिक ढांचा बदल गया है जो सावित करता है कि विदेशी शासन में औद्योगिक गिरावट आई थी। उन्होंने दो समस्याएं बताई। शुरू की जनगणना में इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्यवसाय मिले-जुले होते थे और जनगणना की तकनीकें भी बार-बार बदली जाती थीं। डेनियल और एलिस थार्नर ने 1881 और 1931 के आंकड़ों की तुलना करके दलील दी थी कि हालांकि पहली जनगणना से कुल आबादी में उद्योगों का हिस्सा घटता नज़र आता है लेकिन यह भ्रामक हो सकता है। उनका मानना था कि 1881 और 1931 के बीच उद्योगों में लगी भारत की जनशक्ति ज्यों-की-त्यों (अपरिवर्तित) थी।

इस कथन का विरोध करते हुए अमिय कुमार बागची ने बिहार के गंगा तटवर्ती इलाकों के बारे में फ्रांसिस बुचानन की गवाही की

1901 की जनगणना आंकड़ों के साथ तुलना की। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि 1809-1813 और 1901 के बीच ब्रिटेन से आए सूती माल के प्रचलन के कारण इस क्षेत्र में औद्योगिक आबादी में दस प्रतिशत की गिरावट आई। उनके अध्ययन से अनेक उन आपत्तियों का जवाब मिल गया जो राष्ट्रवादी लोगों द्वारा उद्योग नष्ट होने के जवाब में उठाई जाती थीं। कई लोगों ने बुचानन के आंकड़ों की तुलनीयता पर सवाल उठाए। उनका कहना था कि उनके सर्वेक्षण की प्रकृति अलग प्रकार की थी और जनगणना बिल्कुल अलग चीज़ थी। उन्होंने जिस प्रकार के परिवहन का प्रयोग किया और जिस क्षेत्र में सर्वेक्षण किया वहां जनगणना की तरह का घर-घर, गांव-गांव सर्वेक्षण संभव ही नहीं था।

औद्योगीकरण नष्ट करने के सिद्धांत के एक कटु आलोचक मॉरिस डी. मॉरिस का तर्क था कि आयातित धागे का बाज़ार पर खास असर नहीं पड़ा क्योंकि मोटे धागे का बाज़ार बस्तुतः अछूता छोड़ दिया गया था। बुनकरों की संख्या कम नहीं थी और शुरू के मुकाबले अंत में भी उनकी हालत कुछ खास ख़राब न थी। बाज़ार में अपना हिस्सा बरकरार रखने में वे सफल रहे थे। इसका कारण यह था कि अनेक बाज़ार आयातित माल से प्रभावित नहीं थे और समाज का एक वर्ग मोटे धागे से बना कपड़ा पसंद करता था। सस्ते मशीनी धागे के इस्तेमाल से बुनकरों की हालत में सुधार आया। इसीलिये भारत में ब्रिटिश माल के आयात से उद्योगों को ज्यादा नुकसान नहीं हुआ और इसके कारण भारत की अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक परिवर्तन आने की संभावना नहीं थी।

लेकिन बुनकरों को हुए नुकसान को इस प्रकार नकारा नहीं जा सकता। इसका कारण यह था कि भारत में कर्ताई और बुनाई वालों का अनुपात काफी ऊँचा था। सन् 1900 तक हाथ से कते और धागे की घरेलू खपत का अनुपात 25 प्रतिशत तक डगमगा गया और प्रथम विश्व युद्ध तक यह घट कर 18 प्रतिशत हो गया। 1920 में यह और घट कर 10 प्रतिशत

रह गया। कताई करने वाले की पहुंच सूत बाज़ार की पहुंच से दूर हो गई। 1860 के आस-पास विदेशी फर्मों के लिये बड़े पैमाने पर रुई खरीदने वालों के साथ वह प्रतिद्वंद्विता न कर सका। 19वीं सदी के अंत तक स्थिति तब और खराब हो गई जब भारतीय सूती मिलों ने भी बाज़ार से बड़े पैमाने पर कपास खरीदना शुरू कर दिया। 1920 तक स्थिति यह हो गई कि किसानों/बुनकरों के घर की ओरतें सिर्फ़ खाली समय में ही कताई का काम करती थीं।

बुनकरों के बारे में मॉरिस का रवैया अधिक भ्रामक है। उसका मुख्यतः कहना था कि इंग्लैंड से कपड़ा आयात करने से बुनकरों को कोई हानि नहीं हुई लेकिन बाद में उसने खुद माना है कि 1835-70 के बीच हथकरघा बुनकरों की प्रतियोगिता के अवसर कम हो गए। उसने बुनकरों की दुर्दशा का कारण यह बताया कि फ़सलें ख़राब हो जाने के कारण कपड़े की स्थानीय मांग एकदम घट गई थी। बाद में वह उनकी दुर्दशा को महत्वपूर्ण नहीं मानता क्योंकि सरकारी सूत्र उसकी चर्चा ही नहीं करते। उसने इस बात की बिल्कुल अनदेखी कर दी कि शुरू में भारतीय बुनकरों की चिंता करना कंपनी के हित में था और बाद में जब उसका एकाधिकार समाप्त हो गया तो उसने उनकी चिंता छोड़ दी। मॉरिस ने इस बात पर भी कोई ध्यान नहीं दिया कि यूरोप की निर्यात व्यापार बंद हो जाने के बाद अर्थव्यवस्था पर कितना बुरा असर पड़ा।

मॉरिस का तर्क था कि आयातित सूती माल से भारत में बढ़ रही कपड़े की मांग पर नाममात्र का असर पड़ा। लेकिन अगर ऐसा था तो औद्योगिक क्षेत्र में रोज़गार के अवसर क्यों घट गए? प्राप्त सबूतों से यही संकेत मिलता है कि प्रतिव्यक्ति कपड़े की खपत में हथकरघा पर बने कपड़े का हिस्सा घट गया। हाल के एक अध्ययन से पता चलता है कि 1850 से 1880 के बीच हथकरघा क्षेत्र में जितना रोज़गार घटा उसमें भारत की आबादी के दो प्रतिशत को लगाया जा सकता था। यह लगभग वही बात है जो ब्रिटिश शासन के आलोचक राष्ट्रवादी कहते रहे थे। यह भी सच है कि इस प्रकार के कथनों के समर्थन में अब सबूत नहीं जुटाए जा सकते। फिर भी अब विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित जो भी सबूत मिलते हैं उनसे यही साबित होता है कि धीरे-धीरे बुनकरों की हालत ख़राब होती गई और इंग्लैंड से आयात बढ़ता गया।

भारत में विदेशी माल के आयात के कारण देसी उद्योगों के नष्ट होने की सध्यनता देश, काल और कामकाजी समूह के अनुसार भिन्न-भिन्न रही। बंगाल में कपड़ा बुनने का उद्योग 19वीं सदी के शुरू में ही खत्म हो गया लेकिन मध्य भारत में आयात के कारण बुनकरों की हालत 1867 के बाद बिगड़ी। राजस्थान में यही हालत 1911 के बाद तब हुई जब वहां रेलमार्ग चालू हो गया। असम में हथकरघा उद्योग 20वीं सदी के शुरू तक ठीक बना रहा हालांकि कताई घट गई थी। कुशल कारीगरों की हालत सब जगह एक जैसी ख़राब हुई। लेकिन मोटा धागा तैयार करने वाले अपना काम करते रहे।

उत्कर्ष IAS

हिन्दी माध्यम का अप्रतिम संस्थान

हिन्दी साहित्य कक्षा प्रारम्भ

दिल्ली विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ प्रोफेसर के द्वारा मार्गदर्शन विगत १४ वर्षों से निरन्तर नये कीर्तिमानों की तरफ अग्रसित

संस्कृत साहित्य कक्षा प्रारम्भ

दिल्ली विश्वविद्यालय के ख्याति प्राप्त प्रोफेसर द्वारा। विगत वर्षों पद्धति में पूर्ण नूतन परिवर्तन व परिवर्धन एवं नोट्स विषयक सारी सामग्री सर्वथा नूतन

इतिहास मुख्य परीक्षा-2007 फाउन्डेशन-2008-09

दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रोफेसर जिन्होंने अनेक प्रमाणिक पुस्तकों की रचना की है, एवं एच. पी. पाण्डेय द्वारा

विश्व इतिहास से कक्षा प्रारम्भ 18 जुलाई प्रातः 11 बजे

भूगोल द्वारा एस.कृष्ण FOUNDATION

सामाजिक अध्ययन द्वारा विशेषज्ञ समूह

2157, औट्रम लाइन, (टी.बी. हॉस्पिटल के सामने) किंग्ज़वे कैम्प, दिल्ली-9

9891666549, 9868448606
27605100, 27603060

क्षेत्रीय हथकरघा उद्योगों पर हाल में किए गए अनुसंधान से इस बात को बल मिला है कि हथकरघा और आधुनिक सूती मिलों में आदान-प्रदान शुरू होने से भी इस क्षेत्र को पुनर्जीवन मिला। इस प्रकार से बंबई प्रेसीडेंसी के अधिकांश बुनकर केंद्रों का 19वीं सदी के अंत में काफी विकास हुआ। तमिलनाडु में भी यह बात देखी गई। 20वीं सदी के आरंभ तक मध्य प्रांत में इस उद्योग ने वह लगभग सारी कमी पूरी कर ली जो इसे पहले झेलनी पड़ी थी। अखिल भारत स्तर पर भी इस समय हथकरघा क्षेत्र ने धीरे-धीरे प्रगति शुरू कर दी। 1924 में ए.टी.वेस्टन ने बंगाल में उद्योगों पर टिप्पणी करते हुए पाया कि छोटे बुनकर अब भी इस देश के बुनाई और वस्त्र उद्योग के काफी बड़े हिस्से पर काविज़ हैं।

भारत में वस्त्र उद्योग अपने कुल का आधा उत्पादन महिलाओं के लिये करता है। वे परंपरागत ढंग के रंग-बिरंगे कपड़े पसंद करती हैं। उनकी यह मांग चाहे कितनी ही विभिन्नतापूर्ण, बिखरी हुई रही हो, लेकिन इस कारण भी स्थानीय बुनाई उद्योग बचा रहा। भारतीय साड़ी का आकार, इसके रंग और डिजाइनों की पेचीदगियों और सामाजिक परंपराओं आदि के कारण भी यह उद्योग बच पाया। भारतीय सूती मिलें इस स्थिति को नहीं बदल पाईं। 1936 में एन.एम. जोशी ने तर्क देते हुए कहा था कि भारतीय मिलों की प्रतिद्वंद्विता और विदेशी आयात के बावजूद यह उद्योग महिला परिधानों के उत्पादन में लगा रहा।

लोहा गलाने में गिरावट के बावजूद लोहारों का काम भी बढ़ा। अंग्रेज़ों के आने से पहले लोहा महंगा था जिसके कारण इसका इस्तेमाल सीमित था। स्टीमरों और रेल सेवाओं से जब बंदरगाह शहर जुड़ गए तो आयातित लोहा दूरदराज के बाजारों में भी पहुंचने लगा। निर्यातक देशों और माल ढोने वाली कंपनियों की प्रतिद्वंद्विता के कारण इसकी कीमतें भी गिरीं। यह बाजार में छड़, सरिए, चादर और डले के रूप में बिकता था और ले जाने में आसान था। इसका इस्तेमाल भी बढ़ गया।

रेलवे से कबाड़ के रूप में यह बहुत सस्ता मिलने लगा। लोहा गलाने में लकड़ी के कोयले की जगह अब पत्थर का कोयला काम आने लगा जिससे इसकी लागत भी कम हो गई।

छोटी इंजीनियरिंग यूनिटों से लेकर रेलवे वर्कशाप तक, सार्वजनिक निर्माण विभाग, स्टीमर और नहर कंपनियों, पटसन और सूती मिलों, सबमें लोहार की सेवाओं की ज़रूरत थी। पूर्व का रोफिल्ड कहे जाने वाले कोलकाता और पश्चिम में मुंबई तक इस बात के उदाहरण हैं कि लोहार की हर क्षेत्र में ज़रूरत है।

दस्तकारों के कई ऐसे क्षेत्र भी थे जिन पर न तो विदेशी प्रतिद्वंद्विता का असर पड़ा और न ही बड़े उद्योगों का। इसका एक उदाहरण है ठठेरा उद्योग। इसका औपनिवेशिक काल में काफी विकास हुआ और इसमें वे लोग भी शामिल हुए जो परंपरागत रूप से इसमें नहीं लगे थे। इस कला की खास बातें और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ जुड़े होने के कारण ठठेरों का पीतल उद्योग तब तक बचा रहा जब तक 1920 के दशक में अल्युमिनियम के आ जाने से यह पिछड़ नहीं गया।

औपनिवेशिक शासन के कारण भारत में तांबे और इसके मिश्रण की कीमतें घट गईं। 1861 से 1890 के बीच तांबे की कीमतों में कलकता के बाजारों में 20 प्रतिशत से ज्यादा की गिरावट आई। 19वीं सदी के अंत में लोग आयातित धातु की चादरों का इस्तेमाल करने लगे जिससे ठठेरों को सबसे ज्यादा लाभ हुआ। इससे उनके उत्पादन की प्रक्रिया आसान हो गई, लागत घट गई और ठठेरों को अपने बाजार का विस्तार करने के लिये बढ़ावा मिला। पहले उन्हें अपना माल बेचने में कठिनाई होती थी लेकिन रेलवे और स्टीमर के कारण उनकी यह बाधा भी दूर हो गई। मुरादाबाद और जयपुर में बनी पीतल की वस्तुओं की यूरोप में मांग बढ़ गई जिससे 19वीं सदी के बाद से उन्हें और लाभ हुआ।

अगर औपनिवेशिक भारत के हस्तकला उद्योगों पर विहंगम दृष्टि डालें तो ज़ाहिर होगा

कि परंपरागत स्थिति में दो अर्थों में बदलाव आया। विदेशी शासन का वस्त्र उद्योग पर भले ही बुरा असर पड़ा लेकिन इसके कारण काफी व्यापक और विविधतापूर्ण हस्तकला क्षेत्र नष्ट नहीं हुआ। इसके बाद जो बदलाव आया और मांग और पूर्ति में जो विस्तार हुआ और बड़े उद्योगों का जो उदय हुआ उसके कारण भारत की अर्थव्यवस्था एकदम नहीं बदली। 1947 में दस्तकार उत्पादक शक्ति के 80 प्रतिशत के बराबर थे जो अंग्रेज़ी शासन काल में मंद आर्थिक विकास के संकेत के। कार्ल मार्क्स ने जिस रेल व्यवस्था को 'आधुनिक उद्योग का अग्रगामी' कहा था वह भारत में उद्योगों को प्रोत्साहित करने में विफल रही।

लेकिन दस्तकारों द्वारा उत्पादन पहले के मुकाबले कई अर्थों में भिन्न रूप से बचा रहा। उद्योग कई प्रकार से बदल गए। उनके औद्योगिक-सामाजिक संगठन, साधन एवं तौर-तरीके, कच्चे माल और ईंधन का इस्तेमाल सब कुछ बदल गया। इस बदलाव का एक प्रमुख उदाहरण है परंपरागत रूप से किया जाने वाला चमड़े का काम। यहां पर यह महत्वपूर्ण है कि इस परिवर्तन में धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों के कारण कोई बाधा नहीं आई हालांकि इन्हें दस्तकारों द्वारा परिवर्तन स्वीकार करने के रास्ते में रुकावट डालने वाला माना जाता है।

और अंत में, अंग्रेज़ी शासन के दौरान हस्तशिल्प उत्पादों के बारे में तीन खास बातें कही जा सकती हैं। पहला यह कि दस्तकारों के सामाजिक संगठनों का उनके उत्पाद के उत्पादन और विपणन से नियंत्रण धीरे-धीरे खत्म हो गया। इसके बाद अच्छी किस्म से मोटे वस्त्र तैयार करने की ओर रुकान बढ़ा। महाजन अथवा स्थानीय स्तर पर अन्य नामों से जाने जाने वाले बिचौलिये पैदा हो गए। उन्होंने अपनी अगली पीढ़ी को अपना ज्ञान और कला सिखाना बंद कर दिया। यह प्रक्रिया भले ही धीमी और अप्रत्यक्ष रही हो, लेकिन दस्तकार सामान्य श्रमिक बन कर रह गए। □

(लेखक कल्याणी विश्वविद्यालय से संबद्ध है)

1857

1947

2007

प्रयाण गीत



बाबी फौजियों का कौमी गीत

○ अज़ीमुल्ला ख़ाँ

हम हैं इसके मालिक हिंदुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का जनत से भी प्यारा।
ये हैं हमारी मिल्कियत हिंदुस्तान हमारा।
इसकी रुहानियत से रोशन है जग सारा।
कितना कदम कितना नईम सब दुनिया से न्यारा।
करती है जरखेज जिसे गंगो जमुन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत, पहरेदार हमारा।
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नवकारा।
इसकी खाने उगल रहीं सोना, हीरा, पारा।
इसकी शानो शौकत का दुनिया में जयकारा।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा।
लूटा दोनों हाथों से प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की ज़ंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिंदू मुस्लिम सिख हमारा भाई भाई प्यारा।
यह है आज़ादी का झंडा इसे सलाम हमारा। □

(यह गीत बग़ावत के पूरे दौर में और उसके बाद भी गाया जाता रहा है। माना जाता है कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने इस गीत की रचना की थी। उनके बारे में यह भी कहा जाता है कि वे एक तेजस्वी कानूनगो और अच्छे सूत्र-संचालक थे)

कदम कदम बढ़ाए जा

आज़ाद हिंद फौज़ का प्रयाण गीत

कदम कदम बढ़ाए जा खुशी के गीत गाए जा
यह जिंदगी है कौम की तू कौम पे लुटाए जा

तू शेरे हिंद आगे बढ़
मरने से कभी तू न डर
उड़ा के दुश्मनों का सर जोशे वतन बढ़ाए जा
कदम कदम

तेरी हिम्मत सदा बढ़ती रहे
खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने तेरे अड़े उसे तू खाक में मिलाए जा
कदम कदम

चलो दिल्ली पुकार के
कौमी निशां संभाल के
लाल किले पे गाड़ के लहराए जा लहराए जा
कदम कदम

1857

1947

2007

उपनिवेशवाद : एक आर्थिक समीक्षा

1857 और संचार तंत्र

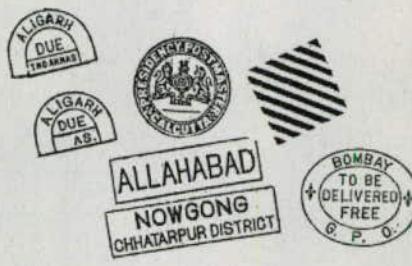
○ अरविंद कुमार सिंह

बहुत से इतिहासकार 1857 की क्रांति की विफलता के प्रमुख कारकों की जब चर्चा करते हैं तो आमतौर पर संचार तंत्र की खामियों पर खास ध्यान नहीं देते। अनेक इतिहासकार तो यह भी नहीं स्वीकारते कि तार जैसी सुविधा ने अंग्रेजों को मदद दी। पर वास्तविकता यह है कि बेहतर संचार तंत्र के बलते अंग्रेज कामयाब हुए जबकि तार की बात तो दूर, बहुत सी जगहों पर बागियों की डाक व्यवस्था भी ठोस शक्ल नहीं पा सकी थी।

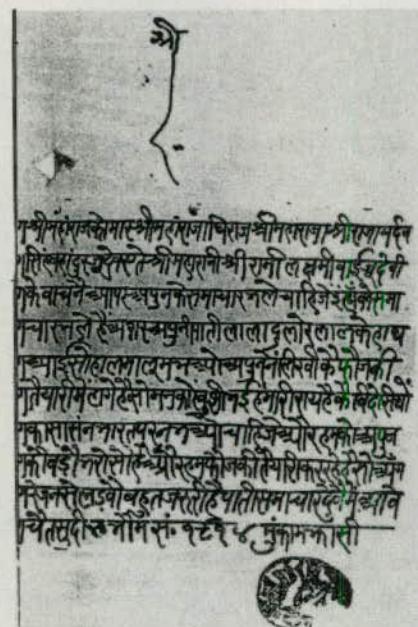
1857

का महान विद्रोह उस साल की विश्व इतिहास की सबसे बड़ी घटना ही नहीं थी, दुनियाभर में अंग्रेजी राज और उपनिवेशवादी व्यवस्था के खिलाफ 19वीं सदी की सबसे बड़ी क्रांति भी थी। यही वजह है कि 150 साल बीत जाने पर भी उसका ऐतिहासिक और सामाजिक महत्व बरकरार है। भले ही क्रांति की चिंगारी सिपाही विद्रोह से भड़की और सिपाही ही आखिर तक क्रांति की मजबूत रीढ़ बने रहे पर इस बग़्वत में बड़ी संख्या में आम लोग शामिल हुए। व्यापारी, किसान, मजदूर और बुद्धिजीवी तबका, सभी इस महान क्रांति में भागीदार रहे। पुलिस के जवान, डाक कर्मचारी तथा अन्य कई वर्गों के कर्मचारी भी क्रांति से जुड़े।

यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि काफी बड़े इलाके में फैली 1857 की क्रांति का संचालन उस दौर में कितना कठिन रहा होगा, जब संचार तंत्र दयनीय अवस्था में



था। उस समय तार, डाक और रेल सभी पर अंग्रेजों का कब्ज़ा था और उनके पास एक मजबूत खुफिया तंत्र भी था। फिर भी कलकत्ता से पेशावर तक जो क्रांति की ज्वाला उठी उसके पीछे कोई संगठन और आपसी संवाद तो निश्चय ही रहा होगा। कहा जाता है कि 31 मई, 1857 को क्रांति की तिथि तय की गई थी, पर उसके ठोस साक्ष्य नहीं मिले हैं। फिर भी तमाम ऐसे पत्र ज़रूर अंग्रेजों ने पकड़े जिनसे साबित होता है कि विभिन्न रेजीमेंटों के बीच बग़्वत संबंधी पत्राचार कूट भाषा में हो रहा था। क्रांति के पहले बागियों के कई दूत विभिन्न राजाओं और सैनिकों से संवाद



कर रहे थे, क्रांतिवीर नाना साहब के कई दूत चुनिंदा राजाओं के दरबार में विशेष पत्र पहुंचा रहे थे, जबकि फैजाबाद के मौलवी अहमद उल्लाह शाह उर्फ़ डंका शाह तथा कई अन्य

संन्यासी और फ़कीर 1857 से पहले उन कई जगहों पर खासे सक्रिय रहे जो कालांतर में क्रांति के केंद्र बने। क्रांति के समय फ़कीरों तथा साधुओं ने अथवा अन्य लोगों ने उनके वेष में कई नगरों और सैनिक छावनियों में संदेश और सूचनाएं भेजने में मदद की।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि क्रांति के संगठन के लिये काफी पत्र-व्यवहार हुए थे। ले. जनरल ए. इनेस ने लिखा है कि गुप्त पत्र-व्यवहार सबसे पहले मुसलमानों ने शुरू किया। उनके पत्रों में गुप्त लिपियों का प्रयोग होता था। ये पत्र सिपाहियों में फैल गए और इनका व्यापक प्रचार हो गया। आगे इन बातों की पुष्टि हुई और काफी पत्र पकड़े भी गए। मसलन मूसाबाग (लखनऊ) में पैदल सेना की दो रेजीमेंटों ने जब विद्रोह किया तो सैनिकों के पास ऐसे पत्र मिले, जिनमें पैदल रेजीमेंट नंबर 48 को विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहित किया गया था। इसी तरह बनारस में रेजीमेंट 37 के एक हवलदार तथा बैरकपुर के एक भारतीय अधिकारी का पत्र पकड़ में आया जिसने रीवा नरेश को लिखा था कि अगर वह अंग्रेजों से युद्ध करें तो दो हजार लोग उनका साथ देने के लिये तैयार हैं। ये लोग मई 1857 में गिरफ़तार भी हुए।

मंगल पांडेय की फांसी और 10 मई, 1857 को मेरठ में हुई बगावत से भी पहले 23 जनवरी 1857 को रानीगंज छावनी में रहस्यमय आग लगी थी और इसके बाद 25 जनवरी को ही बैरकपुर का तारघर भी जला डाला गया था। तारघर जलाना एक बड़ा संकेत था। पर यह भी ध्यान रखने की बात है कि मेरठ के बागी सैनिकों ने दिल्ली पहुंच कर जब 11 मई, 1857 को हिंदुस्तान का बादशाह बहादुर शाह ज़फर को घोषित कर दिल्ली आज़ाद करा लिया तो उसके तत्काल बाद ही पैदल और घुड़सवार हरकारों की मदद से क्रांति की चिंगारी देश के कई हिस्सों में फैलाई गई। इस क्रांति की व्यापकता खुद यह संकेत देती है कि इसके विस्तार के पीछे कितने लोगों का श्रम और बलिदान निहित रहा होगा। ज़ाहिर है कि यह काम क्रांतिवीरों ने हजारों साधनविहीन

गुरीब पैदल हरकारों की मदद से किया। यही हरकारे बागियों की संचार व्यवस्था के आधारस्तंभ थे। गुरीबी के बावजूद ये अंग्रेजों के प्रलोभन की चपेट में नहीं आए और अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

डाक व्यवस्था और 1857

1857 में संचार साधनों की स्थिति बहुत ख़राब थी। अंग्रेजों के सबसे ताकतवर हथियार रेल और तार भी तब बहुत सीमित इलाकों में ही थे। डाक की गति बहुत धीमी थी। ज्यादातर इलाकों में नदियों पर पुल नहीं थे, सड़कों की दशा दयनीय थी और अधिकतर पैदल रास्ते घने जंगलों से होकर गुजरते थे। ये जंगली जानवरों तथा डाकुओं आदि के नाते इतने असुरक्षित थे कि बिना कारवां के जाना भी संभव न था। ऐसे में एक से दूसरी जगह पर आवाजाही या संदेश भेजना कितना कठिन रहा होगा? नावों से लेकर बैलगाड़ी, ऊंट, तांगा; घोड़े से लेकर बहंगी और पालकी जैसी धीमी गति के साधनों से ही उस समय संदेश भेजे जाते थे और उनको गंतव्य तक पहुंचने में 15-20 दिन लग जाते थे। सूरत से आगरा पहुंचने वाले कारवां को 35-40 दिन सफर में बिताने पड़ते थे। पैदल या बैलगाड़ी ही तब यात्रा के प्रमुख साधन थे। घोड़ों का सीमित उपयोग था क्योंकि वे काफी महंगे पड़ते थे। राजस्थान, गुजरात और सिंध में डाक व यात्राओं के लिये ऊंटों का उपयोग होता था।

फिर भी 1857 में मुख्य क्रांति केंद्रों में हरकारे ही संचार के सबसे बड़े साधन थे। डाक की जीवन रेखा कही जानेवाली जीटी रोड उस समय काफी लंबी दूरी तक बागियों के कब्जे में थी। जीटी रोड को अपने कब्जे में लेने ओर रानीगंज, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, अलीगढ़, मेरठ, अंबाला तथा लाहौर जैसे प्रमुख शहरों तक सुगम यातायात के लिये अंग्रेजों को एक-एक इंच लड़ा पड़ा। इसी के बाद सड़क की सुरक्षा के लिये विशेष पुलिस तैनात हुई और देर रात तक पहरा शुरू हुआ।

संयोग ही है कि 1857 से कुछ पहले ही भारत में रेल और तार का आगमन हुआ था और डाक व्यवस्था को भी एक ठोस स्वरूप

दिया गया था। 1857 में ये तीनों साधन अंग्रेजों के लिये बहुत मददगार रहे। 1860 के बाद अंग्रेजों के तीनों साधनों के तीव्र विकास की ओर इसी नाते विशेष ज़ोर दिया। डाक का जहां तक सवाल है तो 1857 के पहले तमाम देशी डाक व्यवस्थाएं ध्वस्त हो गई थीं। 1854 में केंद्रीकृत डाक के मौजूदा नेटवर्क का जन्म हुआ था और उसी साल डाकघरों के पहले महानिदेशक की नियुक्ति करने के साथ सार्वीय स्तर पर एक मजबूत तंत्र बना। इसी साल डाक टिकट जारी हुए, जिसने पत्र भेजने में दूरी की बाधाओं को समाप्त कर दिया। बैरंग पत्रों की शुरुआत उसी समय हुई थी। इसके बाद 1856 में 40 डाक मंडल बना कर डाक व्यवस्था को और मजबूत बनाया गया।

1857 में भारत में साक्षरता एक फीसदी के आसपास ही थी, लिहाज़ा पत्राचार और तार दोनों का आम भारतीय बहुत कम उपयोग करते थे। उस समय सभी श्रेणी के पत्रों की सालाना आवाजाही सवा करोड़ थी। लेकिन 1857 और 1858 के दौरान डाक विभाग में रिकार्ड 23 लाख पत्र डेड लेटर आफिस (डीएलओ) में वापस लौटे। ये आंकड़े किसी को चकराने के लिये काफी हैं। उस समय आधुनिक पत्र संस्कृति विकसित नहीं हुई थी और बहुत से पत्रों पर ठीक से पते भी नहीं लिखे होते थे। फिर भी इतनी बड़ी संख्या में पत्रों की वापसी के पीछे अंग्रेज़ी डाक विभाग ने तर्क़ यह दिया कि उस दौरान बगावत में बहुत से लोग या तो मार दिए गए या अपने ठिकानों से पलायन कर गए थे। बात दोनों में से कोई भी रही हो पर हैं गंभीर। तमाम इलाकों में जब गांव के गांव तोप लगा कर उड़ाए जा रहे हों और फांसी के फंदों से पेड़ तक झुक गए हों तो वापस गए पत्रों का आंकड़ा अविस्तारीय नहीं लगता। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि दिल्ली पर कब्जे के बाद जिस तेज़ी से उत्तर भारत के विभिन्न इलाकों में क्रांति का संगठन हुआ, उसमें हरकारों की कम भूमिका नहीं थी। अगर तार तथा अंग्रेजों की भारी-भरकम तैयारियों के बाद भी विभिन्न जगहों से बड़ी संख्या में बागी सैनिक दिल्ली

HON'BLE EAST INDIA COMPANY'S ELECTRIC TELEGRAPH

Distance, (not exceeding 16 words,) can be sent any distance not exceeding	600 Miles, at a charge of 1/-		
Over	Distance 600	To	1/-
Distance	Distance 1,200	To	5/-
Over	Distance 1,200	To	5/-

Money from Delhi 11th May To Amballa
 From Brigadier Comdg at Delhi To Brigadier Comdg at Amballa
Number of Words 78 Service

Cantonment in a state of siege. Mutineers from Meerut. 3rd Light Cavalry number not known said to be one hundred and fifty or over cut off. Communication with Meerut broken off since 5th Bridge of Boats. 54th N. I. sent against them but would not act. Several officers killed and wounded. City in a state of considerable excitement. Very quiet down but nothing certain yet. Further information will be forwarded.

Copy to be sent to Brigadier in Command

Rawalpindie

12th May 1857

L. N. Fraser.

A copy respecting this Message is to be forwarded to each of the stations of the Paper

7.20 P.M.

Message from Delhi 11th May

From Brigadier Frazer
 Comdg at Delhi
 Number of Words 78 Service

To Amballa
 To Brigadier Comdg at Amballa

Cantonment in a state of siege. Mutineers from Meerut. 3rd Light Cavalry number not known said to be one hundred and fifty or over cut off. Communication with Meerut broken off since 5th Bridge of Boats. 54th N. I. sent against them but would not act. Several officers killed and wounded. City in a state of considerable excitement. Very quiet down but nothing certain yet. Further information will be forwarded.

L. N. FRASER,
 Inspector in charge.

Electric Telegraph Office
 12th May 1857.
 Despatch 7.20 a.m.

Reed. for trans—Date 11th May 1857.

To All Stations.

The following just recd. from Delhi. We must leave office all the Bungalows are being burnt down by the Sepoys of Meerut. They came in this morning. We are off don't roll today. Mr C. Todd is dead we think. He went out this morning and has not returned yet. We heard that nine Europeans were killed. Good bye.

Rawalpindie

L. N. Fraser.

MESSAGE TO BE SENT BY ELECTRIC TELEGRAPH.

Rawalpindie

12.

12.

11th May 1857

Amballa

All Stations

The following just recd. from Delhi. We must leave office all the Bungalows are being burnt down by the Sepoys of Meerut. They came in this morning. We are off don't roll today. Mr C. Todd is dead we think. He went out this morning and has not returned yet. We heard that nine Europeans were killed. Good bye.

Frank.

First.

1.00 Rs. 1.00

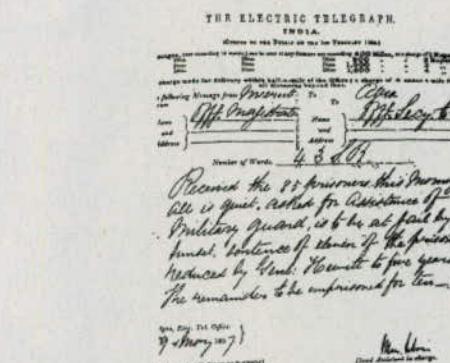
Time sent.....

Received by _____
 Repeated by _____
 Sent by _____
 Registered _____

From _____
 To _____
 To _____
 View _____

Rawalpindie L. N. Fraser

पहुंच रहे थे तो ज़ाहिर है कि दिल्ली और उनके बीच कोई तो तार जुड़ा रहा होगा। मई और जून के महीने में नसीराबाद, लखनऊ, मथुरा, झांसी, जालंधर, इलाहाबाद तथा मेरठ से बड़ी संख्या में सैनिक दिल्ली पहुंचे। झज्जर के सैनिक 18 मई को, आगरा तथा मथुरा के सैनिक 12 जून को, रोहतक के सैनिक 14 जून को दिल्ली पहुंचे। इनमें काफी



Letter from the Commissioner of Banaras to the Secretary to Provinces, dated Banaras, September 1, 1857.

In continuation of the correspondence abandonment of Gorakhpore, I have the pleasure to send you a list of letters found in the palkee of Mahomed Ali Khan, the so-called Chuckledar of Gorakhpore, trans Wyndham, with the view of giving some idea rebellion in which the Gorakhpore district officers left it.

अश्वारोही थे और उनके पास तोपखाना भी था। फिरोजपुर छावनी के बागी सैनिक तोपखाने के साथ 24 जून को दिल्ली पहुंचे, जबकि बरेली से काफी बड़ी संख्या में सैनिक साजो-सामान के साथ 18 जुलाई को दिल्ली आए।

झांसी के सैनिकों का दो और जत्था 6 और 25 जुलाई को दिल्ली

आया। इसी प्रकार ख्वालियर के सैनिक 2 जून को, नीमच के सैनिक 31 जुलाई को और बनारस के सैनिक 6 अगस्त को दिल्ली आए। इसी प्रकार कई अन्य इलाकों के बागी भी दिल्ली पहुंचे। बड़ी संख्या में बागी रास्ते की लड़ाई में शहीद हो गए। कमिशनर आफिस अंबाला के 28 अगस्त, 1857 के पार्लियामेंटरी पेपर्स में, दिल्ली में प्रधान सेनापति के मीर मुंशी रजब अली खां द्वारा 14 अगस्त 1857 को तैयार किया गया वह ब्यौरा मिलता है जिसमें अलग-अलग जगहों से दिल्ली पहुंचने वाले सैनिकों की संख्या 4,000 अश्वारोही और 12,000 पैदल आंकी गई है। इनके साथ 30 तोपें भी थीं। 100 अश्वारोही और 3,000 पैदल सैनिकों को अनुशासनहीन की श्रेणी में अंकित किया गया था। यह संख्या कम या ज्यादा भी हो सकती है, पर उस जमाने में विभिन्न जगहों से इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों का दिल्ली पहुंचना साफ करता है कि हरकारों के माध्यम से उनको दिल्ली के बारे में उचित जानकारी मिल गई थी। दिल्ली के हाल से अवगत करते हुए उनकी मदद मांगी गई होगी।

हालांकि ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं कि दिल्ली कब्जे के बाद यहां की शुरुआती डाक व्यवस्था काफ़ी ख़राब थी। बागियों ने टेलीग्राम नेटवर्क पर अपना कब्ज़ा कर लिया पर वह उनके लिये बेकार था क्योंकि किसी को न तो उसे चलाना आता था न अंग्रेज़ी की जानकारी थी। ऐसे में उसे नष्ट कर दिया गया, लेकिन अपनी डाक व्यवस्था तत्काल बेहतर नहीं की जा सकी। इसी नाते देहली उर्दू अखबार ने 24 मई, 1857 को लिखा :

“खेद है कि डाक का प्रबंध यहां अभी तक कुछ नहीं हुआ। डाक का प्रबंध समस्त कार्यों की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। कुछ प्रबंध आरंभ हुआ था पर सवारों की नियुक्ति न होने के नाते विफल रहा।” दिलचस्प बात यह है कि इस अखबार ने पहल की कि यदि कुछ धन तथा सवारों का प्रबंध हो जाए तो तत्काल वह बेहतर डाक प्रबंध कर सकता है। फिर भी जल्दी इस दिशा में ध्यान नहीं दिया गया। इसी नाते 14 जून को समाचारपत्र

ने फिर इस पर टिप्पणी की।

लेकिन दूसरी ओर अगर बारीकी से देखें तो यह पता चलता है कि बहादुर शाह ज़फर के पत्राचार देश के तमाम हिस्सों में तेज़ी से पहुंच रहे थे। 16 मई को उन्होंने पटियाला, जयपुर, अलवर, जोधपुर, कोटा, बूंदी तथा कुछ अन्य राजाओं को आदेश भेजा कि वे दिल्ली हाज़िर हों। कोई आया, नहीं आया पर उनके पास पत्र पहुंचे। इसी तरह बहादुर शाह ज़फर ने जब जून 1857 में अपना ऐतिहासिक घोषणापत्र जारी किया तो उसमें यह बात खासतौर पर कही गई :

“इस घोषणापत्र की प्रतियां हर स्थान पर प्रसारित की जाएं और इस कार्य को युद्ध से कम महत्व का न समझा जाए। घोषणापत्र मुख्य स्थानों पर चिपका दिया जाए ताकि सारे हिंदू और मुसलमान इस विषय में जान कर तैयार हो जाए।”

इससे तो यह साफ़ है कि बादशाह बेहतर डाक तंत्र चाहता था और सेना के लोग भी। इसी नाते 10 जुलाई, 1857 को बादशाह की कोर्ट के सदस्यों ने उससे निवेदन किया कि 1,500 पैदल तथा 500 सवारों को दो तोपें के साथ गांवों में पुलिस थाने तथा डाक का प्रबंधन करने के लिये भेजा जाए ताकि बादशाह के राज्य की स्थापना के विषय में लोगों को जानकारी प्राप्त हो जाए। 21 अगस्त, 1857 को बादशाह ने बागपत के जर्मांदारों को पत्र लिखने के साथ सोनीपत, पानीपत, बहादुरगढ़ तथा मेवात के गांवों के मुख्य किसानों, सरदारों और जर्मांदारों को रसद और मालगुजारी के बारे में पत्र लिखा। इन इलाकों से लगातार बादशाह को पत्र मिल रहे थे। इस तरह एक ठोस संचार तंत्र बन चुका था।

हालांकि डाक विभाग की वार्षिक रिपोर्टें में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है, पर तार के रिकार्डों से यह खुलासा हो ही जाता है कि बहुत से भक्त देशी राजाओं के डाकियों व हरकारों की मदद से अंग्रेज़ डाक अधिकारी बागियों की गतिविधियों, सड़कों की स्थिति तथा इलाकों का हालचाल जान रहे थे और उसे अपनी सेना को भेज रहे थे।

लेकिन ऐसा काम सभी हरकारे नहीं कर रहे थे। हरकारों की बड़ी संख्या क्रांतिवीरों की मदद कर रही थी। यह विचारणीय विषय है कि जब 1857 में तमाम राजस्व अधिकारी तथा पुलिस कर्मचारी तक बगावत का हिस्सा बन गए थे तो हरकारे व अन्य डाक कर्मचारी उससे अलग या अछूते कैसे रहे होंगे? फिर भी कुछ उदाहरणों के नाते इनको अंग्रेज़ों का टटू ही मान लिया जाता है। यह सही है कि अंग्रेज़ों ने उस समय डाक प्रणाली की आम जनता के बीच में गुड़विल को भुनाने की पूरी कोशिश की थी और उसको ढाल बना कर अपना उल्लू सीधा किया पर इतने बड़े विभाग के कर्मचारियों को क्रांति में मौन मान लेना गलत है।

हरकारे और डाक कर्मचारी अंग्रेज़ी राज में कम खफा नहीं थे। 1837 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में चिट्ठियों पर सरकारी एकाधिकार कर लिया और तमाम इलाकों की मज़बूत देशी डाक प्रणाली और नामी हरकारों को अपना काम समेट लेना पड़ा था। इसके बाद 1854 ने रही-सही कसर पूरी कर दी। अंग्रेज़ हरकारों की नियुक्ति के समय बहुत सतर्क रहते थे और उनकी काफ़ी बारीकी से जांच की जाती थी, पर उन पर विश्वास नहीं किया जाता था। उनसे बहुत अमानवीय व्यवहार किया जाता था। हरकारों को अवकाश पर जाने के लिये एक माह पूर्व सूचना देनी पड़ती थी। ऐसा न करने पर उनको एक माह की जेल और जुर्माना दोनों अदा करना पड़ता था। अंग्रेज़ों ने 1822 में ही हरकारों की जगह तेज़ घोड़ों के उपयोग का फैसला किया था पर इसे बदलना पड़ा क्योंकि हरकारों की तुलना में घोड़े धीमी गति से चल रहे थे। कोलकाता-मेरठ के बीच की जो डाक हरकारे 10 दिन में पैदल पहुंचा देते थे वही घोड़े 12 दिन में पहुंचा रहे थे। इसी तरह अंग्रेज़ों ने अवध जैसे इलाके की बेहतरीन बादशाही डाक समाप्त कर हजारों हरकारों को बेकार कर दिया।

ऐसे में 1857 में हरकारों का एक बड़ा वर्ग देशी राजाओं और क्रांति नायकों के साथ जुड़

गया। इसी नाते जहां कहीं हरकारे पकड़े गए उनको फांसी पर ही लटकाया गया। पर जहां मौका मिला अंग्रेज़ों ने तार की तरह ही डाक का भी काफी उपयोग बग़वत दबाने के लिये किया। इसी नाते कई जगहों पर डाक विभाग भी बागियों का शिकार बना। 1857 में बंबई सर्किल में 10 डाक बंगले और 7 डाकघर जलाए गए। 10 डाकघर को बंद ही कर देना पड़ा। महान क्रांतिकारी कुंवर सिंह ने सासाराम-बनारस तथा सुरेंद्र साय ने बंबई-कोलकाता डाक लाइन को लंबे समय तक बाधित रखा। 1857 में शिमला के पौस्टमास्टर एफ. डाल्टन दिल्ली में क्रांतिकारियों के हाथ पड़ गए तो उनको सैनिकों ने मौत के घाट उतार दिया।

समानांतर डाक व्यवस्था

इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि 1857 में बागी नेताओं की मदद के लिये कई स्थानों पर हरकारों की समानांतर डाक सेवा चल रही थी। कई जागीरों के पास तो अपनी डाक व्यवस्था थी, पर बहुत सी जगहों पर महाजनी डाक व्यवस्था भी अपने हरकारों के द्वारा बागियों की मदद कर रही थी। खाली बैठे अवध सरकार के पूर्व हरकारे भी इस मौके पर मैदान में उतर आए थे। अंग्रेज़ों के खिलाफ जब पूरा अवध सड़क पर आ गया हो तो वे मौन कैसे रह सकते थे। उनके साथ ही हजारों ख़बरनवीस भी बागियों की मदद को सक्रिय हो गए। इसी नाते अंग्रेज़ी कैंप की बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनाएं बागियों तक पहुंच रही थीं। अंग्रेज़ी डाक भी बागियों के निशाने पर थी और बहुत सी जगहों पर गांव वाले डाक छीन लेते थे। बहुत से इलाकों में तो लंबे समय तक डाक लाइनें चालू नहीं हो सकीं। इन बातों से नाराज़ अंग्रेज़ों ने हरकारों और ग्रामीणों किसी को नहीं बछाया।

बागी नेताओं के बहुत से पत्र अंग्रेज़ों को मिले, जो बाद में उनके लिये फांसी का फंदा बने। इन पत्रों या उसके जवाब में हरकारों का ब्यौरा भी मिलता है, पर हरकारों को पकड़ कर उनको फांसी पर लटका देने की एक महत्वपूर्ण घटना जौनपुर में घटी। बनारस में

रह रहे जगदीशपुर निवासी ईश्वरी प्रसाद महाजन बागियों के लिये एक समानांतर डाक सेवा चला रहे थे। इस सेवा के 8 हरकारे, भवानी भीख, मेहदी, नारायण कुर्मा, बांदी कुर्मा, मकदूम, शीतल, बुद्धन, अयोध्या, तथा मिर्धाई आदि जलालपुर (जौनपुर) के थानेदार गंगाशरण की पकड़ में आ गए। उनके पास बग़वत में शामिल कुछ राजाओं के पत्र मिले। थानेदार ने इन हरकारों को बनारस में अंग्रेज़ अफसरों को सौंप दिया।

13 सितंबर, 1857 को थानेदार ने सबसे पहले नोहारी अहीर को पकड़ा जिससे पता चला कि लखनऊ के ईश्वरी प्रसाद महाजन डाक सेवा चला रहे थे। इसके बाद कोतवाली जौनपुर निवासी हर दत्त चौबे तथा भैरों चौबे पकड़े गए। इसके बाद और हरकारे पकड़े गए तथा उनके पास से दो फारसी में लिखे पत्र मिले। एक पत्र लखनऊ के तारानाथ ने ज्वालानाथ को लिखा था। दूसरे पत्र में लिखने वाले या पानेवाले का नाम नहीं था, पर उस लंबे पत्र में लिखा था कि बनारस अंग्रेज़ों के कब्जे में है और राजा बनारस अंग्रेज़ों की गोद में बैठा है। इलाहाबाद की तरह यहां भी उपद्रव होना चाहिए।.....

इन हरकारों से बनारस में हुई पूछताछ में यह जानकारी मिली कि कई जगहों पर उनको तैनात किया गया था। वे बनारस के महाजन भैरों प्रसाद के आदेश से डाक लाते थे और उसे कहीं जगह पहुंचाते थे। डाक प्रबंधन संबंधी सारे कार्य भैरों प्रसाद, ईश्वरी प्रसाद तथा जयदयाल देखा करते थे। 16 अक्टूबर, 1857 को विशेष आयुक्त जौनपुर, एच.जी. एस्टेल की अदालत ने इन सभी आठ हरकारों को राजद्रोही घोषित करते हुए फांसी की सजा सुना दी। यही नहीं, महाजन भैरों प्रसाद को भी गिरफ्तार करके उनको फांसी दे दी गई। 18 जनवरी, 1858 के पत्र संख्या 93 के तहत संयुक्त सचिव, भारत सचिव ने बाबू भैरों प्रसाद की सारी संपत्ति और सामानों को जब्त करने का आदेश दे दिया।

उल्लेखनीय बात है कि रानी लक्ष्मीबाई तथा अन्य क्रांतिनायकों के पत्र भी हरकारे

लंबी दूरी तक पहुंचा रहे थे और बहादुर शाह ज़फर का फ़रमान भी इसी तंत्र से तमाम जगहों तक जा रहा था। पर ऐसे पत्र बग़वत के बाद बहुत से लोगों के लिये गले की फांस बने। बहादुर शाह ज़फर को जिन लोगों ने पत्र लिखे थे उनको अंग्रेज़ों ने फांसी के फंदे पर लटका दिया। चाहे वे बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह हों या फिर झज्जर के नवाब, इनकी फांसी की पृष्ठभूमि में पत्राचार ही मुख्य आधार बना। जिन बागी नेताओं ने संचार व्यवस्था को प्रभावित किया या ठप करने का प्रयास किया, वहां अंग्रेज़ों ने विशेष ध्यान दिया। अमोदा (बस्ती) की महान सेनानी रानी तलाश कुंवर ने अयोध्या से आगे घाघरा के घाटों पर रात-दिन पहरेदारी करा कर अंग्रेज़ों का संचार तंत्र 1857 से मार्च 1858 तक पूरी तरह ठप कर दिया था। रानी को नियंत्रित करने के लिये बड़ी सेना भेजी गई और रानी शहीद हुई। इसी तरह राणा बेनी माधव गंगा तट तथा लखनऊ कानपुर रोड पर अंग्रेज़ों के लिये सबसे बड़ी चुनौती बने रहे। राजा देवीबछा सिंह गोंडा में लंबे समय तक परेशानी बने। जब अंग्रेज़ यह घोषित कर रहे थे कि जंग समाप्त हो गई है तो नेपाल की तराई से बेगम हज़रत महल ने 1859 में अवध की जनता से यह अपील की :

“विधर्मियों (अंग्रेज़ों) के आने-जाने पर निगाह रखो, नदियों के सब घाटों पर पहरा रखो, उनके पत्र व्यवहार को बीच में रोक दो। उनकी रसद रोको, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो।..... उनको कहीं शांति से न बैठने दो।”

तार और 1857

तार लाइने 1857 में बहुत सीमित इलाकों तक ही थीं, पर यह संयोग ही था कि उन इलाकों में ही तेज़ बग़वत हुई, लिहाज़ा तार ने अंग्रेज़ों की काफी मदद की। शायद इसकी उपादेयता को देख कर ही डलहाज़ी ने तार को शासन का इंजन (इंजन ऑफ पावर) घोषित किया था। पंजाब के मुख्य सर जॉन लारेंस और वर्ही तैनात रहे मांटगुमरी ने तो यहां तक कहा कि 1857 में हमको टेलीग्राम ने बचा लिया। वर्ही बागियों ने कहा कि तार

REVOLUTIONARIES SEAL GWALIOR

156. Rana of Dholpur, to E.A. Reade, Agra. Dated 19th June, 1858.
I have sent above 40 Cossids [Qasids] to Gwalior within the last 3 days but none returned
yet; road very unsafe.

FALL OF GWALIOR

157. Hugh Rose Palace, Gwalior, to Canning, Calcutta, the Chief of the Staff; Elphinstone; Henry Sumerset and E.A. Reade. Dated 19th June 1858.

The force under my command took Gwalior after a general action which lasted five hours and a half. The enemy evacuated the Fort. My Cavalry and Artillery are in pursuit.

SCINDIA REGAINS GWALIOR

159. R. Hamilton, Gwalior, to Canning, Calcutta; Elphinstone; John Lawrence and E.A. Reade, Agra. Dated 21st June 1858.

Scindia yesterday entered the city and reoccupied the Palace. His reception by the people was very gratifying. The Fort is now occupied by British troops. All is quiet. The Bazee Bee [Baiz Baij] and ladies of her family joined the Maharajah yesterday.

REVOLUTIONARIES AT KARWI

160. From G.F. Edmonstone, Allahabad to C. Beadon, T. Pycrott, H.L. Anderson, E.A. Reade, J. Lawrence, C. Davidson & G. Plowden, [Lahore, Hyderabad, Nagpur, Calcutta, Madras, Bombay, Agra & Indore] dated 5th January 1859.

Genl. Whitlock reports that the rebels about Kirwee [Karwi] are disorganized. Radha Gobind and his brother were both killed in the late action. Brigr. Carpenter is returning to Kirwee and Major Genl. Whitlock will proceed to Nagode.

REVOLUTIONARIES THREATEN FAIZABAD ROAD

31. G.F. Edmonstone, Allahabad to E.A. Reade, Agra. Dated 13th September 1858.

The Civil Officer at Fyzabad reports that Raja Maunsing [Man Singh] has promised to go himself with fifteen hundred men and three guns to intercept the rebels from Sultanpore who are making towards Tanda. The rebels forces at Futtypore [Fatehpur] at Baiyram Ghaut [Balram Ghat] are still there and threaten the Fyzabad road.

ACTION AGAINST REVOLUTIONARIES ENTRENCHED IN AN ISLAND ON THE GHAGRA RIVER

32. G.F. Edmonstone, Allahabad, to E.A. Reade, Agra Dated 22nd September 1858.

The following intelligence has just been received from Lucknow. The Civil Officer at Durriababu [Dariababu] reports a successful action on the eighteenth against the rebels posted on an Island on the Gogra [Ghagra] River. Two companies (sic) of Europeans with Kuppurtullah [Kapurthalal] contingents and some of Hodson's Horse drove them off.

REVOLUTIONARIES NEAR SANDILA

35. G.F. Edmonstone, Allahabad, to E. A. Reade, Agra. Dated 6th October, 1858.

The following dated the 5th Octr. has been received from Lucknow. On the 3rd Octr. Hurees-chand [Harichand] with six thousand men and eight guns crossed the Goomtee [Gomti] ten miles north of Sundeela [Sandila]. He was joined by several other Zemindars. On the morning of the fourth, he came within three miles of Sundeela with twelve-thousand men and twelve guns. Capt.

ने हमारा गला घोंट दिया।

पंजाब के संदर्भ को देखें तो यह बात गलत नहीं थी। तार की मार का कोई जवाब क्रांतिकारियों के पास नहीं था। जब तक वे तार की मार को सही तरीके से समझ सके तब तक काफी देर हो गई थी। बहुत सी जगहों पर शहर में तार काट कर बागी समझ रहे थे कि उन्होंने पूरे तंत्र को ही नाकाम कर दिया है, पर वास्तविकता इससे इतर थी। 1857 में भारत में कुल 4,500 मील तार लाइन थी,

जिसमें से 918 मील तार लाइने तोड़ कर बागियों ने करीब पाँच लाख रुपये का नुकसान किया। फिर भी इसने अंग्रेजी सेनाओं को बड़ी मदद पहुंचाई। इसी नाते कई क्रांतिकारियों ने यह माना कि उनको अंग्रेजी सेनाओं के तार ने मार दिया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजों को सर्वाधिक मदद तार सुविधा से मिली। बागी नेता और ग्रामीण यह जानते भी नहीं थे कि तार कितनी लंबी मार करता है। पर तार की

मदद से अंग्रेज़ कमांडर-इन-चीफ ने सेना की तैनाती के साथ बहुत से काम पूरे किए। अवध इलाके में तो तार ने काफी काम किया क्योंकि वहां बहुत से इलाके में बागियों के चलते अंग्रेज़ों का आना-जाना और डाक संचालन बंद था। 1857 की जंग का असली मैदान अवध, उत्तर-पश्चिम प्रांत, मध्य भारत तथा दिल्ली था। सारे प्रमुख क्रांति के नायक भी इन इलाकों में ही थे। उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार द्वारा संकलित म्युटिनी टेलीग्रामों के अध्ययन से पता चलता है कि किस तरह से छोटी से छोटी सूचनाओं से भी अंग्रेज़ अधिकारी एक दूसरे को अपडेट रखते थे। बागियों को जहां भी नियंत्रित कर लिया जाता था, अंग्रेज़ उसकी सूचना सभी जगहों पर भेज कर अपने लोगों का मनोबल बढ़ाते थे।

मेरठ, दिल्ली तथा अन्य प्रमुख घटनाओं के बारे में 18 मई, 1857 को कलकत्ता से लंदन भेजा गया टेलीग्राम बरास्ता बंबई, स्वेज, अलक्संद्रिया होते हुए 27 जून को गंतव्य तक पहुंच पाया। इससे जल्दी वह पहुंच भी नहीं सकता था। संयोग से 1857 में ही भारत में महानिदेशक टेलीग्राफ का पद भी सृजित हुआ। 1857 से 1861 के बीच में सर शांगुन से ही इसके महानिदेशक थे। वही भारत में तार क्रांति के जनक थे। पर बगावत के दिनों में वह यूरोप में अवकाश पर थे और उनका काम कर्नल स्टीवर्ट्स व शिबचंद नंदी देख रहे थे।

1857 में अंग्रेज़ अधिकारी कैप्टन जे.डी. मेडले पंजाब में तैनात थे, पर उनके पास सूचनाशून्यता की हालत थी। वे लिखते हैं - दिल्ली से आगे की हमें शून्य ख़बर थी। पूरा देश दुश्मनों के कब्जे में आ गया था और हमारे पास संचार का एकमात्र रास्ता घूमकर बंबई और कलकत्ता ही बचा था। इलाहाबाद से दिल्ली के बीच में क्या घट रहा था, वह हमारे लिये जानना बेहद ज़रूरी था, पर हम अनभिज्ञ थे।

मेरठ में सैनिकों की बगावत, उनके दिल्ली कूच तथा 85 कैदी सैनिकों की रिहाई समेत सारे ब्यौरों के साथ 10 मई की रात दिल्ली जो टेलीग्राम भेजा गया, उसे दिल्ली के चीफ

कमिशनर ब्रिगेडियर साइमन फ्रेज़र पढ़े बिना ही सो गए। तभी वे कोई तैयारी नहीं कर सके, जबकि तार से भी पहले 9 मई की रात को ही मेरठ के बागी सैनिकों ने दिल्ली ख़बर भेज कर कहा था कि वे एक दो रोज़ में दिल्ली पहुंचेंगे। मेरठ से दिल्ली रवाना होते हुए सैनिकों ने टेलीग्राम के तार काट दिए थे।

दिल्ली में भी उनको तमाम रास्तों पर रोकने का प्रयास हुआ, लेकिन सब व्यर्थ रहा। बागी सैनिकों ने यमुना पर बने नावों के पुल पर कब्ज़ा जमा लिया। बकौल टेलीग्राम, उनको दबाने के लिये 54वाँ देशी सेना रवाना की गई, लेकिन उन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया और बागियों के ख़ेमे में शामिल हो गई। इसके बाद साढ़े चार माह दिल्ली स्वतंत्र तो रही ही, क्रांति की ज्वाला दूर तक पहुंची। पर बागी इलाकों में ज्यादा दिनों तक आज़ादी की अलख नहीं जग सकी। इसका कारण भी महज़ 78 शब्दों का टेलीग्राम था। मेरठ तथा दिल्ली की घटनाओं के बारे में 11 मई, 1857 को दिल्ली से अंबाला जो टेलीग्राम पहुंचा उसने अंग्रेज़ों को साजो-सामान जुटाने तथा सतर्क करने के लिये काफी मौका दे दिया। फ्रेज़र ने इस टेलीग्राम में क्रीब सारी महत्व की जानकारी दी थी और इसकी कापी रावलपिंडी में ब्रिगेडियर इन कमांड को भी भेज दी गई थी। यही नहीं अंबाला से सभी सैनिक और प्रशासनिक केंद्रों को जो टेलीग्राम भेजा गया। उसमें दिल्ली की सूचनाओं के साथ सी.टाड की मौत और 9 यूरोपीयों के मारे जाने की जानकारी थी।

टेलीग्राम के चलते ही दिल्ली से पंजाब और पाकिस्तान के मौजूदा इलाकों में बागी सही तरीके से अपनी व्यूह रचना नहीं बना सके। बग़ावत को काफी करीब से देखने वाले टाइम्स के संवाददाता रसेल ने माना है कि तार सेना के लिये सबसे मददगार हथियार रहा। तार ने अपने इंजाद के बाद से अब तक ऐसी साहसिक और महत्वपूर्ण भूमिका कभी नहीं निभाई। टेलीग्राम न होता तो कमांडर-इन-चीफ को अपनी आधी सेना को नियंत्रित करना मुश्किल हो जाता। इसकी मदद से

सेना की जगह-जगह तैनाती, विजय की सूचनाएं और अन्य महत्व की जानकारियां तत्काल मिल रही थीं। उनका गवर्नर जनरल तथा आला अधिकारियों के साथ इस बहाने सीधा संवाद बना हुआ था। सेनाधिकारियों को इसकी मदद से ख़ुतरे की प्रमुख जगहों की सूचनाएं, रास्तों की स्थिति, दुश्मन की सेनाओं की मौजूदगी का पता चलता रहा।

देश का बड़ा हिस्सा 1857 में भयानक बग़ावत की चपेट में था और संपर्क मार्ग बंद थे ऐसे में तार ने खास काम किया। उस समय अवधि, उत्तर पश्चिम प्रांत तथा मध्य भारत में तमाम शीर्ष नेता बड़ी सेनाओं के साथ अंग्रेज़ों को चुनौती दे रहे थे। ऐसे में इन इलाकों की सारी ख़बरें अंग्रेज़ों के लिये खास महत्व की थीं। 1857 में बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के वरिष्ठ सदस्य ई.ए.रीड, उत्तर पश्चिम प्रांत के लेफ्टीनेंट गवर्नर जे.आर. कोल्विन, भारत सविच जी.एफ. एडमंस्टन, दिल्ली के कमिशनर साइमन फ्रेज़र, आगरा के कमिशनर आर. सिम्पसन समेत कई सेनाधिकारियों के पास पहुंचे या उनकी और से भेजे गए रोज़मर्मा के तारों से पता चलता है कि जहां संचार के सारे रास्ते अवरुद्ध थे और पूरा इलाका ही बागी बना हुआ था वहां तेज रफ़तार तार ने अंग्रेज़ों को बहुत मदद पहुंचाई। अवधि में मार्च 1858 से अप्रैल 1859 के बीच जमीनी बग़ावतों को रोकने में इससे खासी मदद मिली। लखनऊ पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा मार्च 1858 में हो गया लेकिन बाकी इलाका बागियों के कब्जे में काफी समय तक रहा और जंग जारी थी। और तो और, उस समय चंबल धाटी के इलाकों में क्रांति की कैसी ज्वाला धधक रही थी, इसका पता धौलपुर के राणा द्वारा ई.ए.रीड को 19 जून, 1958 को आगरा भेजे गए इस टेलीग्राम से चलता है :

“मैंने बीते तीन दिनों में ग्वालियर के लिये 40 हरकारे भेजे, लेकिन उनमें से कोई वापस नहीं लौटा। सड़क बहुत ही असुरक्षित है....” धौलपुर के डाक गाड़ी अधीक्षक ने पोस्टमास्टर आगरा को 25 जून, 1858 को टेलीग्राम भेजा-करावली के हरकारे से पता चला कि

जयपुर-भरतपुर मार्ग पर मछलीपुर के पास 22,000 बागी हैं। उनके पास तोपें तो नहीं हैं पर 20 हाथी लेकर चल रहे हैं।”

अंग्रेज़ों की व्यूरचना की खूबी यह थी कि उनके कैंप में जिसे जहां भी उपयोगी सूचना मिल रही थी, टेलीग्राम से सभी संबंधित लोगों को अवगत कराया जा रहा था। भले ही बहुत सी सूचनाएं अपुष्ट हों पर एक-दूसरे को बताई जा रही थीं। बग़ावत के दिनों के टेलीग्राम को पढ़ने पर उस समय की हालत का बहुत ठोस और प्रामाणिक व्यौरा मिलता है। इससे पता चलता है कि बागियों के साथ कितना जबर्दस्त जनसमर्थन था। पर क्रांति के सभी प्रमुख नेताओं पर अंग्रेज़ों के मुखबिरों की निगाह थी और वे कहां-कहां थे और क्या कर रहे थे, इनकी जानकारियां टेलीग्राम के द्वारा प्रमुख अंग्रेज़ अफसरों तक पहुंच रही थीं। प्रमुख अंग्रेज़ अधिकारियों को यह पता था कि उनकी फौजों की तैनाती कहां-कहां है।

जहां तक तार का सवाल है, डॉ. दीप कांत लाहिड़ी चौधरी जैसे विद्वान मानते हैं कि 1857 में तार की सफलता की कहानी के साथ मिथक भी पैदा किया गया, ताकि इस नये हथियार का अतिरंजित प्रचार किया जा सके। उनके मुताबिक, तार विभाग की मौलिक संरचना में कमियां थीं। अगस्त 1857 में जब गदर चरम पर था तो रानीगंज और बनारस के बीच में लाइन तकनीकी ख़राबी के कारण 14 दिन ठप रही। वे मानते हैं कि 1857 के विद्रोह के चरम पर आगरा पूरी तरह कट गया था और उसे जोड़ने के लिये दौसा, अजमेर, जयपुर, भरतपुर से होते हुए ऊंट के माध्यम से डाक व्यवस्था शुरू की गई। दूसरी ओर वे यह भी मानते हैं कि अंग्रेज़ी सेना की ज्यादातर कार्रवाइयां उसी मार्ग पर हुई जहां तार के खंभे गड़े थे। पर ये सारी बातें अपनी जगह हैं, वास्तविकता यह है कि 1857 में हरकारों ने बागियों को जबकि तार ने अंग्रेज़ों को जो मदद की उसने मोटे तार पर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की जय-पराजय का लेखा-जोखा लिख दिया। □

(लेखक दैनिक हरिभूमि के दिल्ली संस्करण के स्थानीय संपादक है)

कामगारों के इतिहास की रातहें

○ अनिल चमड़िया

कि

सी भी विविधताओं वाले मुल्क में इतिहास की कई धाराएं सक्रिय होती हैं। उदाहरण के लिये, पाकिस्तान में वह इतिहास स्थापित नहीं है जो भारत में पढ़ाया जाता है। पाकिस्तान में वह इतिहास भी नहीं है जो बांग्लादेश में पढ़ाया जाता है। 1947 के पहले एक देश के तीन हिस्सों में बांट जाने से इतिहास का पाठ भी बदल गया। इतिहास की एक धारा मुख्यधारा के रूप में स्थापित होती है लेकिन उसे अंतिम तौर पर एक मात्र इतिहास नहीं माना जा सकता। मोटे तौर पर 1857 के संग्राम को उपनिवेशवाद विरोधी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय विद्रोह, सिपाही विद्रोह, राजाओं और सामंतों के अंग्रेज़ शासक विरोधी संघर्ष आदि के रूप में स्थापित करने की कोशिश विभिन्न धाराएं करती हैं। इन सब धाराओं के पास अपनी-अपनी स्थापनों के लिये तथ्य हैं और उनकी व्याख्याएं हैं। लेकिन एक बात साफ़ तौर पर देखी जा सकती है कि 1857 के संघर्ष के तथ्य और पृष्ठभूमि का पूरा व्यौरा किसी भी धारा के बीच नहीं दिखाई पड़ता। प्रत्येक धारा केवल अपने तकँ की सीमाओं तक ही तथ्यों को देखना चाहती है। लेकिन वे धाराएं तेज़ी से सक्रिय रहती हैं जिनके इतिहास को दबाया या कुचला जाता है। वे नये-नये तथ्यों को सामने लाती हैं। उन पर नयी व्याख्याएं सामने आती रहती हैं और

नये सिरे से एक बार फिर बहस होती है। 1857 के इतिहास क्ये लेकर भी 1947 के बाद सत्ता वर्ग ने गंभीरता से कोई काम कराने की ज़रूरत महसूस नहीं की। सत्ता एं इतिहास को तब तक खोदने की ज़रूरत महसूस भी नहीं करती हैं जब तक कि उन्हें उस रूप में किसी तरह की चुनौती नहीं होती।

पहली बात तो यह कि दुनियाभर में कोई भी परिवर्तनमूलक संघर्ष अन्वानक नहीं फूटता दिखता है। वह एक लंबी पृष्ठभूमि की तीव्रतम अभिव्यक्ति होता है। अंग्रेज़ों के आगमन के बाद से 1857 तक विभिन्न हिस्सों में कई संघर्ष हुए। उन्हें जाति, धर्म या किसी अन्य आधार पर हुए क्षेत्रीय विद्रोह के रूप में देखा जा सकता है। ये सैनिक विद्रोह नहीं थे, जैसे कि 1782 में बंगाल का देवी सिन्हा विद्रोह, 1781 में बिशनपुर विद्रोह, 1794 में विजयराजे विद्रोह, 1799-1801 में प्रलयकारी विद्रोह, 1832-35 में भूमिज विद्रोह, 1855 में संथाल विद्रोह के साथ-साथ भील विद्रोह, कोली विद्रोह, कच्छ विद्रोह, रामोसी विद्रोह आदि। इस कड़ी में बंगाल का संन्यासी विद्रोह 1763 से 1800 के बीच और बिहार-बंगाल के पांच जिलों में 1715 से 1896 के बीच चोर विद्रोह का भी उल्लेख किया जा सकता है। मोटे तौर पर विभिन्न हिस्सों में भारत के उपनिवेश में बदलने के साथ कई संघर्ष हुए। 1857 के विभिन्न हिस्सों में संघर्ष को इस रूप में पहला

राष्ट्रीय विद्रोह कहा जाता है क्योंकि वे लगभग एक-ही समय में सतह पर आए। भौगोलिक दायरे के कारण इन्हें राष्ट्रीय कहा जाता है जो निश्चित ही आज के भारत के बड़े हिस्से में अंग्रेज़ शासकों के खिलाफ़ विद्रोह था। बड़े हिस्से में आज के हिंदी-उर्दू समेत विविध भाषी क्षेत्रों को शामिल किया जा सकता है। राजनैतिक अर्थों में इसे एक विदेशी शासन व्यवस्था के खिलाफ़ समाज के तमाम वर्गों, तबकों और समूहों का एक नयी व्यवस्था के लिये मोर्चाबद्ध विद्रोह कहा जा सकता है। लेकिन ये सभी विशेषण इतिहास को देखने, समझने व विश्लेषित करने के अपने-अपने नज़रिये हैं। पर इतिहास को किसी खास तरह की व्याख्या के तहत इस तरह एकांगी तरीके से नहीं देखा जा सकता है। उसे तोड़ा जाना चाहिए। क्रांतियां संघर्षों के कई सतहों पर खड़ी होती हैं। कई तरह की शक्तियां अपने-अपने कारणों से एक केंद्र में जमा होती हैं और एक जगह निशाना साधने पर तात्कालिक रूप से सहमत होती हैं। यह ज़रूर है कि 1857 के संघर्ष के इतिहास के पन्नों में राजे-रजवाड़े और अंग्रेज़ी सेना के सिपाही प्रमुख रूप से दिखते हैं। पहली बात तो यह कि सत्ता में भागीदार रहने वाला जब कोई हिस्सा विद्रोह पर उतरता है तो वह ज्यादा प्रमुखता हासिल करता है। दूसरा पक्ष यह

भी है कि किसी भी सत्ता के खिलाफ़ संघर्ष के बाद जो सत्ता कायम होती है वह ऐसी ही विद्रोही शक्तियों के हाथों में अक्सर चली जाती है। इसके ठेस कारण होते हैं। एक सत्ता के खिलाफ़ लड़ने वाली शक्तियाँ अपनी सत्ता के निर्माण की भी लड़ाई लड़ रही होती है। यह किसी भी संघर्ष के अंदर कई सतहों पर चलने वाली धाराओं के अपने हित में सक्रिय होने और निर्णायक स्तर पर पहुंचकर उसका नेतृत्व स्वयं हासिल करने की योजना से जुड़ा होता है। यदि सैनिक और राजे-रजवाड़े अंग्रेज़ी सत्ता के खिलाफ़ संघर्ष पर उतारूँ हुए तो वे सामाजिक और आर्थिक स्तर पर दमित और उत्पीड़ित समूह और समाज की राजनीतिक आकांक्षाओं को भी नियंत्रित करने की योजना में लगे रहे। इतिहास की प्रस्तुति उस योजना का अहम हिस्सा होता है। वह सत्ता इतिहास को उसी रूप में पेश करती है जिस तरह से हम 1857 के इतिहास को रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह से लेकर मंगल पांडे तक की सीमाओं में देखते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि कोई भी क्रांति महज़ सत्ता के अंदर विद्रोह से ही नहीं टिक पाता है। वही संघर्ष टिक पाता है जिसे आम जनमानस का समर्थन हासिल होता है। इससे दूसरी बात यह भी जुड़ी हुई है कि सत्ता में विद्रोह की ज़रूरत तभी महसूस होती है जब यह लगता है कि उसे एक जनसमर्थन मिलेगा। 1849 के इतिहास में सक्रिय विभिन्न सतहों को समझना ज़रूरी है।

1857 के प्रचलित इतिहास में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर वर्चस्व रखने वाले भारतीय वर्ग की प्रमुख भूमिका देखी जाती है। लेकिन भारतीय समाज का शासित वर्ग दोहरी मार झेल रहा था। वह अपनी मुक्ति के रास्ते तलाश रहा था। हम इस तरह के चरित्रों में दो तरह के लोगों को देख सकते हैं। पहला तो उस तरह के चरित्र थे जो प्रत्यक्षः या अप्रत्यक्षः राजे-रजवाड़ों की सत्ता के अधीन थे और वे समानता और स्वतंत्रता के जीवन की चाह रखते थे। उदाहरणस्वरूप झांसी की

रानी लक्ष्मीबाई के यहाँ कोरी जाति की झलकारी बाई थी। उन्होंने रानी को बचाने के लिये अपनी जान दे दी। उनके पति भी मरे गए। झलकारी बाई की पूरी भूमिका को दो तरह से देखा जा सकता है। उन्हें एक तो क्रांति में दलित भावनाओं के प्रतिनिधित्व के रूप में देखा जा सकता है और दूसरा रानी की वफादार सेविका के रूप में भी देखा जा सकता है। लेकिन झलकारी बाई जैसों का विश्लेषण महज़ रानी की सेविका के रूप में नहीं किया जा सकता है। उसे अंग्रेज़ों की सत्ता के खिलाफ़ रानी के विद्रोह के साथ मोर्चाबद्ध होने की भूमिका में देखा जाना चाहिए। यदि यह माना जाए कि भारतीय समाज में अपनी सामाजिक स्थिति से मुक्ति की चाहत रखने वाला दलित समाज सामाजिक रूप से वर्चस्व रखने वाली जातियों के साथ कैसे लड़ सकता है, तो इससे उलट भी एक सवाल यह हो सकता है कि वह अंग्रेज़ सत्ता में अपनी मुक्ति कैसे देख सकता है। दलित सामाजिक और आर्थिक दोनों स्तरों पर दमन और शोषण का शिकार रहा है। अंग्रेज़ शासकों का लक्ष्य इस देश के संसाधन लूटना और उसे सात समुंदर पार ले जाना था। सिपाहियों ने जो विद्रोह किया उसकी वजह उनके कामकाज़ की स्थितियाँ बेहद ख़राब होना थी और एक पृष्ठभूमि के रूप में वे अपनी जगह बना चुकी थीं। संथाल विद्रोह आदिवासियों को लूटने और उन्हें तबाह करने के अंग्रेज़ों के इरादों के भांपने के परिणामस्वरूप ही सामने आया था। इसलिये इस तरह से व्याख्या नहीं की जा सकती है कि अंग्रेज़ों की पश्चिमी सभ्यता में मानवीयता का सम्मान रहा है। कम से कम इस स्तर पर दलितों के खिलाफ़ कोई भाव नहीं था। कोई भी सत्ता अपने को बनाए रखने के लिये बहुसंख्यक शासित समाज के तमाम तरह के अंतर्विरोधों का अपने हक़ में इस्तेमाल करने की रणनीति अपनाती है। यह कहा जा सकता है कि किसी भी दो सत्ताओं के संघर्ष की स्थिति में शासित वर्ग का पूरा हिस्सा सीधे-सीधे किसी एक सत्ता के साथ संघर्ष में खुद को विलीन नहीं

कर देता है। शासित समाज के हिस्सों में दोनों सत्ताओं के खिलाफ़ संघर्ष की धाराएं जारी रहती हैं। 1857 के संघर्ष में भारतीय समाज का कामगार तबका कई स्तरों पर शोषण, दमन और उत्पीड़न का शिकार था। उसके सामने किसी भी रूप में कोई संगठित नेतृत्व नहीं था। अगर थी तो मुक्ति की चेतना और आजादी की आकांक्षा। वह दोनों ही सत्ताओं के खिलाफ़ संघर्ष की सतहें तैयार करता रहा। वे 1857 से पहले के कुछेक वर्षों में सामंतों और महाज़नों के खिलाफ़ लड़ते दिखते हैं। बाद में भी इसका सिलसिला बंगाल के पावना विद्रोह, पूना और उसके आसपास के दक्खन विद्रोह में देखा जा सकता है। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा पूँजीवाद के विस्तार और यहाँ के सामंतवाद के कारण इस भू-भाग में लड़ाइयों को इस रूप में देखा जाना चाहिए कि यह पूर्व की अपेक्षा ज्यादा संगठित और लक्ष्य के प्रति ज्यादा साफ़ हुआ। समाज की बहुसंख्यक जातियों ने राजनैतिक लड़ाई को अपने-अपने कार्यक्रम के रूप में स्वीकार किया। उसने यह चेतना पैदा की कि अपनी बदतर स्थिति को समाज की मुक्ति के साथ जोड़कर देखा जाए। दस्तावेज़ों में यह बात साफ़तौर पर देखने को मिलती है कि गंगा-जमुना के बीच के इलाकों में हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो अंग्रेज़ों के विरुद्ध नहीं था। यह खुद अंग्रेज़ प्रशासकों ने लिखा है। मैलिसन की आंखों के सामने अवध, रुहेलखंड, सागर और नर्मदा के क्षेत्रों से जनता का अधिकांश हिस्सा ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ उठ खड़ा हुआ। इतिहासकार प्रभा दीक्षित ने समयांतर नामक पत्रिका के फरवरी 2007 के अंक में ऐसे कई संदर्भों का हवाला दिया है। एक संदर्भ यह है कि एक अंग्रेज़ प्रशासक को इस बात का क्षोभ था कि निचली जातियों के लोगों ने न केवल विद्रोह में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया वरन् उन्होंने सरकार का सबसे कड़ा विरोध किया। हिंदू पैट्रिओट ने लिखा कि विशाल असैनिक जनसमूह विद्रोह में शामिल

हो गया और इस दौरान सबसे निकृष्ट अपराध असैनिक भांडों द्वारा किए गए। यह अखबार सत्तापक्षी था। इस तरह हम 1857 के संघर्ष में भारतीय समाज की उन विभिन्न जातियों की बड़ी भूमिका देखते हैं जो आज भी किसी न किसी स्तर पर समानता हासिल करने की लड़ाई के बीच में खड़ी हैं। अब सवाल है कि जो समाज की दमित जातियां रही हैं वे बतौर नायक इतिहास में स्थापित नहीं दिखाई देती हैं। लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है कि 1857 के पूरे ऐतिहासिक घ्यौरे अभी तक सतह पर नहीं आ सके हैं। लेकिन इस दिशा में जो काम हो रहे हैं उनमें कई ऐसे पात्रों के नाम उभर कर सामने आए हैं जिन्होंने 1857 के संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अपनी शहादत दी।

मान कौर गड़ेरिया थीं जो फांसी पर लटकी दी गई। उन्होंने ब्रिटिश सेना का बहादुरी से सामना किया था। 1973 में संस्कृति मंत्रालय और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित 1857 के शहीदों की सूची में कई ऐसे नाम देखने को मिलते हैं। इस दस्तावेज़ के तीसरे खंड में 1,159 लोगों के नाम हैं जिनमें मुसलमानों और महिलाओं की तादाद पांच सौ से ज्यादा है। इसमें शहीदों की जातियां नहीं बताई गई हैं। लेकिन अपने समाज में नामों का एक लैंगिक, धार्मिक और जातीय आधार है। यहां नामों से लिंग और धर्म की शिनाख आसानी से की जा सकती है। जातियों की भी की जा सकती है क्योंकि कई नाम ऐसे हैं जिन्हें दलित और पिछड़ी जातियां ही रखती हैं। मंगरु उत्तर प्रदेश में बस्ती के रहने वाले थे और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया की सेना में सैनिक थे। उन्होंने अपनी रेजीमेंट में विद्रोह का नेतृत्व किया और अप्रैल 1958 में फांसी पर चढ़ा दिए गए। लेकिन इस तरह के नामों के आधार पर सूची का सामाजिक स्तर पर वर्गीकरण शायद उपयुक्त नहीं समझा जाए। लेकिन सूची में विवरणों से जो संकेत मिलता है उससे समाज की उपेक्षित जातियों के बीच शहादत देने वालों की तादाद बहुत ज्यादा होना साफ़-साफ़

दिखता है। इस सरकारी दस्तावेज़ से एक तथ्य का और पता चलता है कि इतिहास राजमहलों में नहीं, देश के गांव-गांव में बिखरा हुआ है। उस समय के हरे-भरे पेड़ों को फांसी के तख्ते में बदल दिया गया था। इस दस्तावेज़ में एक सीमा यह भी दिखती है कि मशीनरी बहुत सारे नामों को इसमें शामिल नहीं कर पाई। खुद दस्तावेज़ में लिखा भी गया है कि सूचनाओं के अभाव में हजारों शहीदों के नामों का यहां उल्लेख नहीं किया जा सका है। सामाजिक पूर्वाग्रहों की सक्रियता भारतीय इतिहास में नयी बात नहीं है। हर स्तर पर संपन्न परिवारों के शहीदों की जाति और आर्थिक पृष्ठभूमि का उत्साहपूर्वक उल्लेख है। सामाजिक हैसियत को इतिहास में तथ्यों का महत्वपूर्ण आधार बना लिया जाए तो इतिहास से समाज के बड़े हिस्से को दूर रखना एक स्वाभाविक प्रक्रिया सी लगने लगती है। जैसे इसी दस्तावेज़ में हरियाणा में अलबेला सिंह को झज्जर में खज़ाना लूटने और लोगों के बीच बांटने जैसे अपराधों के लिये फांसी देने की चर्चा की गई है लेकिन उनके सहयोगी जिया राम की फांसी की चर्चा अलग से नहीं की गई है। यही बात मुजफ्फरनगर में गूर्जर परिवार की युवती आशा देवी को फांसी पर चढ़ाने की घटना का उल्लेख तो है लेकिन फांसी पर चढ़ाई गई दूसरी ग्यारह युवतियों के नामों का उल्लेख नहीं है। वहां 255 ने ब्रिटिश शासकों के खिलाफ लड़ते हुए जाने गवाई हैं इसीलिये इस दस्तावेज़ में जो 1,159 की तादाद बताई गई है उसमें सहयोगियों और ऐसे लोगों की चर्चा नहीं है जिनके नाम नहीं मिल पाए हैं। ऐसे लोगों की तादाद असंख्य है। गणेशी अहीर दिल्ली की तरफ बढ़ती ब्रिटिश सेना का मुकाबला करते हुए पकड़े गए और उन्हें फांसी दे दी गई। हमीरा पेशे से हज़्जाम थे। उन्हें भी इसी तरह मारा गया। दिल्ली में हजारी धोबी को भी 8 दिसंबर, 1857 को मौत के घाट उतारा गया। मान सिंह धोबी को भी इसी समय फांसी दी गई। हीरा डोम को 22 फरवरी, 1857 को फांसी दी गई थी। ननूआ तेली और

लल्लू तेली ने भी दिल्ली में ब्रिटिश बंदूकों के सामने झूकने की बजाय गले में फांसी को मंजूर कर लिया। उत्तर प्रदेश के सगवा दिल्ली में स्वीपर थे, उन्हें 28 जनवरी, 1958 को दिल्ली में अंग्रेज़ों ने फांसी पर लटका दिया। ग्राम सिसौली, जिला मुजफ्फरपुर के स्वीपर सेहजा को भी फांसी दे दी गई।

1857 का इतिहास नेतृत्व के नामों की सीमाओं में सिमटा हुआ है। लेकिन सारे संघर्ष वैसे नेतृत्व में ही नहीं लड़े गए। अगर ऐसे संघर्षों की तादाद दर्जनों हैं तो ऐसे नेतृत्व के अभाव वाले संघर्षों की तादाद कई गुना ज्यादा है। बिहार का रजवार विद्रोह इसका एक उदाहरण है। 1857 के विद्रोह के दौरान अंग्रेज़ों ने रजवारों के गांव के गांव जला दिए। अंग्रेज़ों ने यह नीतिगत फैसला किया था कि विद्रोही रजवारों के गांवों को जला और तबाह कर देने चाहिए। जमादार रजवार उस विद्रोह के नेतृत्व का एक नाम था जिन्होंने लड़ते हुए अपनी जान गवां दी। उत्तर प्रदेश के सिकंदर बाग में हैवलाक की सेना के खिलाफ पासी समुदाय के लगभग डेढ़ सौ युवकों ने लड़ाई लड़ी। जगरानी पासी की शहादत को याद किया जा सकता है। दिल्ली के अजमेरी गेट में मुस्लिम मोचियों की भूमिका की चर्चा कहां मिलती है? बांके चमार कुंवरपुर ग्राम, तहसील मथली, शहर जिला जौनपुर के थे। उनकी गिरफ्तारी के लिये पचास हजार रुपये के ईनाम की घोषणा की गई थी। उन्हें पकड़े जाने के बाद फांसी दे दी गई। इस तरह महाबीरा देवी, उपइया चमार, मातादीन भंगी आदि की एक लंबी कड़ी बनती है। बिहार में 1857 के विद्रोह में फांसी पर चढ़ने वालों की एक सूची मिली है जिसमें उस समय के विद्रोहियों की पृष्ठभूमि का जो संकेत मिलता है उससे इतिहास की गाथाओं और विश्लेषण का स्तर ही बदलता दिखाई दे रहा है। यहां खेत-खलिहानों में काम करने वाले और मेहनत-मजूरी करने वाले पिछड़े-दलितों के बीच के लोग बड़ी तादाद में फांसी पर लटका दिए गए थे। □

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार है)

1857

1947

2007

उपनिवेशवाद : एक आर्थिक समीक्षा

1857 : किसानों व दबले-कुचलों का संघर्ष

○ स्वतंत्र मिश्र



पंजाब के प्रधान अधिकारी सर जॉन लारेंस 31 अक्टूबर, 1857 के अपने एक पत्र में लिखते हैं - “अगर पंजाब निकल गया होता तो हम मिट्टी में मिल गए होते। उत्तरी प्रांतों में मदद पहुंचने से बहुत पहले अंग्रेजों की हड्डियां धूप में सूखती

मिलतीं। इंग्लैण्ड इस मुसीबत में संभल न पाता और पूर्व में फिर अपनी शक्ति संचित न कर पाता।” दरअसल 1857 के जु़ङ्गारु संग्राम ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की चूलें हिला दी थी। इस संग्राम ने फिरंगियों को इस बात का एहसास करा दिया था कि भारत में उनके

साम्राज्य का खात्मा संभव है। परंतु आज डेढ़ सौ साल के बाद इस संग्राम को हम किस रूप में देखते हैं, यह हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः हमारे नज़रिये का निर्माण भी कई स्तरों पर होता है। **म**सलन हम स्कूल, कॉलेजों में क्या पढ़ते हैं? हमारे

घर, समाज का परिवेश क्या है? या, हमारे ज्ञान और मनोरंजन के विकास में जिन चीज़ों की महत्वपूर्ण भूमिका है, वे किस तरह हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं? उनके सरोकार क्या हैं? स्कूल की किताबों से लेकर हमारे लोक जीवन के बड़े हिस्से में 1857 के प्रति क्या नज़रिया विकसित हो पाया है? यह एक विचारणीय विषय है। फौरी तौर पर हम पाते हैं कि हमें 1857 का मतलब रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, वीर कुंवर सिंह आदि लोगों के नाम गिनवा या रटवा दिए जाते हैं। या फिर 1857 के तात्कालिक कारण कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी का मिलाने की ख़बर पाते ही सिपाहियों का गुस्सा फूट पड़ा था, इस तथ्य को ही हमारे बीच परोसा जाता रहा है। इन तथ्यों की भी निश्चित तौर पर महत्ता है। परंतु इसके इतर भी बहुत सारे महत्वपूर्ण तथ्य हैं, जो यह बताते हैं कि 1857 का संग्राम के बाल राजे-रजवाड़ों का ही सीमित नहीं था बल्कि इसमें दलितों और किसानों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। यह बात सही है कि जब हम किसी मुक्तिकामी लड़ाई का

जिक्र करेंगे तब उसके कुछ नायकों के जिक्र की ज़रूरत तो निश्चित तौर पर महसूस होगी। परंतु एक बड़ा सवाल यह है कि क्या हमारे नायक वास्तव में हमारे द्वारा स्वीकार किए गए हैं या फिर वे सत्ता की ज़रूरतों के हिसाब से हम पर अपने तरीके से थोपे गए हैं,

यह समझना होगा। आम लोगों के नाम अपने वर्ग हित के लिये बहु-प्रचारित किए जाते हैं। क्या 1857 के गदर के इतिहास के साथ भी कुछ हद तक ऐसा ही नहीं हुआ है? भारत के राजे-रजवाड़ों कई सदियों से कभी मुगल तो कभी फ्रांसिसियों या डचों और अंत में अंग्रेज़ों

चुके आक्रोश को एक हद तक इन राजा और रजवाड़ों ने भुनाया भी है। राजे-रजवाड़े अपनी अंतिम सांसें गिन रहे थे और इतिहास साक्षी है कि इसके बाद इनका कोई बड़ा विद्रोह आगे के इतिहास में नहीं दिखता है। 1857 की असफलता के बाद यहां के सामंती राजे-रजवाड़ों ने अंग्रेज़ों की छात्रछाया में ही अपना जीवन काटना तय कर लिया। वे ब्रिटिश साम्राज्य के अवलंब बन गए। जबकि इस विद्रोह से लेकर 1947 तक कई चरणों में किसानों, आदिवासियों, सिपाहियों, बुनकरों, दस्तकारों की संगठित लड़ाई के उदाहरणों से इतिहास के पने भरे पड़े हैं। इन संघर्षों के दौरान आम जन को यह भी समझ में आने लगा कि सामंती राजे-रजवाड़े उनके दोस्त की बजाय दुश्मनों की पांत में खड़े हैं।

1857 की जंग को देखने का शासकों और जनता का नज़रिया अलग-अलग है। हमारे शासक 1857 में संघर्षरत बहादुरशाह ज़फर, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई से लेकर मंगल पांडे और मेहनतकश किसानों सबको एक ही तराजू पर तौल पर स्वाधीनता के

चर्बी लगे कारतूस ठुकराने वाले सैनिक जिन्हें 9 मई, 1857 को कोर्ट मार्शल की सजा सुनाई गई

1. हवलदार मातादीन, 2. शेख पीर अली (नायक), 3. अमीर कुदरत अली,
4. शेख हुसैनुदीन (नायक), 5. शेख रुर मोहम्मद (नायक), 6. शीतल सिंह,
7. जहांगीर खान, 8. मीर मोसिम अली, 9. अली नूर खान, 10. मीर हुसैन बख्श,
11. मथुरा सिंह, 12. नारायण सिंह, 13. लाल सिंह, 14. श्योदान सिंह, 15. शेख हुसैन बख्श, 16. साहिबदाद खान, 17. बिशन सिंह, 18. बलदेव सिंह, 19. शेख नुंदू,
20. नवाब खान, 21. शेख रमजान अली, 22. अली मोहम्मद खान,
23. मक्खन सिंह, 24. दूर्गा सिंह, 25. नसरुल्ला खान, 26. मेहराब खान,
27. दूर्गा सिंह (द्वितीय), 28. नबी बख्श खान, 29. जुरबान सिंह (प्रथम),
30. भुदगू खान, 31. जुरखान सिंह (द्वितीय), 32. अब्दुल्ला खान, 33. ईसन खान (प्रथम), 34. जबदस्त खान, 35. मुर्तजा खान, 36. बरजूर खान,
37. अजीमुल्ला खान (प्रथम), 38. अजीमुल्ला खान (द्वितीय), 39. काला खान, 40. शेख सादुल्ला, 41. सालार बख्श खान, 42. शेख रुत अली,
43. द्वारिका सिंह, 44. कालका सिंह, 45. रघुबीर सिंह, 46. बलदेव सिंह,
47. दर्शन सिंह, 48. इमदाद हुसैन, 49. पीर खान (प्रथम), 50. मोती सिंह,
51. शेख आराम अली, 52. हीरा सिंह, 53. सेवा सिंह, 54. मुराद पीर खान,
55. शेख आराम अली, 56. काशी सिंह, 57. अशरफ अली खान, 58. कादर दाद खान, 59. कादर दाद खान, 60. भगवान सिंह, 61. मीर इमदाद अली,
62. शिव बख्श सिंह, 63. लक्ष्मण सिंह, 64. शेख बख्श सिंह, 65. उस्मान खान,
66. दरवाय सिंह, 67. कमसूल अली खान, 68. शेख गयास खान, 69. शेख उम्मेद अली, 70. अब्दुल सहाब खान, 71. राम समाय सिंह, 72. पनाह अली खान, 73. लक्ष्मण दुबे, 74. रामसरन सिंह, 75. शेख ख्वाजा अली, 76. शिव सिंह, 77. शीतल सिंह, 78. मोहन सिंह, 79. विलायत अली खान, 80. शेख मोहम्मद खान, 81. इंदर सिंह, 82. फतेह खान, 83. मैकू सिंह, 84. शेख कासम अली, 85. राम चरण सिंह।

के पिट्ठू बनकर अपनी शासन और आरामपसंद ज़िंदगी का सिलसिला आगे बढ़ाने के लिये तमाम तरह के समझौते किए और जहां बात नहीं बनी, वहां लड़ाई भी मोल ली। अपवाद रूप से कुछ लोगों ने लड़ी है। अपने छिनते हुकूमत के लिये किसानों के बीच पनप

सिपाही करार देते हैं। जबकि सच तो यह है कि बहादुरशाह ज़फर बदहाल किसानों के लिये नहीं लड़े, वह तो अपनी लुटी-पिटी बादशाहत बचाने के लिये लड़े। इतिहास की पाद्यपुस्तकों में जहां 1857 को महज़ प्रथम स्वाधीनता संग्राम के रूप में पढ़ाया जाता है

वहाँ जनपक्षधर इतिहासकार इसे जनता के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के साथ सामंती शासकों का अंतिम प्रतिरोध युद्ध भी करार देते हैं।

हमारे शासकों का 1857 की वर्षगांठ मना कर सामंती राजाओं को देशभक्त के तौर पर स्थापित करना उनकी अपनी जनविरोधी नीतियों को जायज़ ठहराने में मददगार बनता है। चूंकि 1857 के ये 'नायक' रजवाड़े किसानों के खून-पसीने को चूस कर जीवित रहते थे, इसलिये इन रजवाड़ों को स्थापित कर मौजूदा बाज़ारवादी व्यवस्था मज़दूर-किसानों के वर्तमान दमन-उत्पीड़न को प्रकारांतर से जायज़ ठहराती है। जनता के पक्ष में खड़े लोग जब 1857 को याद करने की बात कहते हैं तो वे 1857 की जंग में मारे गए गुमनाम किसानों-सिपाहियों को सबसे पहले याद करते हैं। इसके बाद तात्या टोपे या लक्ष्मीबाई को। ऐसा नहीं है कि वह सामंती रजवाड़ों की भूमिका को इस संघर्ष में नज़रअंदाज कर देते हैं। बल्कि वे मानते हैं कि अंग्रेज़ों का शासन हिंदुस्तान की गुलामी का काल था इसलिये यहाँ के रजवाड़ों का अंग्रेज़ों के खिलाफ़ संघर्ष जायज़ था। परंतु अंग्रेज़ों को मार भगाने के पीछे रजवाड़ों और जनता की सोच या हित एक से नहीं थे। तत्कालीन अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों के शासन से हिंदुस्तान के किसान, दस्तकार, आदिवासी, सिपाही, रजवाड़े सभी त्रस्त थे। लगान में बढ़ोत्तरी से किसान बदहाल थे तो विदेशों में तैयार माल की मार से दस्तकार। जंगलों पर अपने पारंपरिक अधिकार के खात्मे से आदिवासी परेशान थे तो सेना में गाय-सूअर की चर्बी से सिपाही। राजे-रजवाड़े तो अपने 'स्वर्ग' को अंग्रेज़ी के हाथों में जाते देख गुस्से से भरे हुए थे ही उस पर 1848 की डलहौज़ी की राज्य हड्डप-नीति से हड्डी गई 2100 रियासतों के रजवाड़े भी अंग्रेज़ों के खिलाफ़ खड़े होने को छटपटा रहे थे। उपर्युक्त कारणों से यह भौतिक ज़मीन तैयार हुई जिसके फलस्वरूप एक देशव्यापी विद्रोह की योजना बनने लगी। विद्रोह की अगुवाई नाना साहब,

कुंवर सिंह, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, खान बहादुर खां आदि सामंतों नवाबों ने की। इन सबकी सम्मिलित सहमति से 31 मई, 1857 का दिन विद्रोह के लिये तय हुआ। 31 मई की तारीख इसलिये चुनी गई क्योंकि यह व्रत भारत में भयंकर गर्मी का समय था, जिसमें गोरे अंग्रेज़ों को भारी दिक्कत होने वाली थी। साथ ही 31 मई रविवार का दिन था और अंग्रेज़ों को इकट्ठा बड़ी तादाद में एक साथ गिरजाघरों में पाया जा सकता था। इसके अलावा इस दौरान ज्यादातर अंग्रेज़ी सेनाएं फारस और चीन युद्ध में लागी हुई थी। पूरे देश में बगावत का संदेश रोटी और कमल के फूल के रूप में प्रसारित किया गया। रोटी और कमल का फूल इस जंग का प्रतीक चिह्न बन गया।

परंतु बगावत अपनी तय तिथि से पहले ही फूट पड़ी। 22 फरवरी, 1857 को कलंकत्ते की बैरकपुर छावनी में सूअर-गाय की चर्बी लगे कारतूसों का इस्तेमाल करने से भारतीय सिपाहियों ने इंकार कर दिया जिसके दंडस्वरूप यह पलटन निशस्त्र करके तोड़ दी गई। 24 मार्च, 1857 को मंगल पांडे नामक सिपाही ने पेरेड के व्रत अपने सार्जेंट को गोली से उड़ा कर बगावत की शुरुआत करनी चाही। मंगल पांडे को पकड़कर 8 अप्रैल को फांसी दे दी गई। इस घटना ने सिपाहियों के गुस्से में भारी इजाफा कर दिया। परंतु वास्तविक विद्रोह की शुरुआत मेरठ छावनी से हुई जहाँ कारतूस के ही मसले पर अंग्रेज़ों ने जब 85 भारतीय सिपाहियों का कोर्ट मार्शल कर उन्हें 8-10 वर्ष की सजा सुनाकर 9 मई को जेल भेज दिया। इससे गुस्साए शेष भारतीय सिपाहियों ने 10 मई, 1857 को ही विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। उन्होंने जेल पर हमला कर अपने साथियों को मुक्त करा लिया और अंग्रेज़ों को पकड़-पकड़ कर मारना शुरू कर दिया। किसान और शहर के नागरिक सिपाहियों की मदद को आगे आए।

10 मई की सारी रात चलकर 11 मई को सुबह मेरठ के विद्रोही सिपाही दिल्ली पहुंचे। इस तरह दिल्ली की पलटन भी विद्रोह में शामिल हुई और दिल्ली अंग्रेज़ों के कब्जे से

मुक्त करा ली गई। मेरठ, दिल्ली की घटना से उत्साहित होकर 13 मई को फिरोजपुर, पंजाब, 24 मई को पेशावर और 9 जून को जालंधर, 20 मई को अलीगढ़, 23 को मैनपुरी, इटावा और बुलंदशहर की देसी पलटनों ने विद्रोह कर दिल्ली को कूच कर दिया। 31 मई को रुहेलखंड; 4 जून को झांसी आज़ाद करा लिये गए। इस विद्रोह की गूंज चाईबासा के आदिवासी अंचलों से लेकर असम की पहाड़ियों तक और महाराष्ट्र के कुछेक जगहों तक सुनाई पड़ी। पर ज्यादातर उत्तर-पश्चिम भारत ही विद्रोह की लपटों में आ पाया। दक्षिण भारत अधिकतर शांत ही बचा रह गया। इसके बाद का डेढ़ वर्ष अंग्रेज़ों के पुनः सत्ता पर काबिज़ होने का समय था। अंग्रेज़ी सेनाओं से हिंदुस्तानी रजवाड़ों और सिपाहियों के साथ-साथ मेहनतकश जनता ने कड़ी टक्कर ली। धीरे-धीरे पहले दिल्ली, फिर लखनऊ, रुहेलखंड और अंत में झांसी अंग्रेज़ों के हाथ में आ गई। जनता का आज़ादी का ज़ज्बा इसके खत्म होने के बाद भी जिंदा रहा और आने वाली पीढ़ियों के लिये संघर्ष और प्रेरणा का स्रोत बन गया।

1857 का संघर्ष अपनी अंतर्निहित कमज़ोरियों के चलते सफलता की ओर नहीं बढ़ सका। समय से पूर्व विद्रोह का फूटना, तैयारियों का अपूर्ण होना, विद्रोह का चरित्र राष्ट्रव्यापी न होना असफलता के कुछ महत्वपूर्ण कारण बने। परंतु सबसे प्रमुख बात यह थी कि विद्रोह का नेतृत्व उन सामंती रजवाड़ों के हाथ में था जो अतीतोंमुखी थे और युद्ध-कौशल की दृष्टि से अंग्रेज़ों से काफ़ी पीछे थे। 1857 का संघर्ष मौजूदा स्थिति में बदलाव लाने की आकांक्षा रखने वाले छात्र, नौजवानों, किसानों व मज़दूरों को संघर्ष की प्रेरणा देता है। ऐसे में 1857 की मेहनतकश अवाम के जंग-ए-आज़ादी के पहले संग्राम को याद करना आज भी प्रासंगिक है। ऐसा संग्राम जिसकी यादें और निशान हिंदुस्तान के गांव-कस्बों की मिट्टी में किस्से, कहानियों और लोकगीतों के रूप में आज भी मौजूद हैं। □

(लेखक संतान पत्रकार हैं)

1857

1947

2007

1857

○ गुलज़ार

एक ख़्याल था ... इंक़्लाब का
इक जज़्बा था
सन अठारह सौ सत्तावन !!
एक घुटन थी, दर्द था वो, अंगारा था, जो फूटा था
डेढ़ सौ साल हुए हैं उसकी
चुन चुन कर चिंगारियां हमने रोशनी की हैं
कितनी बार और कितनी जगह बीजी हैं वो चिंगारियां हमने,
और उगाए हैं पौदे उस रोशनी के !!
हिंसा और अहिंसा से
कितने सारे जले अलाव
कानपुर, झांसी, लखनऊ, मेरठ, रुड़की, पटना।
आज़ादी की पहली पहली जंग ने तेवर दिखलाए थे
पहली बार लगा था कोई सांझा दर्द है बहता है
हाथ नहीं मिलते पर कोई उंगली पकड़े रहता है
पहली बार लगा था खूँ खौले तो रुह भी खौलती है
भूरे जिस्म की मिट्टी में इस देश का मिट्टी बोलती है
पहली बार हुआ था ऐसा...
गांव गांव
रुखी रेटियां बंटती थीं
ठंडे तंदूर भड़क उठते थे !
चंद उड़ती हुई चिंगारियों से
सूरज का थाल बजा था जब,
वो इंक़्लाब का पहला गजर था !!
गर्म हवा चलती थी जब
और बया के घौसलों जैसी
पेड़ों पर लाशें झूलती थीं
बहुत दिनों तक महरौली में
आग धुएं में लिपटी रुहें
दिल्ली का रस्ता पूछती थीं।
उस बार मगर कुछ ऐसा हुआ...
क्रांति का अश्व तो निकला था
पर थामने वाला कोई न था

जांबाज़ों के लश्कर पहुंचे मगर
सालारने वाला कोई न था
कुछ यूँ भी हुआ...
मसनद से उठते देर लगी
और कोई न आया पांव की जूती सीधी करे
देखते देखते शामे अबध भी राख हुई।
चालाक था रहज़न, रहबर को
इस 'कूऐ यार' से दूर कहीं बर्मा में जाकर बांध दिया।
अब तक वो जलावतनी में है
काश कोई वो मिट्टी लाकर अपने वतन में दफ्न करे।

आज़ाद हैं अब...
अब तो वतन आज़ाद है अपना
अब तो सब कुछ अपना है
इस देश की सारी नदियों का अब सारा पानी मेरा है
लेकिन प्यास नहीं बुझती

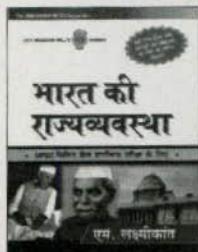
ना जाने मुझे क्यूँ लगता है
आकाश मेरा भर जाता है जब
कोई मेघ चुरा ले जाता है
हर बार उगाता हूँ सूरज
खेतों को ग्रहण लग जाता है

अब तो वतन आज़ाद है मेरा...
चिंगारियां दो... चिंगारियां दो...
मैं फिर से बीजूं और उगाऊं धूप के पौदे
रोशनी छिड़कूं जाकर अपने लोगों पर
मिल के फिर आवाज़ लगाएं...
इंक़्लाब
इंक़्लाब
इंक़्लाब !!

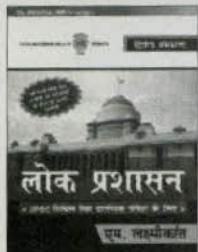
Gulzar.
(गुलज़ार)

आई.ए.एस., पी.सी.एस एवं अन्य प्रतियोगिता परीक्षाओं की उपयोगी पुस्तकें

सर्वोत्तम, प्रामाणिक एवं विश्वसनीय समग्री का लौट



9780070620322 | Rs. 299/-



9780070635748 | Rs. 425/-



9780070635722 | Rs. 849/-

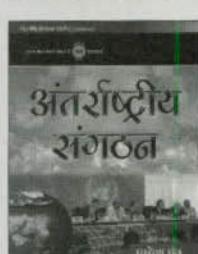


9780070656109 | Rs. 315/-



9780070635753 | Rs. 499/-

शीघ्र प्रकाशित पुस्तकें



Available at your nearest bookstore or contact :

Mc Graw Hill Education

Noida : Tel.: +91-120-4383400 Fax: +91-120-4383401-403 E-mail: vs_jagannathan@mcgraw-hill.com

Bhopal : Tel.0755-4075638/4075637 Email: pritam_bisht@mcgraw-hill.com

Bhubaneswar : Ph.: 0674-6531259, 2534522 Email: sudipto_banerjee@mcgraw-hill.com

Kolkata : Ph.: 033-23372238 E-Mail: sambrata_basu@mcgraw-hill.com

Mumbai : Ph.: 022-65025723, 65025725 E-Mail: k_waghchhipawalla@mcgraw-hill.com

Pune : Ph.: 020-24337604 Fax: 020-24433975 E-Mail: sharad_shinde@mcgraw-hill.com

www.tatamcgrawhill.com

YH/8/7/10

योजना, अगस्त 2007

1857

1947

2007

बिहार में 1857 का स्वाधीनता संग्राम

○ कुमार अमितेश रंजन

अजय कुमार

बि

हार का इतिहास भारत के इतिहास में हमेशा गौरवशाली रहा है। प्राचीन काल से ही यह सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक चेतना का केंद्र रहा है। गौतम बुद्ध एवं महावीर की जन्मस्थली रही इस भूमि ने हमेशा विश्व को एक नया प्रकाश दिया है। परंतु शांति का संदेश देने वाला यह क्षेत्र क्रांतिकारी आंदोलन में अपनी अग्रणी भूमिका निभाने से पीछे नहीं रहा, चाहे वह 1857 की क्रांति हो या कोई अन्य सामाजिक एवं किसान आंदोलन, अपनी भूमिका निभाने में बिहार के लोग अग्रिम कतार में रहे हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई में अपनी उपस्थिति हिंसक व अहिंसक दोनों रूपों में दर्ज करते रहे हैं।

भारत में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अन्य राज्यों के क्रांतिकारियों के साथ बिहार के क्रांतिकारियों ने सक्रिय भूमिका निभाई। बिहार में इस संग्राम के नेतृत्वकर्ता, क्रांतिकारी बाबू कुंवर सिंह ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाकर ब्रिटिश शासन की चूलें हिला दीं। कंपनी बिहार को एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक क्षेत्र मानती थी। संथाल परगना जिला के अंतर्गत देवघर सबडिवीजन के रोहिणी नामक ग्राम में देसी स्थल सेना की बत्तीसर्वी रेजीमेंट की एक कंपनी का मुख्यालय था, यह मेजर मैक्डोनाल्ड की कमान में पांचवीं ईरेगुलर केवेलरी का एक भाग था। सबसे पहले 12

जून, 1857 ई. की संध्या में पहले-पहल इसी टुकड़ी ने विद्रोह के साथ संघर्ष आरंभ किया। इसमें दो अंग्रेज अधिकारी मारे गए, मगर विद्रोह विफल रहा और उन तीनों भारतीय सैनिकों को मृत्युदंड दिया गया जिन्होंने विद्रोह में भाग लिया था। मैक्डोनाल्ड ने कठोरतापूर्वक विद्रोह को दबा दिया और रेजीमेंट का मुख्यालय रोहिणी से हटाकर भागलपुर ले आया। विद्रोह की चिंगारी संपूर्ण बिहार में फैलने लगी। पटना का कमिशनर विलियम टेलर मई 1857 में विद्रोह की चिंगारी को फूटने से पहले ही सतर्कतापूर्वक स्थिति का निरीक्षण कर नगर की रक्षा हेतु एहतियाती व्यवस्था कर चुका था। वह इसलिये विशेष सतर्क था कि यह

नगर दानापुर के सैनिक प्रमंडलीय मुख्यालय के समीप था। उस बक्तृत दानापुर का सैनिक मुख्यालय मेजर जनरल लोआयट की कमान में था। छपरा में लोगों ने खुला विद्रोह कर दिया था। मुजफ्फरपुर में अंग्रेजों ने सुरक्षा व्यवस्था की मांग की थी, क्योंकि जेल और खजाने के अधिकारी को नजीबों पर विश्वास न था। बाबूजूद इसके 3 जुलाई को पटना में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष आरंभ हो गया। इसका नेतृत्व गुरहटा मुहल्ला के एक पुस्तक विक्रेता पीर अली द्वारा किया गया। बिहार में अफीम व्यापार के एंजेंट लायल ने विद्रोह के दमन का प्रयत्न किया, मगर अपने सैनिकों सहित मारा गया। दमनात्मक कार्यवाही के अंतर्गत पीर अली की दुकान और घर को पूर्णतः ढहा

दिया गया और उस स्थान पर एक कृतबा लगाकर लोगों को विद्रोह करने के भयानक परिणामों की चेतावनी दी गई। इसके साथ ही सोलह अन्य व्यक्तियों को भी मृत्युदंड दिया गया। टेलर ने पटना प्रमंडल के मुख्यालयों, छपरा, आरा, मुजफ्फरपुर, गया और मोतिहारी के अधिकारियों को ब्रिटिश विरोधी विद्रोहों को कठोरता के साथ दबाने का आदेश दिया। 19 जून, 1857 को स्वयं बहावी आंदोलन के नेताओं के विरुद्ध समझौता कार्रवाई करते हुए पटना के मोहम्मद हुसैन, अहमदुल्ला और बाजीबुल हक् नामक तीन प्रभावशाली नेताओं को बख़स्त कर दिया गया।

उत्तर बिहार में अधिकारियों ने हल्के दमन की नीति अपनाई। निलहे साहब तथा दूसरे यूरोपीय जून 1857 में विद्रोह भड़क उठने की आशंका से घबराए हुए थे। मुजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट के कहने से उन्हें 'पारस्परिक सुरक्षा' के लिये नगर में बुला लिया गया था। 12वीं ईरेगुलर केवेलरी के मेजर ई. एस. ने आंदोलन को दबाने के लिये अल्याधिक कठोर कार्रवाई करते हुए संपूर्ण जिले में सैनिक कानून (मार्शल लॉ) लगा दिया। अगस्त 1857 में भागलपुर में भी विद्रोह भड़क उठा था। विद्रोहियों ने गया पहुंचकर वहाँ केंद्र 400 लोगों को मुक्त कराते हुए टिकारी राज पर हमला कर वहाँ से दस हजार रुपये लट लिये। गोरखपुर से पटना,

सारण, चंपारण और तिरहुत इन सभी क्षेत्रों को पूर्ण सैनिक शासन में रखा गया और मार्शल लॉ लगा दिया गया। इसके बावजूद दानापुर में तीन सैनिक टुकड़ियां जुलाई 1857 में बगावत कर शाहाबाद जिले में प्रवेश कर गई। वहां जगदीशपुर के राजपूत जर्मांदार कुंवर सिंह के सुयोग्य नेतृत्व में ब्रिटिश राज को चुनौती का सामना करना पड़ रहा था।

कुंवर सिंह ने अपने दुर्ग में बंदूकें एवं गोला-बारूद बनाने का एक कारखाना स्थापित किया हुआ था। इसके अतिरिक्त कुंवर सिंह के सहयोगी अमर सिंह, भतीजे रथमंजन सिंह, निशान सिंह, हरकिशन सिंह एवं शाहाबाद के चार जर्मांदारों ने ब्रिटिश शासन की नाक में दम कर रखा था।

अमर सिंह ने कैमूर की पहाड़ियों में रहते हुए कंपनी की सेनाओं के विरुद्ध दीर्घकालीन छापामार युद्ध करते हुए गया और सासाराम के बीच संचार व्यवस्था को ठप्प कर दिया। अंग्रेजों के लिये कुछ अन्य इलाके भी सिरदर्द बने रहे। इनमें नवादा, जहानाबाद, राजगीर, अमरथु प्रभूति मुख्य हैं। हैंदर अली खां, फतह सिंह जैसे रंगरूट भर्ती करके नवादा के समीप अंटीपुर में एकत्र हुए और वहां घोषणा कर दी कि “राजगीर परगना में कंपनी का राज खत्म हो गया है।”

कमिशनर टेलर कुंवर सिंह को सदेह की दृष्टि से देखता था। उसने कुंवर सिंह को पटना आकर भेट करने का निमंत्रण दिया, परंतु मौलवी अहमदुल्लाह आदि के साथ हुए विश्वासघात के कारण उन्होंने पटना न जाने का निर्णय लिया। कुंवर सिंह का लगभग चार हजार सैनिकों के सहयोग से संघर्ष की शुरुआत करते हुए सैनिकों द्वारा आरा को मुक्त कराने का पहला प्रयास विफल रहा, परंतु दूसरे प्रयास में उन्हें सफलता मिली लेकिन जल्दी ही अंग्रेजों ने आरा पर दुबारा कब्ज़ा कर लिया और सभी निवासियों को निरस्त्र



गिरफ्तारी के बाद अंग्रेजों के सिपाहियों के कब्जे में बिरसा मुंडा

कर दिया गया। इसके पश्चात जगदीशपुर पर भी अंग्रेजों ने अधिकार करते हुए कुंवर सिंह की हवेली और मंदिर को ध्वस्त कर दिया एवं सभी विद्रोहियों कि संपत्ति जब्त कर ली गई।

फिरंगियों की दमनात्मक नीति से क्रांतिकारियों का उत्साह नहीं थमा और क्रांति की लहर चलती रही। इसी बीच कुंवर सिंह ने तात्पा टोपे से संपर्क करने का प्रयास किया। तत्पश्चात वे लखनऊ पहुंचे जहां अवध के शाह ने उन्हें सम्मानसूचक पोशाक और हज़ारों रुपये एवं आजमगढ़ जिले के लिये एक फरमान भी दिया। इसके बाद उन्होंने नाना साहेब के साथ कानपुर के युद्ध में भाग लिया, जहां अंग्रेज़ सेना के विरुद्ध सफलता मिली। कंपनी के अधिकारियों ने कुंवर सिंह की गतिविधियों को रोकने का हर संभव प्रयास किया, किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने कुंवर सिंह के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई का कड़ा आदेश दिया जिससे उनपर दबाव बढ़ने लगा। बलिया के समीप अंग्रेजों के साथ युद्ध में विजयी होने के बाद जगदीशपुर की ओर लौटने के क्रम में कुंवर सिंह ने 23 अप्रैल, 1858 को कैप्टन ली ग्रांड के नेतृत्व में आई ब्रिटिश सेना को बुरी तरह पराजित किया। परंतु दुर्भाग्यवश कुंवर सिंह को बांह में गोली लगी और ज़हर शरीर में फैलने की आशंका से उन्होंने अपने बांह को काटकर गंगा मईया को अर्पित कर दिया।

अत्यधिक खून निकलने के कारण दो दिन पश्चात उनकी मृत्यु हो गई। जीवन के अखिरी सांस तक वे ब्रिटिश सैनिकों से लोहा लेते रहे। इस महान् दुर्घट नेता ने जगदीशपुर में तोप बनाने की भी व्यवस्था की थी। कुंवर सिंह के मृत्यु के बावजूद उनके अनुयायियों को विचलित होते नहीं देखा गया। उनके भाई अमर सिंह तथा हरकिशन सिंह मैदान में डटे रहे। रानी विक्टोरिया द्वारा क्षमादान की घोषणा के बाद इस क्षेत्र में विद्रोहियों ने हथियार डाले। बाबू अमर सिंह सहित चौदह व्यक्तियों को क्षमादान से पृथक रखते हुए उन्हें दंडित किया गया।

जहां एक तरफ कुछ जर्मांदार अपनी जान की बाजी लगाकर अंग्रेजों से लोहा ले रहे थे वहीं विदंबना यह भी रही कि बिहार में ही कुछ जर्मांदारों ने विद्रोहों के दमन में खुलकर कंपनी की सहायता की। उत्तर बिहार में सहायता करने वाले जर्मांदारों में प्रमुख थे बेतिया और हथुआ के राजा, सुरसंड और पंडौल के जर्मांदार एवं मुजफ्फरपुर का महंथ परिवार। परंतु, चौगाई के धनी एवं प्रभावशाली राजपूत जर्मांदारों ने अंग्रेजों के खिलाफ़ लड़ाई में क्रांतिकारियों का साथ दिया। 1857 के इस महासंग्राम ने सारे देश में एक नयी परिस्थिति को जन्म दिया। कंपनी के शासन का अंत हुआ और भारत का शासन इंग्लैंड की सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया। इसके अनेक दूरगामी परिणाम सामने आए।

यद्यपि 1857 की क्रांति असफल रही, फिर भी इसने राजनीतिक चेतना के विकास का द्वार हमेशा के लिये खोल दिया। विद्रोह के दौरान अंग्रेज़ अधिकारियों ने जो अत्याचार किए उसे पूरा-पूरा भुला देना असंभव है। उसकी स्मृति आज भी भारतीयों के मन-मस्तिष्क को उद्भवित करती है। यही कारण है कि 1857 के विद्रोह ने राष्ट्रीय आंदोलन के लिये दीपक का काम किया। □

1857

1947

2007

तराना-ए-हिंदी की एक सदी

○ अबरार रहमानी

इक़बाल का मशहूर तराना-ए-हिंदी यद्यपि बच्चों का तराना है लेकिन उसकी अधिकतर पंक्तियां आम कहावत के रूप में प्रचलित हैं। आज न केवल प्रत्येक बच्चा सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा, हम बुलबुलें हैं उसकी ये गुलिस्तां हमारा को स्कूल से घर तक गुनगुनाता जाता है, बल्कि एक मामूली मज़दूर से लेकर उच्च राजनीतिज्ञ तक इस शेर को गुनगुनाकर अपनी देशभक्ति का सबूत देते हैं।

स्वतंत्रता दिवस हो या गणतंत्र दिवस का समारोह, या फिर कोई भी राष्ट्रीय त्योहार - इस तराना-ए-हिंदी के बिना संपूर्ण नहीं होता। आज मोबाइल फोन का लोकप्रिय रिंगटोन भी यही तराना है। एक अनुमान के अनुसार पूरी उर्दू कविता में बल्कि हिंदुस्तान की सभी भाषाओं की कविताओं में सबसे अधिक पढ़ा और गाया जाने वाला तराना यही है।

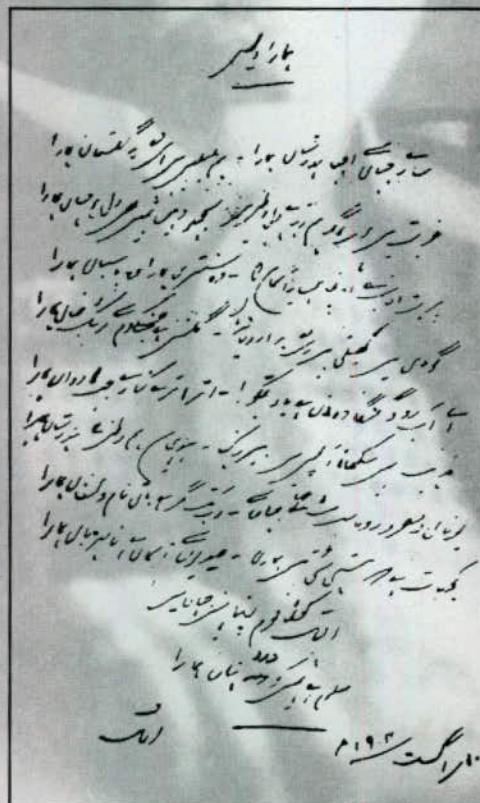
इस गीत की रचना की भी एक रोचक कथा है। आज से ठीक 102 वर्ष पूर्व 10 अगस्त, 1904 को इस तराने की रचना लाहौर में हुई। यह वह समय था, जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन धीरे-धीरे मज़बूत हो रहा था और भारत में फिरंगी शासन के विरुद्ध असंतोष बढ़ रहा था। ऐसे में इक़बाल का तराना-ए-हिंदी लिखना एक तरह से स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने जैसा था।

सन् 1938 में यद्यपि इक़बाल का देहांत हो गया लेकिन इस तराने ने अपनी

लोकप्रियता के कारण इक़बाल की अनुपस्थिति महसूस नहीं होने दी। साधारण रूप से लोगों को यही भ्रम रहा कि इक़बाल भारत की आज़ादी तक जीवित रहे। अतः कुछ सांप्रदायिक तत्व इसी आधार पर इक़बाल पर आरोप लगाते हैं कि इक़बाल आज़ादी के बाद पाकिस्तानी हो गए और वहीं लाहौर में दफ़्न हुए। बुरा हो पूर्वाग्रह और संकीर्ण दृष्टि का

कि वह न जाने कैसे-कैसे विद्वानों और दूरदर्शियों को भी अंधा बना देता है। इक़बाल मुसलमान अवश्य थे और वास्तव में एक अच्छे मुसलमान थे लेकिन वे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक भारतीय ही रहे और 1938 में जब उनका देहावसान हुआ तो वे भारत में ही दफ़्न हुए, न कि पाकिस्तान में। पाकिस्तान तो उनके देहांत के पूरे 9 वर्ष बाद अस्तित्व में आया।

हां, तो बात हो रही थी इक़बाल के तराना-ए-हिंदी की। बात उन दिनों की है जब लाहौर जैसे शहर में युवाओं के मनोरंजन के लिये एक ही क्लब 'यांगमैंस क्रिश्चियन एसोसिएशन' हुआ करता था और आमतौर पर पढ़े-लिखे लोग समय बिताने के लिये उसी क्लब में जाया करते थे। एक बार क्लब के सभिव से किसी बात पर लाला हरदयाल की नौक-झोक हो गई। फिर क्या था। आव देखा न ताव तुरंत ही एक क्लब 'यांगमैंस इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना कर डाली। लाला हरदयाल उस समय गवर्नरमैंट कॉलेज, लाहौर में एमए के छात्र थे, जहां अल्लामा इक़बाल दर्शनशास्त्र पढ़ाया करते थे। लेकिन इक़बाल के संबंध लाला हरदयाल से दोस्ताना थे। सो लाला हरदयाल ने 'यांगमैंस इंडियन एसोसिएशन' के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता के लिये अल्लामा इक़बाल से अनुरोध किया जिसे इक़बाल ने सर्व अक्षर कबूल कर लिया। किसी भी सभा, समारोह या बैठक के इतिहास में



यह हस्तलिखित तराना हमारा देश शीर्षक से मासिक आजकल (उदू) में पहली बार प्रकाशित हुआ था

संभवतः यह पहली बार हुआ जब किसी समारोह के अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण के स्थान पर एक तराना गाकर सुनाया हो।

यह तराना पहली बार मौलाना शारर की पत्रिका इत्तेहाद में 16 अगस्त, 1904 को इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुई थी – “एक क्लब की स्थापना हुई है जिसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि हिंदुस्तान के सभी समुदायों में मेलजोल बढ़ाया जाए ताकि वे सब एकमत से देश के विकास और कल्याण की ओर आकर्षित हों। इसके एक समारोह में पंजाब के प्रसिद्ध और कोमल विचार वाले शायर शेख मोहम्मद इक़्बाल साहब, ने एक छोटी और पुरजोश कविता पढ़ी जिसने श्रोताओं पर इतना अच्छा प्रभाव डाला कि सबके आग्रह पर उन्होंने समारोह के उद्घाटन और समापन दोनों अवसरों पर वह तराना गाया। इस कविता से चूंकि एकता के उद्देश्य में सफलता मिली अतः हम अपने पुराने दोस्त मौलवी मोहम्मद इक़्बाल साहब का शुक्रिया अदा करते हुए इत्तेहाद में इसे प्रकाशित कर रहे हैं।”

यह तराना सबसे पहले ‘हमारा देश’ शीर्षक से और फिर ‘हिंदोस्तां हमारा’ के नाम से प्रकाशित हुआ। यही वह तराना है जिसे सुनकर सुनने वाले उत्साह और जोश से भावविभोर हो गए और लोगों में देशभक्ति का भाव उमड़ पड़ा। बाद में यही तराना-ए-हिंदी के नाम से विख्यात हुआ।

इस घटना के पहले रात्रि (नैरेटर) मोहम्मद उमर नूर इलाही ने ‘यंगमैंस इंडियन एसोसिएशन’ के उद्घाटन समारोह की तिथि तो नहीं लिखी है लेकिन इक़्बाल के हस्तलेख में यह तराना बाद में उपलब्ध हो गया जिसे

तराना-ए-हिंदी

सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा।
गुरबत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहां हमारा।
पर्वत हो सबसे ऊँचा हमसाया आसमां का
वो संतरी हमारा वो पासबां हमारा।
गोदी में खेलती हैं जिसकी हज़ारों नदियां
गुलशन हैं जिसके दम से रक्षे जिनां हमारा।।।
ऐ आबरुदे गंगा वो दिन हैं याद तुझको
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा।।।
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा।।।
युनानो मिश्रो रोमा सब मिट गए जहां से
अब तक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा।।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।।।
इक़बाल कोई महरम अपना नहीं जहां में
मालूम क्या किसी को दर्द निहां हमारा।।।

सर्वप्रथम स्वर्गीय जगन्नाथ आजाद ने आजकल पत्रिका के इक़्बाल विशेषांक, नवंबर 1977 में प्रकाशित किया। इस हस्तलिखित प्रति में इक़्बाल का हस्ताक्षर और तिथि 10 अगस्त अंकित है। इस तरह अब इस लोकप्रिय तराने की आयु एक सौ से बढ़कर एक सौ दो साल हो गई है।

जब भारत को आजादी मिली तो 14 और 15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को ठीक 12 बजे हमारे संसद में जो समारोह हुआ उसमें

जन-गण-मन के साथ इक़्बाल का यह तराना सारे जहां से अच्छा हिंदोस्ता हमारा भी समूह में गाया गया। इस प्रथम स्वतंत्रता समारोह में उस समय के सारे बड़े नेता उपस्थित थे जो देशप्रेम के इस तराने से उत्पन्न भाव से सराबोर हो रहे थे।

इस तराने को भिन्न-भिन्न अवसरों पर गाया जाता रहा है। इस तराने के महत्व और लोकप्रियता को देखते हुए भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने स्वतंत्रता की 25वीं वर्षगांठ पर एक धुन तैयार कराई थी। यही वह धुन है जो अब प्रचलित है और जिसे सुनने से हमारे दिलों की धड़कनें तेज़ हो जाती हैं और हमारी ज़बानें अनायास ही इसे गुनगुनाने लगती हैं। यद्यपि यह तराना इक़्बाल ने उर्दू में लिखा था लेकिन यह इतनी सरल, आम भाषा में है, कि महात्मा गांधी ने इसे हिंदुस्तान की कौमी ज़बान का नमूना कहा था। यह न केवल महात्मा गांधी की तथ्य की स्वीकृति और पसंद की अभिव्यक्ति थी बल्कि इक़्बाल के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि भी थी।

तराना-ए-हिंदी की इस हस्तलिखित प्रति के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। यह तराना सर्वप्रथम ‘हमारा देश’ के नाम से सुनाया गया और इसी नाम से ज़माना कानपुर और मख्बजन लाहौर में प्रकाशित भी हुआ। लेकिन इक़्बाल ने अपने प्रथम कविता-संग्रह बांगे दरा में तराना-ए-हिंदी के नाम से सम्मिलित किया और अब यह इसी नाम से मशहूर है। बाद में इक़्बाल ने स्वयं इस तराने के कुछ शब्द बदले। □

(लेखक योजना (उर्दू)
के सहायक संपादक हैं)

लेखकों से अनुरोध

कृपया अपने लेख टाइप करा कर सीढ़ी में भेजें। साथ में एक मूल टंकित प्रति हो। वापसी के लिये टिकट लगा लिफाफा अवश्य संलग्न करें। डाक टिकट लगा लिफाफा संलग्न न होने पर अस्वीकृति की दशा में रचनाएं वापस भेजना संभव नहीं होगा। लेख पर दो से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही हैं। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिये लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। सभी रचनाएं ‘संपादक, योजना’ के नाम प्रेषित करें। - संपादक

1857

1947

2007

उपनिवेशवाद : एक आर्थिक समीक्षा

भारत में नियोजन का विकास

○ राघवेंद्र चट्टोपाध्याय

पाल स्वीजी ने कहा था कि सोवियत रूस में प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलता और मंदी के विनाशकारी अनुभव ने दुनिया को 'योजना सजग' बना दिया। यह सच है कि 1930-31 में अपने को 'स्वतंत्र विश्व' कहने वाले देश 'यथास्थिति' के सिद्धांत की समाप्ति देख रहे थे। अर्थशास्त्र की ऐंग्लो-सैक्सन दुनिया में किंसियनिज्म जड़े जमा रहा था, अमरीका ने न्यू डील के लिये काम करना शुरू कर दिया था और ब्रिटेन ने अपनी आर्थिक सलाहकार परिषद गठित कर ली थी। ये सब वे कदम थे जिनकी किंसियन्स ने राज्यों के लिये सिफारिश की थी और जो बाजार की अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा हस्तक्षेप के लिये किसी देश की सरकार को उठाने चाहिए। ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों ने भी यही किया।

भारत में औपनिवेशिक सरकार ने अपने आप ही एक आर्थिक सलाहकार परिषद की स्थापना की। लेकिन जॉर्ज शुस्टर की कोशिशें सफल नहीं हो पाईं क्योंकि जी.डी. बिडला और पी. ठाकुरदास के नेतृत्व में भारतीय पूँजीपति इसके सदस्य बन कर अधिकार पाना चाहते थे और अंग्रेज़ उन्हें कोई अधिकार नहीं देना चाहते थे। भारत सरकार के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की इस कोशिश की सभी सफलता चाहते थे लेकिन यह विफल हो गई। लेकिन शुस्टर के प्रयासों से कुछ प्रबुद्ध भारतीय इसके प्रति जागरूक

बन गए। 1931 में उन्होंने यह मुद्रा सेंट्रल असेंबली में उठाया। 1934 तक भारतीय उद्योग व्यापार के नेता फिक्की के तहत संगठित हो गए थे, उन्होंने मांग की कि भारत में नियोजन होना चाहिए। फिक्की की वार्षिक बैठक में जार्ज शुस्टर की मौजूदगी में निवर्तमान और नये अध्यक्षों - बिडला और एन.आर. सरकार ने ज़ोरदार दलील दी कि भारत में उद्योगों के विकास और ग्रीष्मी दूर करने के लिये नियोजित आर्थिक विकास शुरू किया जाना चाहिए। इस बात को देखते हुए कि भारतीय पूँजीपतियों ने 1930 से ही सरकारी योजनाओं की मांग शुरू कर दी थी, स्पष्ट है कि 19वीं सदी के आखिर से ही भारत में आर्थिक विचारों की शुरुआत हो गई थी। 19वीं सदी में भारत में नितांत ग्रीष्मी फैली थी और न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे, दादा भाई नौरोजी तथा अन्य बहुतों ने ग्रीष्मी दूर करने के उद्देश्य से यथास्थिति समाप्त करने का पक्ष लिया। बिपिन चंद्रा ने इन विद्वानों के लेखों में 'आर्थिक राष्ट्रवाद' की झलक देखी है और इससे मालूम होता है कि इन चिंतकों ने ऐंग्लो-सैक्सनों के 'स्वतंत्र व्यापार' के विचार को पूर्वाग्रहग्रस्त और पक्षपातपूर्ण पाया। 'यथास्थिति नीति' का भारत की अर्थव्यवस्था पर ग्रीष्मी बढ़ाने और उद्योग-विनाशक असर पड़ा। अंग्रेज़ 19वीं सदी के शुरू से ही इसी नीति पर चल रहे थे। भारतीय विचारकों ने इनका गहन विश्लेषण किया। उस ज़माने के एक प्रमुख मनीषी और चिंतक रानाडे तथा अन्य कई समकालीन

विद्वानों ने फ्रेडरिक लिस्ट के संरक्षात्मक राष्ट्रीय चिंतन की वकालत की और स्मिथ-रिकार्डों किस्म की विचारधारा का विरोध किया।

यथास्थिति विरोधी विचारधारा भारत में 19वीं सदी के उत्तरार्ध में देखी गई और इसका क्षेत्र मुख्यतः पुणे-मुंबई था। इसमें कोई असामान्य बात नहीं कि ये चिंतक इसी क्षेत्र के थे। लंकाशायर के विरोध के बावजूद मुंबई में सूती मिलें खुल गई थीं जहां बंगाल में खुली सारी मिलों के मालिक अंग्रेज़ थे वहाँ मुंबई की सभी मिलें आधुनिकता और आर्थिक समृद्धि की आस में खोली गई थीं। रानाडे जैसे लोगों के लिये औद्योगिकरण आधुनिकता और आर्थिक विकास का पर्याय था। मुंबई के उभरते उद्योगों में उनका विश्वास इस बात से भी ज़ाहिर होता है कि वे खुद इन उद्योगों के शेयरधारक थे। नवगठित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आधुनिकतावादी गोखले जैसे नेता भी इस भावी दूरदृष्टि के समर्थक थे। इन नेताओं ने यह भी समझ लिया था कि अगर इन उदीयमान उद्योगों को साम्राज्यवादी औद्योगिक घरानों से असमान प्रतियोगिता के लिये छोड़ दिया गया तो देश की अर्थव्यवस्था के हित में कुछ करने में समर्थ हो सकने तक इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ेगा। इसीलिये प्रमुख नेताओं ने स्वदेशी उद्योगों के लिये संरक्षण की मांग की।

इसके बाद आया 1903-08 का स्वदेशी

आंदोलन और प्रथम विश्वयुद्ध जिसके तजुब्बों ने भारतीय उद्योगों को संरक्षण देने की मांग करने वालों के रवैये को सही साबित कर दिया। स्वदेशी से भारतीय उद्योगों को अपेक्षाकृत विस्तृत बाज़ार प्राप्त हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान आयात पर प्रतिबंध लगाए गए जिससे भारत सरकार को स्वदेशी उद्योगों से माल खरीदने को मज़बूर होना पड़ा। इन दो अवधियों में मुंबई के उद्योगों को खासतौर से और देशभर के व्यापारियों को सामान्य रूप से बहुत लाभ हुआ। इससे संरक्षण की दलीलों को बल मिला और साबित हो गया कि अगर सरकार इन भारतीय उद्योगों को संरक्षण देती है तो उससे उन्हें लाभ हो सकता है।

इस प्रकार संरक्षण की मांग का सरकार के आर्थिक विकास के सिद्धांत के रूप में विकास हुआ। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के अनुभव से भारतीय उद्योगों के विकास में एक बाधा भी पैदा हुई। जर्मन नौसेना ने भूमध्यसागर में जो आयात बाधाएं पैदा कीं उससे भारतीय उद्योगों को जहां अपना माल बेचने में सहायता मिली, वहाँ उन्हें पूंजी और उद्योग स्थापना में काम आने वाले उपकरणों के आयात में कठिनाइयां हुईं जिससे उनका विकास रुक गया। मशीनें देश में नहीं बनती थीं और देश की मौजूदा फैक्टरियों में लग्ज़ मशीनों के रखरखाव के लिये फालतू कलपुर्जों के लिये उसे आयात पर निर्भर रहना पड़ता था। परिणामस्वरूप उद्योगों को लाभ के रूप में मिली जो राशि जमापूंजी के रूप में इकट्ठा हुई उसका इस्तेमाल उद्योगों के विस्तार के लिये नहीं किया जा सका। युद्ध समाप्त होते-होते चालू उद्योग भी अपने उत्तर पर आ गए। इस प्रकार युद्ध का दोहरा अनुभव हुआ और भारतीय उद्योगपतियों और उनके चिंतकों को यह चेतना आ गई कि आयात पर निर्भरता से क्या हानि हो सकती है।

अगर हम ऐतिहासिक अनुभवों और पूंजीवादी विचारकों के तरीकों पर ध्यान दें तो ज़ाहिर होगा कि मंदी किंसियन देशों के बाज़ार अर्थव्यवस्था पर असर से उन्हें अपनी मांग और प्रभावशाली बनाने में मदद मिली। 1934

में जब बिड़ला और सरकार ने नियोजित आर्थिक विकास की बात उठाई तो उनके तर्क इन्हीं अनुभवों पर आधारित थे। उनकी हैसियत और अवसर को छोड़ दें तो वे अपने भाषणों में जो कुछ कहते थे वह फिक्की के संगठनात्मक विचारों को ही दर्शाता था। लेकिन तब फिक्की भारत के पूंजीवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था। बिड़ला ने वे विचार सामने रखे जो देश के उद्यमियों के विचार होते थे। उन्हें यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि भारत के व्यापार को बड़े विदेशियों के मुकाबले संरक्षण की ज़रूरत थी, उन्हें एक बड़ा बाज़ार चाहिए था जिसके खरीदारों में क्रयशक्ति हो और देश में तेज़ी से औद्योगीकरण हो और आधारभूत उद्योगों सहित देश में ही अर्थव्यवस्था का स्वतंत्र आधार हो।

बाज़ार के विस्तार के लिये बिड़ला का सुझाव था कि ग्रीष्मी दूर की जाए और इसके लिये वह चाहते थे कि खेती की उत्पादकता बढ़ाई जाए क्योंकि देश के 70 प्रतिशत से ज्यादा लोग खेती पर निर्भर थे। ऐसा तभी हो सकता है जब बड़े पैमाने पर सिंचाई और कृषि योजनाओं का विकास किया जाए। इसके लिये ज़रूरी होगा कि सरकार पहल करे और पूंजी निवेश करने को तैयार हो। (यह ध्यान देने की बात है कि बिड़ला ने तब प्रचलित जर्मनीदारी व्यवस्था को कमज़ोर करने का सुझाव नहीं दिया हालांकि तत्कालीन राजनीति में यह बात चल रही थी। एक वर्ग के रूप में भारतीय पूंजीपतियों ने कभी भूमि सुधारों को समर्थन नहीं दिया और आज भी यह भारत की मंद प्रगति का कारण बना हुआ है (लेकिन यहाँ पर इस विषय पर कुछ कहना उपयुक्त नहीं होगा)।

जहां तक उद्योगों का सवाल है, बिड़ला ने भारत के तजुब्बों की बात की और कहा कि जब तक भारत में आधारभूत उद्योग (धातु सहित वे बुनियादी उद्योग जो पूंजीगत उपकरण एवं मशीनरी के लिये ज़रूरी हैं) नहीं खोले जाएंगे तब देश का समग्र आर्थिक विकास संभव नहीं होगा। और बिना औद्योगिक विकास के देश खुशहाल नहीं हो पाएगा। पूंजीपतियों

की समृद्धि में ही देश की समृद्धि निहित है। फिर भी, भारत के निजी उद्योगों के पास बुनियादी उद्योगों के विकास वाले उद्योगों में निवेश करने के लिये ज़रूरी क्षमता नहीं है। यहाँ पर भारतीय पूंजीपतियों के सामने मौजूद औपनिवेशिक सरकार के कारण होने वाले घाटे की ओर साफ निहित संकेत था।

1934 तक भारतीय पूंजीपतियों के वर्ग ने सरकार द्वारा आर्थिक विकास के लिये नियोजन का एजेंडा सार्वजनिक कर दिया था। इस वर्ग ने जो राष्ट्रीय आकांक्षाएं प्रकट कीं उसे बहुत जल्द राजनीतिक नेताओं का भी समर्थन मिल गया। वामपंथी झुकाव वाले कांग्रेस नेता और सुभाषचंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू जैसे आधुनिक विचारों वाले नेता भी इन विचारों के प्रतिपादक बन गए। 1937 के चुनाव के बाद जब ब्रिटिश शासन के दौरान कांग्रेस की सरकारें बनीं तो तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष ने उद्योगों के प्रभारी प्रांतीय मंत्रियों की एक बैठक बुलाई और जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय नियोजन समिति बनाई गई। तर्क यह दिया गया कि उस समय प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें थीं और उद्योग नयी व्यवस्था के अनुसार प्रांतीय विषय था, अतः नियोजित विकास शुरू करने की जिम्मेदारी कांग्रेस की बनती है।

बोस के इन प्रयासों का विरोध करने वाले एकमात्र लोग थे - दक्षिणपंथी कांग्रेसी। महात्मा गांधी ने उभयवृत्तिक रवैया अपनाया। गांधीवादियों को संतुष्ट करने के लिये नेहरू-बोस की दलील यह थी कि बड़े उद्योग 'आवश्यक बुराई' हैं अतः उनका विकास एवं नियंत्रण सरकार के हाथों में होना चाहिए। राष्ट्रीय नियोजन समिति में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ शामिल किए गए और उनका नेतृत्व करते थे खुद नेहरू (सुभाषचंद्र बोस को जल्दी ही कांग्रेस से निकाल दिया गया)।

राष्ट्रीय नियोजन समिति ज्यादा नहीं चली। द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होते ही कांग्रेस के लगभग सभी नेताओं को जेल में रूँस दिया गया और सदस्यों के अनसुलझे आपसी मतभेदों के चलते राष्ट्रीय नियोजन समिति ने काम

करना बंद कर दिया। जहां कांग्रेस के पूँजीवादी और समाजवादी विचारों वाले समिति सदस्यों में नियोजित विकास की ज़रूरत और बुनियादी उद्योगों में सरकार द्वारा पूँजीनिवेश के मुद्दे पर सहमति थी वहां दोनों खेमों में इस बात को लेकर गहरे मतभेद थे कि इन बुनियादी उद्योगों का स्वामित्व किसके पास हो। पूँजीवादी और जाने-माने अर्थशास्त्री और महासचिव (उनका वामपंथी विचारधारा की ओर झुकाव जगज़ाहिर था) के प्रतिनिधि चाहते थे कि बुनियादी उद्योगों का विकास सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाए, लेकिन पूँजीवादी विचारक चाहते थे कि पूँजीपतियों को जब भी वे इनमें निवेश करना चाहें और इसके लिये समर्थ हों, तो उन्हें निवेश करने दिया जाए। समाजवादी चाहते थे कि निजी क्षेत्र में सिर्फ़ उपभोक्ता उत्पाद रहने दिए जाएं और बाकी उद्योग सरकार के हाथ में हों। नेहरू अब इस समिति में मध्यस्थ की भूमिका निभाने के लिये मौजूद नहीं थे अतः जल्दी ही समिति ने अपना काम-धाम बंद कर दिया।

1941 तक यद्यपि यह समिति समाप्त हो चुकी थी, लेकिन तब तक नेहरू ने इस मामले में अपनी पहचान बना ली थी कि वे सरकार

की पहल से नियोजित विकास के जरिये देश को आधुनिक बनाना चाहते हैं। लेकिन यहां पर इस बात का उल्लेख करना रोचक होगा कि जहां नेहरू स्वतंत्र भारत के योजना आयोग में एक अग्रगामी भूमिका निभाना चाहते थे और कांग्रेस के समाजवादी पार्टी में और बाहर भी देश के नियोजित आर्थिक विकास की वकालत करते थे, वहां नियोजन का मुख्य एजेंडा जी.डी. बिड़ला और पी. ठाकुरदास जैसे दूरदर्शी उद्योगपतियों के नेतृत्व में पूँजीपतियों ने तैयार किया था। राष्ट्रीय नियोजन समिति में जो मतभेद उठे उससे इन नियोजकों ने उस संभावित दिशा का पूर्वानुमान कर लिया जो राजनीतिक नेतृत्व अपनाने वाला था और जिसके कारण निजी उद्यमियों की आज़ादी ख़तरे में पड़ सकती थी। दूसरी ओर अंग्रेज़ विदेशी मुद्रा के उस भंडार को किसी न किसी बहाने हड्डपने की फ़िराक में थे जो भारतीय पूँजीपतियों ने युद्ध के दौरान अर्जित किया था। इस बात ने भारत के उद्योग-व्यापार के नेताओं को चौकन्ना कर दिया था और वे तुरंत मिल-बैठ कर देश के औद्योगिक भविष्य के बारे में अपने विचार सार्वजनिक करना चाहते थे। ये नेता गुपचुप तरीके से इकट्ठा

हुए। 1944 तब उन्होंने बंबई योजना बना ली। यह योजना प्रत्यक्ष अथवा वित्तीय विवरणों के कारण नहीं बल्कि उस औद्योगिक नीति के कारण कामयाब मानी गई जो औपनिवेशिक युग और उसके बाद में नियोजन नीति बनाने में काम आई। 1944-45 में अंग्रेज़ सरकार ने जो औद्योगिक नीति प्रस्ताव अपनाया उसमें तथाकथित बंबई-योजना की अक्षरशः प्रतिध्वनि थी। यहां तक कि बाद में 1948 में जब स्वतंत्र भारत ने अपनी नीतियां बनाई तो वह भी मोटे तौर पर भारतीय उद्योगपतियों की मांगों के तर्ज पर थीं।

अंत में हम कह सकते हैं कि भारत सरकार ने 1951 से और कम से कम 1986 तक जो योजनाएं बनाई वे उन भारतीय उद्योगपतियों और मध्यवर्गीय आधुनिकतावादियों के साझे लक्ष्यों की पूर्ति के लिये थीं जो भारत को बुनियादी उपकरणों के उत्पादक मज़बूत उभरते देश के रूप में देखना चाहते थे। इन योजनाओं के जरिये कितनी उपलब्धियां मिलीं और वे कहां नाकामयाब रहीं, यह जानना एक अलग विषय है। □

(लेखक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट, कोलकाता से संबद्ध हैं)



स्वाधीनता से 11 दिन पूर्व सत्ता हस्तांतरण की तैयारी



1857

1947

2007

स्वतंत्र भारत की अनुल्य यात्रा

ब्रिटिश भारत और आज़ाद भारत में मानव विकास

○ अबुसलेह शरीफ

विभाजन के पूर्व के भारतवर्ष को अक्सर ब्रिटिश साम्राज्य का मुकुट माना जाता है। और, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि अपने विशाल क्षेत्रफल, प्राकृतिक संपदा तथा मज़दूरों की बड़ी संख्या के कारण भारत उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी के मध्य काल में ब्रिटेन का बहुमूल्य भू-भाग था। हालांकि वर्ष 1947 में विभाजन के बाद इस देश में न केवल 21 प्रतिशत का बड़ा भू-क्षेत्र खोया (9.5 लाख वर्ग किमी) बल्कि 7.6 करोड़ (लगभग कुल आबादी का 17 प्रतिशत) जनसंख्या भी अलग हो गई।

यह आरोप लगाया जाता है कि विभाजन से जुड़े विस्थापन ने भारत की जनसंख्या के सम्मुख दिक्कतें पैदा कीं। यही कारण है कि आज के भारतीय सामाजिक-धार्मिक संप्रदायों में एक गंभीर मतभेद है। परंतु अनुभवादी इस मत को सही नहीं मानते हैं। सन् 1951 तक तकरीबन 1.5 करोड़ लोगों का इस क्षेत्र में आगमन हुआ और लगभग 1.7 करोड़ लोग इसी अवधि में क्षेत्र से बाहर गए। इस प्रकार हम देखते हैं कि करीब 20 लाख लोगों का कोई लेखा-जोखा नहीं है। प्रवासी लोग प्रायः सीमा क्षेत्र में गए या उन स्थानों पर गए जहां से लोग मकान खाली करके विस्थापित हुए थे, अथवा उन्होंने बड़े नगरों की ओर प्रस्थान किया। विस्थापन का अनुपात उल्लेखनीय रूप से राज्यों में भी भिन्न-भिन्न था। जो

राज्य सीमा से सटे थे वहां पर प्रस्थान व आगमन दोनों का अनुपात अधिक था। स्थानांतरण में भिन्नता, लिंग, शैक्षणिक स्तर व व्यावसायिक आधार पर थी तथा पुरुषों में अधिक थी। इस जनसंख्या का प्रवाह पूर्वी सीमा की तुलना में पश्चिमी सीमा में अधिक था। भारत के संदर्भ में बड़ी संख्या में मुसलमानों का स्थानांतरण हुआ। भारतीय पंजाब प्रांत में 1931 में मुसलमानों की जनसंख्या 32 प्रतिशत थी जो 1951 में घटकर 1.8 प्रतिशत हो गई। जबकि दूसरी तरफ पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में सिखों और हिंदुओं की जनसंख्या लगभग नहीं के बराबर हो गई।

हिंदू एवं सिख 22 प्रतिशत थे जो घटकर मात्र 0.2 प्रतिशत रह गए। [भारद्वाज, खाज़ा और मिथां, 2007, दी पार्टिशन ऑफ ब्रिटिश इंडिया : इंपैक्ट ऑन जेंडर, लिटरेसी एंड ऑकुपेशन (साउथ एशिया इनीशिएटिव एट हार्वर्ड यूनीवर्सिटी)]

देशांतरण करने वालों के लिये दूरी एक प्रमुख कारक थी और भारत-पाकिस्तान (वर्तमान का बांगलादेश भी) के बीच जो भी प्रवजन हुआ वह इन देशों की सीमा रेखा के 50 किमी की दूरी के भीतर हुआ। बचे हुए प्रवासियों का वितरण समूचे भारत में हुआ था जैसे - दिल्ली (4.5 लाख लोग बाहर गए और 5 लाख अंदर आए) गुडगांव व हैदराबाद। इस प्रकार से भारत के अंदरूनी हिस्सों से प्रवासियों की थोड़ी-सी संख्या से मानव विकास के मार्ग में कोई परिवर्तन नहीं

हुआ। बाहर जाने वाले इन प्रवासियों में अधिकतर पाकिस्तान के कुछ खास स्थानों, जैसे - कराची पहुंचे। उदाहरण के तौर पर वर्तमान भारत से लगभग छह लाख लोग कराची गए जो तुलनात्मक रूप से बेहतर ढंग से शिक्षित थे। आज हम कराची के शिक्षा स्तर में बेहतर उन्नति पाते हैं। इसका कारण है कि वहां जाने वाले अधिकांश लोग शिक्षित थे। परंतु उनके प्रस्थान से भारतीय पक्ष के शैक्षणिक और व्यावसायिक स्तर में परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि प्रवास करने वालों की तुलना में यहां की जनसंख्या अधिक व फैली हुई थी।

ब्रिटिश हुकूमत के प्रभुत्व के बावजूद आज़ादी के पूर्व के भारत में शासन स्थानीय राजाओं एवं सामंतों के माध्यम से चलता था। इन राजाओं एवं सामंतों की जिम्मेवारी तथा आर्थिक सहयोग का भार ब्रिटिश राज के प्रति था और इसी माध्यम से अंग्रेज़ों ने भारत को एक सूत्र में बांधकर रखा था। आज की संघीय व्यवस्था इसके विपरीत है जिसमें राज्य सरकारें केंद्र से बजट अनुदान पाती हैं जो आज़ादी के पहले की स्थिति के ठीक विपरीत है। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत को एक सूत्र में रखने का एक महत्वपूर्ण कारक था अंग्रेज़ी राज का मज़बूत प्रशासनिक ढांचा, शृंखलाबद्ध निर्देश और भारतीय रेल का जाल, जो अत्यंत प्रभावी था।

मानव विकास के मानक

मानव विकास के साधन जैसे शिक्षा -

प्राथमिक व उच्च शिक्षा का प्रावधान अंग्रेजी शासन की प्राथमिकताओं की सूची में नीचे था और यह उनका राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं था। भारत दो शाताब्दी से भी अधिक समय तक ब्रिटिश राज के अधीन रहा और इस दौरान यहां की स्वदेशी प्रारंभिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण प्राथमिकता नहीं थी क्योंकि अंग्रेज अपने साम्राज्य विस्तार में लगे हुए थे। प्राचीन भारत में शिक्षा की एक समृद्ध व स्वस्थ परंपरा थी और विद्यालय प्रत्येक गांव व स्थानीय संप्रदाय में मौजूद थे। विद्यालय का शिक्षक स्थानीय व्यक्ति ही हुआ करता था जो अपने पढ़ने वाले बच्चों को जानता था। परंतु ब्रिटिश राज को कुछ खास लोगों की ही ज़रूरत थी जो भारत के लोगों और सरकार के बीच संवादवाहक का कार्य कर सके या बातचीत का माध्यम रहे। नौकरशाही भारतीय लोगों को पंगु बनाने का साधन था और अंग्रेज भारत की ज़मीन एवं संसाधनों का इस्तेमाल कर धन बटोरने में लगे रहे। अंग्रेज संख्या में कम थे और उन्हें नौकरशाही चलाने के लिये छद्म मातहतों की आवश्यकता थी। इसलिये बिल्कुल सीमित संख्या में एवं अधिकतर ऊँची जाति के लोगों को नौकरशाही में जगह मिली और ये नौकरशाह अपने मालिकों (अंग्रेजों) को लाभ पहुंचाने के प्रति समर्पित थे। केवल कुछ अभिजात्य वर्ग के लोगों को शिक्षित किया जाता था ताकि वे सरकारी तंत्र को चलाने में सहायक रहें तथा बाकी आम भारतीयों की शिक्षा के लिये कोई अर्थव्यवस्था या राजनीतिक व्यवस्था नहीं थी। अंग्रेजों को भारत के प्राकृतिक साधनों के दोहन तथा अपने राज्य को कायम रखने में इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। अतः उन्होंने शिक्षा के प्रसार को महत्व नहीं दिया। पर अंग्रेजों का जैसे-जैसे साम्राज्य बढ़ता गया उन्हें नौकरशाहों की संख्या बढ़ाने की ज़रूरत पड़ी। तब 1854 में ब्रिटिश राज ने प्रारंभिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के लिये एक शिक्षा पद्धति लागू करने की दिशा में पहल की। इसके साथ-साथ शिक्षकों को भी प्रशिक्षण देने की योजना बनी। साथ ही निचले दर्जे के सरकारी कर्मचारियों की भी शासन को

आवश्यकता थी ताकि वे कम से कम तनख्वाह में काम कर सकें (<http://www.ftokai.u.ac.jp/bulletin/2004/2004akai.html>)

हालांकि हम पाते हैं कि शिक्षा पद्धति को लागू करना पूर्णतः स्थानीय शासकों के व्यक्तिगत बुद्धिजीवी एवं उदार दृष्टिकोण पर निर्भर करता था और ऐसा वे उपलब्ध साधनों से ही कर सकते थे। ब्रिटिश शासन के दौरान भी कुछ महाराजा लोग भारतीय क्षेत्रों पर शासन करते थे, उदाहरणस्वरूप - त्रावणकोर, मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, ग्वालियर इत्यादि। राज्य द्वारा संचालित शिक्षण संस्थान राजा की शक्ति के केंद्र भी थे क्योंकि यहां आम आदमी की पहुंच थी। ब्रिटिश शासकों ने अधिकांशतः शहरों में शिक्षा के संस्थानों को बढ़ावा दिया, जैसे - कलकत्ता, मद्रास, मुंबई एवं दिल्ली इत्यादि। इसके पीछे कारण यह था कि ये शहर उनके प्रशासनिक केंद्र थे। शहरों में स्थापित छावनियों ने दलितों व मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित किया जो घरेलू नौकर एवं शहर की साफ़-सफाई तथा रखरखाव में रोज़गार पाते थे। इसके अलावा अनाज व मांस-मछली की आपूर्ति के कार्य ने मुसलमानों को शहर की ओर खींचा। दलित एवं मुसलमान प्रवासियों को शहरों में शिक्षा की सुविधा भी

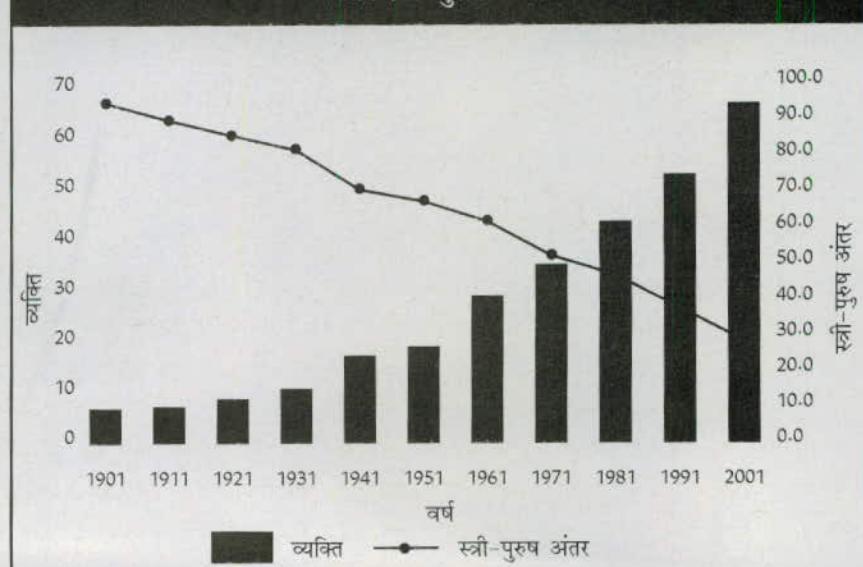
उपलब्ध थी। उच्च वर्ग के लोग शासक वर्ग से करीब से जुड़े हुए थे और शिक्षण सुविधाओं पर एक प्रकार से इनको अधिकार प्रदत्त था।

हमें मालूम है कि ब्राह्मणों ने हमेशा वर्ण व्यवस्था व जाति प्रथा को बढ़ावा दिया तथा आज़ादी के पूर्व के भारत में जो जाति व्यवस्था के बाहर थे उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया। दलित, आदिवासी और गैर हिंदू शिक्षा से वंचित थे पर जाति प्रथा के मापदंड के कारण इनकी शिक्षा पर बल नहीं दिया गया। गुलाम भारत में शिक्षा का अनुपात काफी नीचे था जो इस बात को सिद्ध करता है कि शिक्षा उच्च जाति के लोगों तक सीमित थी। मुसलमानों में भी जो अभिजात्य थे तथा शासकों के करीब थे उन्होंने सारे अवसरों का लाभ उठाया। इस दरम्यान केवल केरल एक ऐसा राज्य था जहां शिक्षा का अनुपात अन्य स्थानों से बेहतर था। इसके पीछे ईसाई मिशनरियों की शिक्षा पद्धति थी जो न केवल ईसाइयों के लिये खुली थी बल्कि हिंदुओं और मुसलमानों को भी वहां प्रवेशाधिकार था।

गुलाम भारत एवं आज़ाद भारत में मानव विकास

गुलाम भारत एवं आज़ाद भारत में तुलना हेतु अनुभववादी आंकड़े कम ही उपलब्ध हैं। केवल साक्षरता, शिशु मृत्युदर, स्त्री-पुरुष

चित्र-1 : वर्ष 1901 से लेकर 2001 के बीच भारत की जनगणना में साक्षरता और स्त्री-पुरुष अंतर



तालिका-1 : स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात स्त्री-पुरुष साक्षरता में वृद्धि

	पुरुष	महिला	व्यक्ति
प्रतिशत अंकों में 1901-51 के दौरान वृद्धि	17.4	8.3	13.0
वर्ष 1901-51 के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि का प्रतिशत	3.5	27.5	4.9
प्रतिशत अंकों में 1951-2001 के दौरान वृद्धि	48.7	45.3	47.1
प्रतिशत अंकों में वर्ष 1951-2001 के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि	3.6	10.2	5.1

अनुपात और शहरी अनुपात की विवेचना निम्नलिखित हैं :

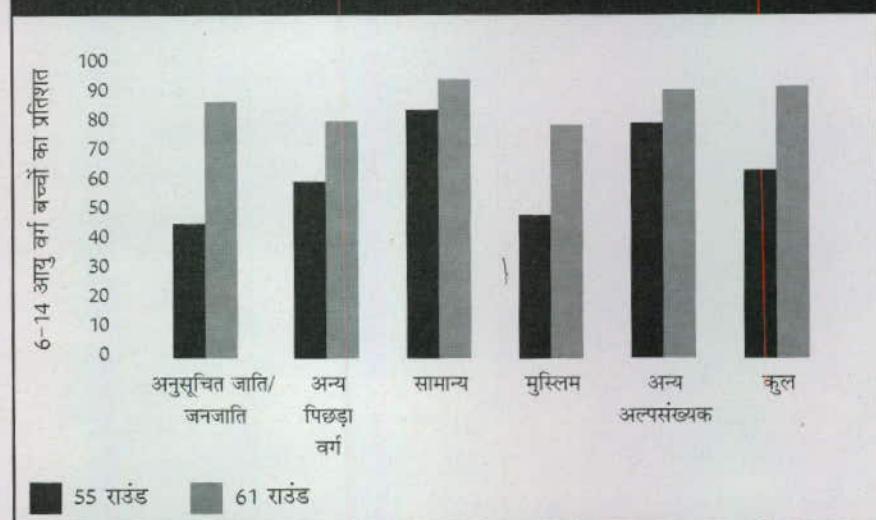
आजादी के पूर्व शिक्षा आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास

उनीसर्वी सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रवाद का उदय हो चुका था और भारतीय लोग शिक्षा पर अंग्रेज़ों के अधिपत्य के आलोचक होने लगे। वे लोग भारतीय भाषाओं और संस्कृति पर अधिक ध्यान देने की मांग करने लगे। उदाहरणस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व अन्य कई मुस्लिम संस्थाओं ने ब्रिटिश शिक्षा पद्धति के खिलाफ आवाज़ बुलंद की। बैरोन कर्जन जो एक वायसराय थे (1898), उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति में सुधार के कदम उठाए। बैरोन कर्जन इस तथ्य को सामने लाए कि भारत के पांच में से चार गांवों में स्कूल नहीं हैं। चार में से तीन लड़के बिना शिक्षा के पले-पढ़े और चालीस में केवल एक लड़की किसी प्रकार के विद्यालय में गई। वायसराय ने सरकारी कोष से कुछ खास प्रकार के विद्यालयों को चलाने की योजना बनाई ताकि निजी संस्था भी उसको आदर्श मानकर अनुकरण कर सकें। उन्होंने निजी स्कूलों पर सरकारी नियंत्रण की वकालत की जिसने शिक्षित भारतीयों के मन में कटुता की भावना पैदा की क्योंकि वे सरकारी नियंत्रण को नापसंद करते थे।

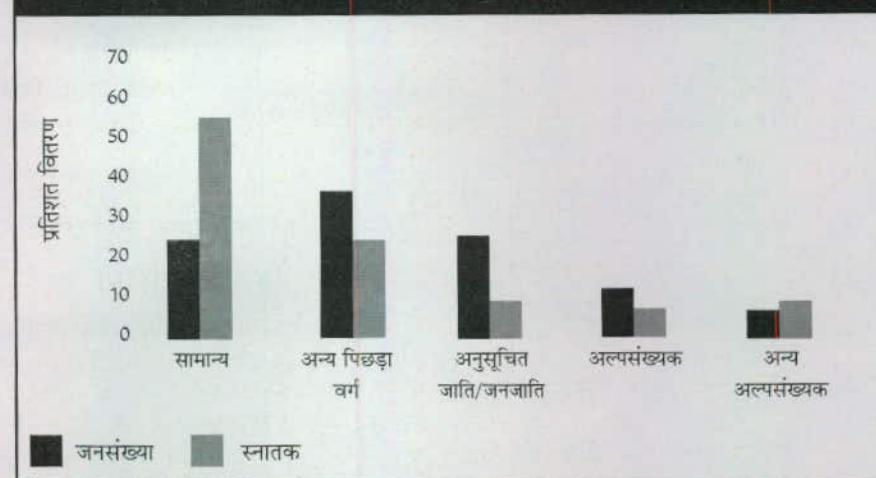
उच्च शिक्षा में बेहतर तालमेल के लिये 1902 में कर्जन के नेतृत्व में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन हुआ। सरकार के इस कदम को भारतीय प्रबुद्ध वर्ग ने अपने अधिकारों का उल्लंघन माना और इसे अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों को अपने अधीन करने का प्रयास माना। लेकिन आपसी

'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' को जन्म दिया। प्रथम व्यवस्थित राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन स्वदेशी आंदोलन का अंग बना और इसने स्वतंत्रता एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। इस आंदोलन को प्रबल समर्थन मिला, क्योंकि कलकत्ता कांग्रेस (1906) ने तय किया कि एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना हेतु यही सही समय है। यद्यपि कलकत्ता में शिक्षा आंदोलन सफल नहीं हुआ पर अन्य स्थानों पर इसका प्रभाव दिखाई पड़ा। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1901 में पश्चिम बंगाल में बोलपुर के निकट अपने प्रसिद्ध विद्यालय की नींव रखी। आर्य प्रतिनिधि

चित्र-2 : मौजूदा प्रवेश दर 1999-00 और 2004-05



चित्र-3 : एसआरसी द्वारा 20 वर्षों से अधिक आयु वर्ग में स्नातक : 2004-05



स्नातक के स्तर पर उपर्युक्त वर्णित समुदायों का प्रतिनिधित्व अत्यंत कम है।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से प्रकाशित कुछ नवीनतम पुस्तकें

ऑलराउंडर्स

सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी

पृ. 220 रु. 85.00

क्रिकेट में विश्व के 16 ऑलराउंडरों के व्यक्तित्व और योगदान का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती इस पुस्तक में ऑलराउंडरों के संघर्षों का भी विशद वर्णन है।

हरियाणा की दुविधा : समस्याएं और संभावनाएं

डी. आर. चौधरी

पृ. 136 रु. 50.00

राजधानी से सटा हुआ राज्य हरियाणा विरोधाभासों और अंतर्विरोधों की भूमि है। यह पुस्तक इस राज्य की दुविधाओं और अनिश्चितताओं का लेखा-जोखा तक के साथ प्रस्तुत करती है।

हरिशंकर परसाई : संकलित रचनाएं

श्याम कश्यप (संपा.)

पृ. 222 रु. 95.00

हिंदी व्यंग को नवजीवन और नव दृष्टि देनेवाले प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की श्रेष्ठ रचनाओं का श्रेष्ठ संचयन।

स्वीधन

मायानंद मिश्र

पृ. 352 रु. 135.00

ईसा पूर्व 9वीं सदी में भिथिला में जनक वंश के राजतंत्र के पतन की गाथा प्रस्तुत करती इस पुस्तक में उस काल की आर्थिक-सामाजिक स्थितियों और सांस्कृतिक विकास का सूक्ष्म विश्लेषण भी है।

आनंद पंडी निहारन का (संशोधित)

विश्वमोहन तिवारी

पृ. 214 रु. 110.00

आज की तेज भागती दुनिया में भी प्रकृति के साथ अपने नैसर्गिक लगाव की वजह से मनुष्य पंछियों को निहारकर आनंद प्राप्त करता है।

रानी चेन्नम्मा

वैडियार सदाशिव

अनु. : श्यामसिंह 'शशि'

पृ. 116 रु. 45.00

अंग्रेजों के खिलाफ रानी चेन्नम्मा द्वारा लड़ी गई साहसिक लड़ाई की ओजस्वी गाथा।

गदर पार्टी नायक : कर्तार सिंह सराभा

चमल लाल

पृ. 94 रु. 230.00 (सजिल्ड)

रु. 30.00 (अजिल्ड)

शहीदेआजम जिन्हें अपना आदर्श मानते थे गदर पार्टी के वैसे लोक नायक कर्तार सिंह सराभा की जीवनगाथा के साथ गदर पार्टी के कार्यकलापों का अन्वेषी आकलन भी प्रस्तुत करती है यह पुस्तक।

जलने से बचाव

कल्पना सूद लाल; अनु. : पंकज चतुर्वेदी पृ. 76 रु. 50.00
शरीर की त्वचा-संरचना के साथ ही जलने पर त्वचा में होने वाले बदलावों पर सवित्र चर्चा के साथ पुस्तक बताती है कि अपने दैनिक जीवन में कुछ मामूली सावधानियों से हम जलने जैसी घटनाओं को रोक सकते हैं।

मैं नास्तिक क्यों हूँ

भगत सिंह; भूमिका : प्रो. विपिन चंद्रा

अनु. : पंकज चतुर्वेदी

पृ. 32 रु. 25.00

देशभक्त और क्रांतिकारी होने के साथ प्रचंड बुद्धिमत्ता के स्वामी शहीद भगत सिंह के दो आलेखों की प्रस्तुति वाली इस पुस्तक को पढ़ने से उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, गहन अध्ययन और जटिल विषयों पर उनकी समझ का पता चलता है।

लोक व्यवस्था अनुरक्षण हेतु स्रोत पुस्तक

समर सिंह; अनु. : तालेवर गिरि

पृ. 150 रु. 60.00

सांप्रदायिक दंगों के दौरान कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक विधियों के संकलन के साथ पुस्तक सांप्रदायिक सौहार्द बढ़ाने के व्यावहारिक उपायों की जानकारी भी देती है।

हिंदी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद

सावित्री चंद्र 'शोभा'

पृ. 144 रु. 45.00

प्रस्तुत पुस्तक में दाढ़ी, कबीर, नामदेव, सूर, तुलसी, जायसी जैसे रचनाकारों द्वारा रचित रचनाओं के दृष्टांत के साथ सभी धर्मों के मध्य आपसी सद्भाव, समन्वय और भाईचारे की वकालत की गई है।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 • दूरभाष : 26564020, 26564540, 26568052

ई-मेल : nbtindia@ndb.vsnl.net.in वेबसाइट : <http://www.nbtindia.org.in>

मुंबई : दूरभाष व फैक्स : 91-22-23720442 • ई-मेल : nbtindiamumbai@yahoo.com

बंगलोर : दूरभाष व फैक्स : 91-80-26711994 • ई-मेल : nbtindiasro@vsnl.net

कोलकाता : दूरभाष व फैक्स : 91-33-22413899 • ई-मेल : nbter@dataone.in



नेशनल बुक ट्रस्ट किताब कल्प के सदस्य बनें और नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रकाशनों पर 20 प्रतिशत की छूट पाएं

YH/8/7/8

योजना, अगस्त 2007

तालिका-2 : साक्षरता दर, स्त्री-पुरुष और ग्रामीण-शहरी अंतर, 2001

राज्य	प्रतिशत साक्षरता दर, 2001			प्रतिशत साक्षरता दर, 1991	वर्ष 1991-01 के दौरान साक्षरता दर में बदलाव (प्रतिशत में)
	व्यक्ति	स्त्री-पुरुष के बीच प्रतिशत अंतर	ग्रामीण और शहरी के बीच प्रतिशत अंतर		
भारत	65.4	28.5	26.5	51.6	13.0
आंध्र प्रदेश	61.1	27.8	28.4	44.1	17.0
असम	64.3	22.1	30.0	52.9	11.5
बिहार	47.5	44.3	38.9	37.5	10.0
छत्तीसगढ़	65.2	32.7	24.9	42.9	22.3
दिल्ली	81.8	14.2	4.7	75.3	6.5
गुजरात	70.0	27.2	25.1	61.3	8.7
हरियाणा	68.6	28.9	20.2	55.9	12.7
हिमाचल प्रदेश	77.1	20.9	15.6	63.9	13.3
जम्मू-कश्मीर	54.5	36.4	30.8		
झारखण्ड	54.1	42.0	42.2	41.4	12.7
कर्नाटक	67.0	24.7	26.4	56.0	11.0
केरल	90.9	6.7	3.4	89.8	1.1
मध्य प्रदेश	64.1	34.5	27.2	44.7	19.4
महाराष्ट्र	77.3	21.7	17.7	64.9	12.4
उड़ीसा	63.6	32.9	26.0	49.1	14.5
पंजाब	70.0	16.0	18.2	58.5	11.5
राजस्थान	61.0	42.0	27.4	38.6	22.5
तमिलनाडु	73.5	21.6	19.8	62.7	10.8
उत्तर प्रदेश	57.4	38.8	24.7	40.7	16.7
उत्तरांचल	72.3	28.3	16.4	57.8	14.5
पश्चिम बंगाल	69.2	22.4	21.9	57.7	11.5
सीबी	14.9			24.1	

स्रोत : भारत की वर्ष 2001 की जनगणना से प्राप्त तथ्य

सभा ने वृद्धावन व हरिद्वार में गुरुकुलों की स्थापना की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने इलाहाबाद एवं नागपुर के अपने अधिवेशनों में अनिवार्य तथा मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के पक्ष में प्रस्ताव पास किया।

यद्यपि कर्जन के प्रयासों से शिक्षा के क्षेत्र में एक संतुलन कायम हुआ, विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन हुआ और उन्हें पुनः व्यवस्थित किया गया। सरकार ने 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थितियों एवं संभावनाओं का जायज़ा लेने के लिये सैडलर कमीशन का

गठन किया, किंतु इस जांच आयोग से राष्ट्रव्यापी संभावना जगी। कुछ शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हुई जिनमें दो विश्वविद्यालय थे। 1918 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा 1920 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। हालांकि ऐसा लगता है कि इन दोनों विश्वविद्यालयों की स्थापना इस बात को ध्यान में रख कर की गई थी कि इससे प्रभावशाली हिंदू और मुसलमान तबका खुश होगा।

प्रथम महायुद्ध के बाद

1921 में एक नया भारतीय संविधान अस्तित्व में आया जिसने शिक्षा को भारतीयों के नियंत्रण में स्थानांतरित किया और उससे संबंधित अधिकारों को अधिकांशतः प्रांतों को सौंप दिया। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नये संविधान को पर्याप्त नहीं माना और इसके विरोध में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन की शुरुआत की और अंग्रेज़ी संस्थाओं और सामान का बहिष्कार किया। पूरे देश में राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना हुई और कुछ चुनिंदा केंद्रों में विद्यापीठ (राष्ट्रीय विश्वविद्यालय) भी खोले गए। स्वराज के लिये कांग्रेस का संघर्ष भी उग्र हो चुका था और इसके साथ-साथ शिक्षा के लिये राष्ट्रीय आंदोलन का भी प्रसार हुआ जिससे राष्ट्र की ज़रूरतें पूरी की जा सके। भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने प्रांतों की स्थिति को मज़बूत किया और प्रांतीय स्तर पर कांग्रेस मज़बूत स्थिति में थी। प्रांतीय सरकारों के विकास कार्यक्रमों में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार, प्रौढ़ शिक्षा की शुरुआत, व्यावसायिक शिक्षा पर बल, लड़कियों तथा ग्रीबों की शिक्षा शामिल थी। अंग्रेज़ी भाषा के महत्व को कम किया गया और भारतीय भाषाओं को अध्यन के विषय के तौर पर एवं निर्देश के माध्यम के तौर पर भी अधिक महत्व मिलने लगा। इसी दरम्यान गांधीजी की 'बुनियादी शिक्षा' की अवधारणा को लागू किया गया जिसका उद्देश्य था कि शिक्षा महज किताबी ज्ञान न होकर एक ऐसी कला हो जिसमें व्यक्ति उत्पादक बन सके। लोगों में राजनीतिक चेतना के जागरण के बाद उनको

माध्यमिक शिक्षा की आवश्यकता महसूस हुई। देहात, कस्बों और कम विकसित समुदायों के बीच स्कूल की स्थापना हुई और लड़कियों के लिये भी विद्यालय स्थापित हुए। व्यावसायिक पढ़ाई एवं वैकल्पिक पढ़ाई के लिये कुछ नियम बनाए गए जिसके माध्यम से प्रांतीय सरकारों ने तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा शुरू की। साथ-साथ कृषि उच्च विद्यालय भी खुले और निजी संस्थाओं को प्रांतीय सरकार की ओर से अनुदान मिलने लगा जिसमें अनौपचारिक शिक्षा भी शामिल थी। परंतु धनाभाव व दक्ष शिक्षकों के अभाव में इसके अपेक्षित परिणाम नहीं निकले। इस समयावधि में लड़कियों के शिक्षा के प्रति जो पूर्वाग्रह था वह कम हुआ, जो उल्लेखनीय है। गांधीजी के राष्ट्रीय आंदोलन ने हजारों नारियों को राष्ट्रहित में घर से बाहर निकलने को प्रेरित किया। यह भी महसूस किया गया कि लड़कियों की शिक्षा का तात्पर्य है मां की शिक्षा और उसके माध्यम से शिशु की शिक्षा।

सन् 1921-22 और 1946-47 के दौरान लड़कियों के शिक्षण संस्थान दुगने हो गए।

शैक्षणिक बदलाव

प्रयोगसिद्ध (अनुभववादी) सबूत सन् 1901 से स्त्री-पुरुष साक्षरता में भेद (अंतर) साक्षरता पर, भारतीय जनगणना ही केवल आंकड़े प्रस्तुत करती है। यद्यपि जनगणना 1881 से ही की

तालिका-3 : प्रमुख राज्यों के लिये मानव विकास के चुनिंदा संकेतक

राज्य	जन्म के समय जीवन की संभावना (1999-2003)			शिशु मृत्युदर (प्रति हजार जन्म) (2005)		
	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल
आंध्र प्रदेश	62.2	64.8	63.7	56.0	58.0	57.0
असम	57.8	58.3	58.0	66.0	69.0	68.0
बिहार	61.6	59.7	61.0	60.0	62.0	61.0
गुजरात	62.5	64.6	63.5	52.0	55.0	54.0
हरियाणा	65.0	65.6	65.4	51.0	70.0	60.0
कर्नाटक	62.9	66.4	64.6	48.0	51.0	50.0
केरल	70.9	76.0	73.6	14.0	15.0	14.0
मध्य प्रदेश	57.2	56.9	57.1	72.0	79.0	76.0
महाराष्ट्र	65.2	67.6	66.4	34.0	37.0	36.0
उड़ीसा	58.6	58.7	58.7	74.0	77.0	75.0
पंजाब	67.6	69.6	68.6	41.0	48.0	44.0
राजस्थान	60.7	61.8	61.3	64.0	72.0	68.0
तमिलनाडु	64.3	66.5	65.4	35.0	39.0	37.0
उत्तर प्रदेश	59.6	58.7	59.3	71.0	75.0	73.0
पश्चिम बंगाल	63.5	65.0	64.1	38.0	39.0	38.0
भारत	61.8	63.5	32.7	56.0	61.0	58.0

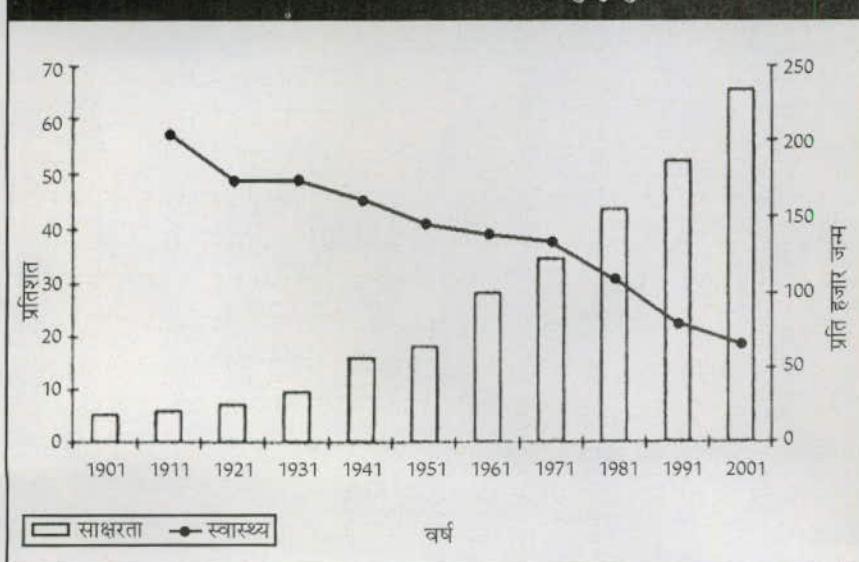
स्रोत : भारत का महापंजीयक कार्यालय, गृह मंत्रालय

जा रही है पर साक्षरता पर आंकड़ों की श्रृंखला 1901 की जनगणना से उपलब्ध है (चित्र 1)।

हम देख सकते हैं कि 100 में केवल पांच लोग 1901 में साक्षर थे जिनकी संख्या 1931 में बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई और 1951 में 18 प्रतिशत हो गई। साक्षरता को 18 प्रतिशत से बढ़कर 65.4 प्रतिशत होने में और 50 वर्ष का समय लगा जो 2001 में जाकर पूरा हुआ। पूर्व में स्त्री-पुरुष साक्षरता के बीच एक बड़ा अंतर था, अतः निश्चित तौर पर स्त्री साक्षरता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। स्त्री साक्षरता 1951 में केवल 8.9 प्रतिशत थी जो बढ़कर 2001 में 54.3 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार हम पाते हैं कि स्त्रियों की साक्षरता छह गुना बढ़ी जबकि पुरुष इसी अवधि में केवल साढ़े तीन गुना ही बढ़ सके। इस शानदार दर से बढ़ोतारी के बाद भी स्त्री साक्षरता (तालिका-1) 2001 में बीस प्रतिशत नुकसान में थी (पुरुषों की तुलना में)।

आजादी के बाद सार्वजनिक प्रयास से

चित्र-4 : वर्ष 1901 से लेकर 2001 तक शिशु मृत्युदर में गिरावट



तालिका-4 : समयानुसार शिशु मृत्युदर : विश्व के विकसित और कम विकसित देशों के साथ भारत की तुलना

वर्ष	विश्व	विकसित देश	कम विकसित देश	भारत
1960-65	118	33	135	-
1965-70	102	26	115	-
1970-75	93	21	104	134
1975-80	87	18	98	124
1980-85	78	1	87	104
1985-90	69	13	76	91
1990-95	62	11	68	76
1995-00	-	-	-	71
2000-04	-	-	-	63

स्रोत : विश्व जनसंख्या परिदृश्य, 1996, समीक्षा 1998 यूएन, पृष्ठ-7

भारत के लिये : नमूना पंजीकरण प्रणाली, आरजीआई ऑफ इंडिया,
नोट : पांच वर्ष का औसत

साक्षरता की दर को 65 प्रतिशत तक बढ़ाने में 50 वर्ष लगे। गौरतलब बात यह है कि 35 प्रतिशत आबादी अब भी निरक्षर है। जब हम निरक्षरता को स्त्री-पुरुष के अनुपात में देखते हैं तो पता चलता है कि निरक्षरों में महिलाओं की संख्या अधिक है। सन् 1971 के करीब लगभग 19.4 करोड़ महिलाएं निरक्षर थीं जबकि पुरुषों की संख्या 11.1 करोड़ थी।

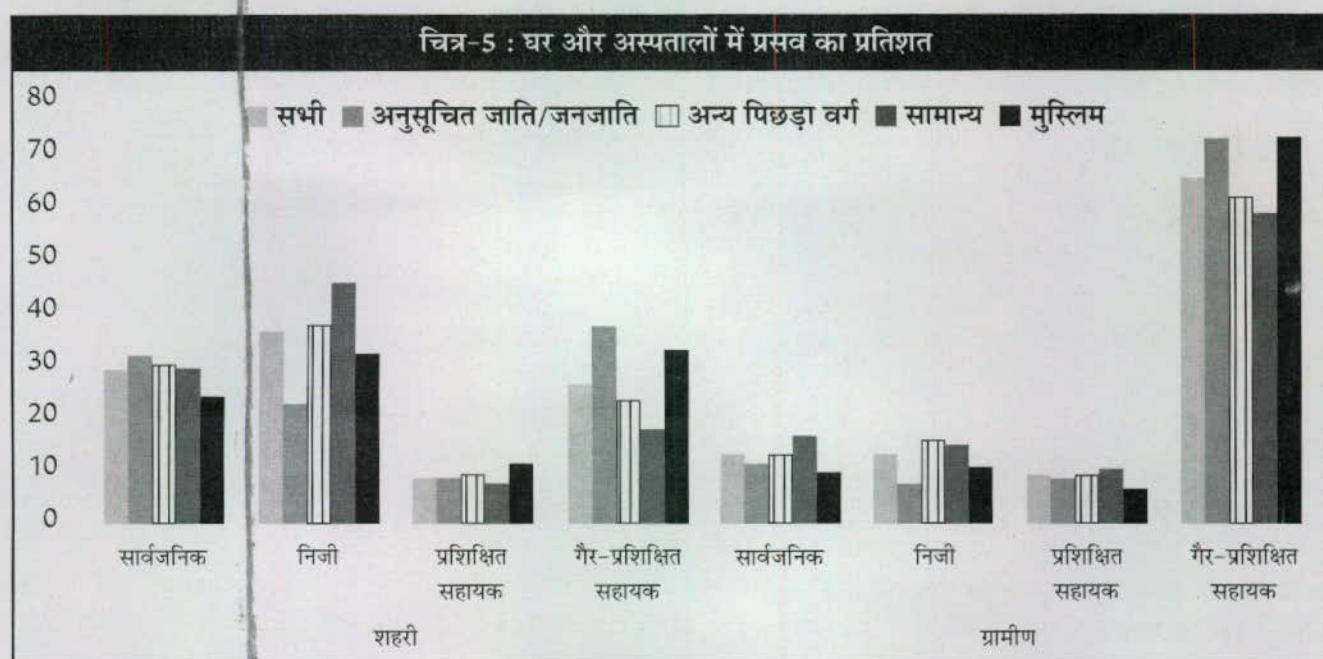
अतः महिलाएं निश्चित तौर पर बड़ी संख्या में निरक्षर थीं। यह भारत का दुर्भाग्य ही है कि आज भी विश्व में निरक्षरों की सबसे बड़ी संख्या हमारे यहां मौजूद है। इस प्रकार से आज जो एक हौवा खड़ा किया जा रहा है कि भारत विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे कामगारों की आपूर्ति करने वाला देश है, एक भ्रम की स्थिति को पैदा करता है। और यह

भ्रम या खुशफ़हमी सरकार को भी शिथिल करने का कार्य कर सकती है। हमें भारत में शैक्षणिक परिवर्तन को सही ढंग से समझना होगा और इसका सही विश्लेषण करना होगा। अगर ऐसा नहीं होता है तो हम अगले और कई दशकों तक विश्व के सबसे निरक्षर देश की गिनती में ही बने रहेंगे।

इसके अलावा राज्यों और विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक असमानता सनसनीखोज़ है। (तालिका-2) एक ओर केरल में 91 प्रतिशत साक्षरता और नाममात्र का स्त्री-पुरुष भेद है जो एक अपवाद है। जबकि दूसरा सबसे अधिक साक्षर राज्य 77 प्रतिशत साक्षर है जो केरल की तुलना में काफी कम है। सबसे कम साक्षर राज्य बिहार है जहां की केवल 48 प्रतिशत नागरिक साक्षर हैं।

केरल को छोड़ भी दिया जाए तो सबसे अधिक साक्षर एवं सबसे कम साक्षर राज्य में 29 अंकों का अंतर है। यह कहना भी उचित नहीं होगा कि जो राज्य आय के हिसाब से बेहतर हैं उनकी साक्षरता अधिक है। क्योंकि केरल एक मध्यम आय वाला राज्य है। हिमाचल प्रदेश एवं उत्तरांचल की संपन्नता कमतर है लेकिन उनकी साक्षरता दर राष्ट्रीय दर से कहीं अधिक है। यह इस बात को दर्शाता है कि साक्षरता पर सामाजिक कारकों

चित्र-5 : घर और अस्पतालों में प्रसव का प्रतिशत



का आर्थिक कारकों से अधिक प्रभाव है।

दूसरा दुखद पहलू स्त्री-पुरुष साक्षरता दर में अंतर है। अखिल भारतीय स्तर पर यह अंतर 29 अंक का है जबकि बिहार, झारखण्ड एवं राजस्थान में यह असमानता 40 प्रतिशत से भी ऊपर है। तीसरा दुखदायी पहलू ग्रामीण-शहरी साक्षरता में असमानता है जो 27 प्रतिशत शहरी पक्ष में अधिक है। पर कुल मिलाकर राज्यों में असमानता प्रतिवर्ष कम होती जा रही है जिसका रुझान तालिका-2 दर्शाया गया है।

विभिन्न सामाजिक-धार्मिक गुटों में शैक्षणिक अंतर भी कम दुखदायी कारक नहीं है (चित्र 2 और 3)। आंकड़े दर्शाते हैं कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा मुसलमानों की साक्षरता में भागीदारी अत्यंत निम्न स्तर पर है। शैक्षणिक असमानता की दर शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ और तीव्र होती जा रही है (या दिखती है)।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में बदलाव - शिशु मृत्युदर

वर्तमान समय में भारत अपने नागरिकों के स्वास्थ्य की स्थिति में गंभीर असमानता की समस्या से जूँझ रहा है। किसी भी राष्ट्र या उपक्षेत्र के स्वास्थ्य की स्थिति के आकलन के लिये उस स्थान की शिशु मृत्युदर के स्तर को जानना एक कारगर कदम है। ऐसा किसी खास वर्ष में पैदा हुए प्रति 1,000 बच्चों का अध्ययन करके प्राप्त किया जा सकता है। 20वीं सदी के पूर्वाध में शिशु मृत्युदर काफी ऊँचा था। उदाहरण के तौर पर 1911 में यह दर 200 से भी कहीं ऊँचा था। इसका तात्पर्य यह है कि सन् 1911 में एक हजार बच्चों में 200 से भी अधिक बच्चे बिना एक वर्ष जिए मर जाते थे। जबकि शिशु मृत्युदर 1920 ई. से लगातार घटती जा रही है किंतु इसमें तेज़ी से गिरावट 1971 के बाद से आई है। फिर भी अखिल भारतीय स्तर पर शिशु मृत्युदर 60 से अधिक है जो अब भी विश्व में सर्वाधिक है। दरअसल आज़ादी से पूर्व भारत में शिशु मृत्युदर का ऊँचा होना एक स्थायी पहलू था और इसका निर्धारण कई दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक कारकों से होता था।

तालिका-5 : भारतीय राज्यों में स्त्री-पुरुष अनुपात

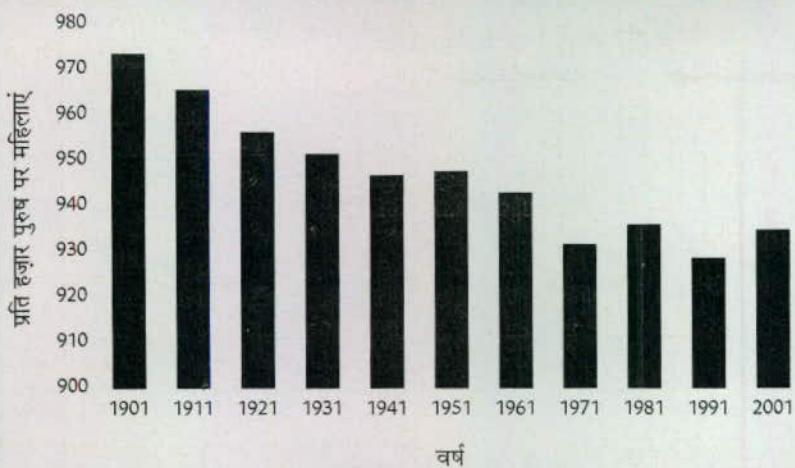
भारत/राज्य	स्त्री-पुरुष अनुपात					
	1901	1931	1951	1971	1991	2001
भारत ¹	972	950	946	930	927	933
आंध्र प्रदेश	985	987	986	977	972	978
असम	919	874	868	896	923	932
बिहार	1,061	995	1,000	957	907	921
छत्तीसगढ़	1,046	1,043	1,024	998	987	990
दिल्ली	862	722	768	801	827	821
गोवा	1,091	1,088	1,128	981	967	960
गुजरात	954	945	952	934	934	921
हरियाणा	867	844	871	867	865	861
हिमाचल प्रदेश ³	884	897	912	958	976	970
जम्मू-कश्मीर ²	882	865	873	878	896	900
झारखण्ड	1,032	989	961	945	922	941
कर्नाटक	983	965	966	957	960	964
केरल	1,004	1,022	1,028	1,016	1,036	1,058
मध्य प्रदेश	972	947	945	920	912	920
महाराष्ट्र	978	947	941	930	934	922
उड़ीसा	1,037	1,067	1,022	988	971	972
पंजाब	832	815	844	865	882	824
राजस्थान	905	907	921	911	910	922
तमिलनाडु	1,044	1,027	1,007	978	974	986
उत्तर प्रदेश	938	903	908	876	876	898
उत्तरांचल	918	913	910	940	936	964
पश्चिम बंगाल	945	890	865	891	911	934

- वर्ष 1981 के लिये भारत और असम हेतु स्त्री-पुरुष अनुपात की गणना में असम के लिये अनुमानित आंकड़े का इस्तेमाल किया गया है।
- वर्ष 1991 के लिये भारत और जम्मू-कश्मीर हेतु स्त्री-पुरुष अनुपात की गणना में जम्मू-कश्मीर के लिये अनुमानित आंकड़े का इस्तेमाल किया गया है।
- वर्ष 2001 के लिये भारत, गुजरात और हिमाचल प्रदेश हेतु स्त्री-पुरुष अनुपात की गणना में गुजरात और हिमाचल प्रदेश के प्रभावित क्षेत्रों में अनुमानित आंकड़े का इस्तेमाल किया गया है।

भारत विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों एवं ऋतुओं का देश है, बीमारियों एवं उच्च शिशु मृत्युदर की यह भी वजह है। यहां की लंबे समय की गर्मी और खेती के लिये मानसून पर भारी निर्भरता कुछ ऐसे प्राकृतिक कारक भी हैं। यहां बारिश का वितरण भी असमान

है, जो फसल चक्र को नुकसान पहुंचाता है। इसी वजह से भारत के कई हिस्सों में रेगिस्तान होने जैसी नौबत आ सकती है क्योंकि इस प्रक्रिया में सुरक्षित जलाशयों के सूख जाने का खतरा रहता है। इस प्रकार से 19वीं शताब्दी तक भारत में फसल नुकसान, जल की कमी

चित्र-6 : 1901 से लेकर 2001 तक स्त्री-पुरुष अनुपात



और अकाल जैसी स्थिति अक्सर उपस्थित रहती थी और ऐसी इसकी भौगोलिक स्थितियों के कारण भी है। दूसरा सबसे आम कारण यहां की स्त्रियों का ख़राब स्वास्थ्य है, जो बाल विवाह, समय से पूर्व गर्भाधान एवं शिशु प्रसव के बहुत उपस्थित गंदा वातावरण है।

यद्यपि 1931 के बाद शिशु मृत्युदर में हम एक तीव्र गिरावट पाते हैं। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में हुई चिकित्सकीय खोजों ने मलेरिया के ख़तरे को कम किया। साथ-साथ माता और शिशु को टीके लगाना, सफाई की उचित व्यवस्था और एंटीबायोटिक्स के प्रयोग ने शिशु मृत्युदर पर काफी हद तक रोक लगाई।

इसके अलावा विश्व स्तर पर पोषण के बढ़े हुए स्तर ने रोगों से लड़ने की क्षमता पैदा की। 1920 के बाद से अकाल से निपटने के लिये सरकारी तंत्र अच्छी तरह से विकसित हो चुका था। रेलवे के त्वरित विस्तार से अनाज की कमी वाले इलाकों में आपूर्ति करने में सरलता आ गई। इन सब के साथ-साथ कुछ क्षेत्रों में सिंचाई के समुचित प्रबंध से अनाज आपूर्ति में एक स्थिरता आई। परंतु स्त्री साक्षरता दर में बढ़ोतारी ने शिशु मृत्युदर कम करने में सबसे ज्यादा मदद की।

यहां यह भी गौरतलब है कि शिशु मृत्युदर विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है। उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश जैसे विशाल राज्यों में शिशु मृत्युदर अभी भी प्रति एक हजार में

75 है जो विश्व के औसत से काफी ज्यादा है (तालिका-3 एवं 4)।

प्रसव का स्थान और स्वास्थ्य सेवा - 1999-2000

जन्म से पहले मृत्यु, शिशु मृत्यु और बाल मृत्युदर में कमी लाना सरकार के उद्देश्यों में शामिल है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वास्थ्य सुविधाओं को विकेंद्रित करते हुए

सरकार ने स्वास्थ्यकर्मियों (जैसे - एनएम) को स्थानीय स्तर पर तैनात किया है। इन सुविधाओं और स्वास्थ्यकर्मियों के बल पर यह आशा की जाती है कि जन्म पूर्व स्वास्थ्य सेवा और बच्चों के जन्म से संबंधित व्यवहारों सहित मातृ और बाल स्वास्थ्य में सुधार हो। इन बड़े कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना एक कठिन कार्य है। हालांकि इसके अंशिक मूल्यांकन का प्रयास किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, बच्चे के जन्म के स्थान पर उपलब्ध जानकारी के विश्लेषण के माध्यम से सुरक्षित शिशु जन्म से संबंधित व्यवहारों का मूल्यांकन किया जा सकता है। दूसरी ओर प्रसव के समय तकनीकी तौर पर प्रशिक्षित कार्मिक की उपस्थिति अथवा इस अवसर पर उनकी सहायता के बारे में जानकारी प्राप्त करने से इन सेवाओं की पहुंच के बारे में अतिरिक्त तथ्य उपलब्ध होंगे। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिये इन विषयों पर एनएफएचएस-2 आंकड़े को संक्षिप्त किया गया है।

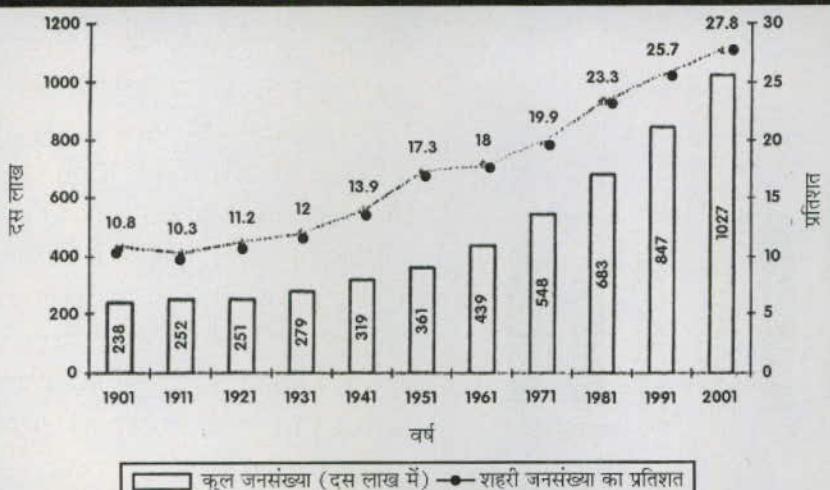
कोई भी व्यक्ति यह उम्मीद करता है कि

तालिका-6 : शहरीकरण के संकेतक, 1901-2001

जनगणना वर्ष	शहरों/नगरों की संख्या	शहरी जनसंख्या (दस लाख में)	शहरी जनसंख्या का प्रतिशत	शहरी जनसंख्या की प्रति वर्ष वृद्धि दर
1901	1827	26	10.8	-
1911	1815	26	10.3	0.03
1921	1949	28	11.2	0.80
1931	2072	33	12.0	1.77
1941	2250	44	13.9	2.81
1951	2843	62	17.3	3.53
1961	2365	79	18.0	2.37
1971	2590	109	19.9	3.29
1981	3387	159	23.3	3.87
1991	3696	216	25.7	3.08
2001	5161	286	27.8	2.85

स्रोत : भारत का महापंजीयक कार्यालय

चित्र-7 : कुल जनसंख्या और शहरी जनसंख्या का प्रतिशत, 1901-2001



तालिका-8 : वर्ष 2001 में भारत की राज्यवार शहरी जनसंख्या

राज्य	शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
जम्मू-कश्मीर	24.9
हिमाचल प्रदेश	9.8
पंजाब	34.0
उत्तरांचल	25.6
हरियाणा	29.0
दिल्ली	93.0
राजस्थान	23.4
उत्तर प्रदेश	20.8
बिहार	10.5
असम	12.7
पश्चिम बंगाल	28.0
झारखण्ड	22.3
उड़ीसा	15.0
छत्तीसगढ़	20.1
मध्य प्रदेश	26.7
गुजरात	37.4
महाराष्ट्र	42.4
आंध्र प्रदेश	27.1
कर्नाटक	34.0
केरल	26.0
तमिलनाडु	43.9
भारत	27.8

स्रोत : भारत का महापंजीयक कार्यालय

लेकिन ऐसा लगता है कि यह कार्यक्रम प्रभावहीन साबित हुआ है। क्योंकि कुल प्रसवों में से 10 प्रतिशत से भी कम प्रसव के दौरान प्रशिक्षितकर्मियों की उपस्थिति की रिपोर्ट है। शहरी क्षेत्रों में मुसलमान औरतों के प्रसव की स्थिति भी खराब है। वास्तव में अनुसूचित जातियों/जनजातियों की तुलना में मुसलमानों के लिये प्रसव के समय निम्न अनुपात में

लोग डिस्पेंसरियों और अस्पतालों में बच्चों के जन्म को प्राथमिकता दें, जहां प्रशिक्षित मेडिकल और नर्सिंग स्टाफ की सेवाएं उपलब्ध हों। हालांकि बहुत से लोग दूरी अथवा ख़र्च के कारण संस्थागत सुविधाओं का लाभ नहीं ले सकते। आंकड़ों के अनुसार, प्रसव के स्थान को लेकर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच काफी अंतर है। उदाहरण के लिये शहरी क्षेत्रों में ज्यादातर प्रसव संस्थागत होते हैं और वह भी निजी संस्थाओं में और ग्रामीण क्षेत्रों में

लाक्षणिक तौर पर प्रसव घर में और प्रशिक्षित कर्मियों की सहायता के बिना होता है (चित्र-5)। ग्रामीण क्षेत्रों में कुल प्रसवों में से लगभग तीन-चौथाई प्रसव घर में होते हैं और इनमें से 80 प्रतिशत से अधिक प्रसव के समय कोई प्रशिक्षितकर्मी उपस्थित नहीं रहता। विस्तार कार्यक्रम पिछले लगभग पांच दशकों से जारी है। इस कार्यक्रम से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसव के दौरान प्रशिक्षितकर्मियों की उपस्थिति में सुधार होने की उम्मीद की जा रही थी,

तालिका-7 : शहरों/नगरों की श्रेणी के अनुसार वर्ष 1991-01 में भारत की शहरी जनसंख्या

नगरों/शहरों की श्रेणी	नगरों/शहरों की संख्या		जनसंख्या (दस लाख में)		कुल जनसंख्या का प्रतिशत		शहरी जनसंख्या की प्रति वर्ष वृद्धि दर 1991-01
	1991	2001	1991	2001	1991	2001	
100000 और अधिक	300	441	122.3	178	56.7	62.3	3.84
50000 - 99999	345	496	28.8	34	13.3	12.0	1.81
20000 - 49999	947	1,388	35.3	42	16.4	14.7	1.78
10000 - 19999	1,167	1,561	21.1	23	9.8	7.9	0.69
5000 - 9999	740	1,041	7.4	8	3.4	2.8	0.64
5000 से कम	197	234	0.9	1	0.5	0.3	- 0.66
सभी श्रेणी	3,696	5,161	215.8	286	100	100	2.86

स्रोत : भारत का महापंजीयक कार्यालय

प्रशिक्षित कर्मियों की सहायता ली जाती है। अस्पतालों में प्रसव के निम्न स्तर के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में भी अन्य पिछड़ा वर्गों और उच्च सामान्य श्रेणियों के बीच इसका स्तर तुलनात्मक दृष्टि से ऊंचा है।

बिगड़ते स्त्री-पुरुष अनुपात और लिंग भेद

वर्ष 2001 में भारत की जनगणना के अनुसार देश में स्त्री-पुरुष का कुल अनुपात 933 पर था। वर्ष 1991 की जनगणना की तुलना में यह एक स्वागतयोग्य सुधार था वर्तमान तक उस समय देश में प्रति 1,000 पुरुषों पर मात्र 927 महिलाएं पाई गई थीं। चित्र-6 में वर्ष 1901 से लेकर भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात का रुझान दिया गया है। भारत में हमेशा ही स्त्री-पुरुष अनुपात महिलाओं के लिये प्रतिकूल रहा है। हालांकि यह चिंताजनक स्थिति है कि लंबे समय से भारत में महिलाओं के लिये स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट का रुझान रहा है।

स्त्री-पुरुष अनुपात 20वीं सदी की शुरुआत में 972 पर था और उसके बाद वर्ष 1941 तक इसमें लगातार गिरावट होती रही। वर्ष 1951 में इसमें मामूली वृद्धि दर्ज की गई और इसके बाद लगातार दो वर्षों तक इसमें गिरावट होती रही और 1971 में यह गिरकर 930 तक पहुंच गया। बास्तव में वर्ष 1961 से लेकर 1971 के बीच देश में स्त्री-पुरुष अनुपात में

11 अंकों की तेज़ गिरावट हुई। उसके बाद इसमें मामूली उत्तर-चढ़ाव हुआ और यह कई जनगणना के बाद लगभग 930 तक पहुंचा। अधिकांश बड़ी जनसंख्या वाले देशों की तुलना में भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात अनोखा है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं की अधिक मृत्युदर के कारण ऐसा होता है। ऐसा माना जाता है कि महिलाओं की अधिक मृत्युदर का कारण 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव' है। यह एक ऐसा पद है जिसका भारतीय जनसंख्या विज्ञान और सामाजिक साहित्य में महिलाओं के लिये खाद्य और स्वास्थ्य सेवाओं तक कमतर पहुंच सहित कई प्रकार के व्यवहारों के वर्णन के लिये अक्सर इस्तेमाल किया जाता है। भारत में उच्च स्त्री-पुरुष अनुपातों को भारतीय समाज में महिलाओं की कमज़ोर स्थिति के सूचक के रूप में लिया जाता है। यह जानकर काफी आश्चर्य होता है कि हिमाचल प्रदेश, असम, जम्मू-कश्मीर, केरल, पंजाब और उत्तरांचल को छोड़कर प्रायः सभी राज्यों में पिछली अवधि के दौरान स्त्री-पुरुष अनुपात घटा है (तालिका-5)।

भारत के शहरीकरण के रुझान

विकसित देशों में शहरीकरण की विशेषताओं में भारत का अधिकांश हिस्सा है। वर्ष 2001 में शहरों की संख्या बढ़कर 5,161 हो गई, जबकि 1901 में यह 1,827

थी। देश की कुल जनसंख्या वर्ष 1901 के 23.8 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2001 में 102.7 करोड़ तक पहुंच गई। वर्षीं शहरी क्षेत्र की जनसंख्या वर्ष 1901 के 2.6 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2001 में 28.6 करोड़ हो गई (चित्र-4 और तालिका-6)। भारत में शहरीकरण की दर विकास के मौजूदा स्तरों पर अनुमान की तुलना में धीमी और कम है। सबसे ताज़ा वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 102.70 करोड़ में से 28.60 करोड़ लोग शहरों में रहते हैं। हालांकि शहरी क्षेत्रों को उनके आकार के आधार पर कई श्रेणियों में विभाजित किया जाता है, जो 5,000 की जनसंख्या वाले आवास स्थालों से लेकर लाखों की जनसंख्या वाला स्थान हो सकता है।

कई विकासशील देशों की तुलना में भारत में शहरीकरण की गति धीमी रही है। शहरी जनसंख्या की वार्षिक वृद्धिर का प्रतिशत यह दर्शाता है कि 1921-31 के दशक से लेकर वर्ष 1951 तक इसमें तुलनात्मक रूप से तेज़ वृद्धि हुई। उसके बाद वर्ष 1951 से 61 के दौरान इसमें तेज़ी से गिरावट दर्ज़ की गई। 1961-71 और 1971-81 के दशकों में इसमें सुधार देखने को मिला, लेकिन यह गिरकर 2.8 प्रतिशत के वर्तमान स्तर तक पहुंच गया (तालिका-6)। वर्ष 1951-61 के दौरान

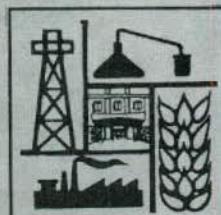
योजना के प्रतीक चिह्न का सफर



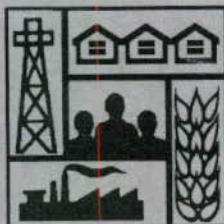
योजना का प्रतीक चिह्न भारतीय अर्थव्यवस्था के समग्र बलाधात को विनियोग करता रहा है। 1957 में जब योजना का प्रकाशन आरंभ हुआ, तब इसके प्रतीक चिह्न में गेहूं की एक बाली

दर्शाई गई थी जो अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व को इंगित करती थी। पहली पंचवर्षीय योजना में भी इस क्षेत्र पर ज़ोर था।

बाद के वर्षों में अर्थिक विकास की बुनियाद में कृषि और उद्योग, ये दो महत्वपूर्ण क्षेत्र आ गए। इसे हमारे संशोधित प्रतीक चिह्न में भी देखा जा सकता है।



हाल के वर्षों में यह महसूस किया जाने लगा है कि मानव विकास के बगैर आर्थिक विकास अपूर्ण है। इसे जनकेंद्रित और समावेशी होना होगा ताकि विकास का मकसद लोगों की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करना हो। इसी को निगाह में रखकर योजना एक नवीन प्रतीक चिह्न को अंगीकार कर रही है जिसके अंतर्स्थल में 'जन' हैं और उनके चारों तरफ कृषि, आवास, उद्योग और बिजली जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र। □



शहरीकरण की दर में तेज़ गिरावट का मुख्य कारण उस अवधि के दौरान बड़ी संख्या में शहरों का दर्जा समाप्त कर दिया गया था।

ऐतिहासिक तौर पर आर्थिक और सामाजिक विकास के संदर्भ में नगरों का योगदान रहा है। वर्ष 2001 में लगभग 28.60 करोड़ भारतीय लोग पूरे देश में फैले लगभग 5161 शहरों और नगरों में रहते थे, जो देश की कुल जनसंख्या का 28 प्रतिशत था पर 1951 में केवल 6.2 करोड़ लोग (17 प्रतिशत) शहरों में रहते थे। कुल शहरी जनसंख्या का आधा से अधिक हिस्सा प्रथम श्रेणी के नगरों में रहती है, जिनकी जनसंख्या 1,00,000 से अधिक है (तालिका-7)। वर्ष 1991-2001 के दौरान शहरी जनसंख्या में प्रतिवर्ष 3.8 प्रतिशत की ऊँची वृद्धि दर्ज की गई, जबकि 5000 से कम जनसंख्या वाले छोटे शहरों में ऋणात्मक वृद्धि (-0.7 प्रतिशत) पाई गई।

निष्कर्ष

इस लेख में भारतीय स्वतंत्रता के पहले और बाद के मानव विकास मानकों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है जबकि अंतरराष्ट्रीय स्तरों से तुलना करने पर साक्षरता, स्वास्थ्य, स्त्री-पुरुष अनुपात और शहरीकरण जैसे मानव विकास मानकों की स्थिति नीचे रही है। अभी भी भारत में निरक्षरता, शिशु मृत्युदर ऊँची होने के साथ-साथ स्त्री-पुरुष अनुपात बिगड़ा हुआ है और शहरीकरण का स्तर धीमा है।

लेकिन इन सभी मानकों की स्थितियों को समझने में जो कुछ ज़रूरी है, उनमें आज़ादी के समय में काफी खराब स्त्री-पुरुष अनुपात शामिल नहीं है। साक्षरता, स्वास्थ्य के ऊँचे स्तरों और यहां तक कि बेहतर स्त्री-पुरुष अनुपात के लिये बड़ी मात्रा में सरकारी और निजी निवेश की ज़रूरत है। भारत की उपलब्धियों का मूल्यांकन इस प्रकार करना चाहिए कि साक्षरता और स्वास्थ्य के क्षेत्र में वार्षिक वृद्धिदर निम्न मानव विकास के कारण प्राप्त होती है, जबकि इसकी जनसंख्या वृद्धिदर अधिकांश अवधियों में प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत से अधिक रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साक्षरता दरों और स्वास्थ्य की स्थितियों में इन वर्षों में सुधार तो हुआ है पर वास्तव में इसकी जनसंख्या तीन गुना अधिक हो गई है। इसका अर्थ यह है कि भारत में मानव विकास के क्षेत्र में अपेक्षित सुधार नहीं हो रहा है।

साक्षरता के मामले में हम पाते हैं कि वार्षिक वृद्धिदर के रूप में इसमें सुधार की दर स्वतंत्रता पूर्व अवधि की तुलना में स्वतंत्रता पश्चात अवधि में बेहतर नहीं है। यह स्थिति हमें बताती है कि राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर सरकारों द्वारा अतिरिक्त और केंद्रित प्रयास करने की ज़रूरत है ताकि इस दिशा में पिछले दशक के दौरान हमने जो गति प्राप्त की है, इसे कायम रखा जा सके। स्वास्थ्य सुविधाओं के क्षेत्र में जो कमियां हमें नज़र आती हैं, उसे शीघ्र हल करना चाहिए। भारत की संपन्न सांस्कृतिक विरासत और भारतीय परिवार की अंतरराष्ट्रीय मान्यता अथवा पारिवारिक मूल्यों के बावजूद स्त्री-पुरुष अनुपात का बिगड़ा हमारे लिये शर्मनाक है। □

(लेखक एनसीएईआर में वरिष्ठ विकास अर्थशास्त्री है)

I.A.S.-P.C.S. प्रीलिम तथा मेन्स में सोमान्य अध्ययन के लिए एक अपरिहार्य पुस्तक

भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण (2007)

प्रो० एस० एन० लाल पुस्तक को जिसने मूल्य-भी पढ़ा उसी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की **मूल्य-रु.150/-**

"---In Delhi the books of this standard that too in Hindi medium are really scarce. Dr. Adesh Sharma, Senior Teacher of Economics University of Delhi/Director, KALP Academy, Delhi

आई.ए.एस. के अर्थव्यवस्था के समग्र पाठ्यक्रम के लिए यह बेहद उपयोगी है। अर्थव्यवस्था का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है।"

मनोज कुमार शर्मा, चयनित आई.ए.एस. 2004

रैंक 121, अनुक्रमांक 082944

सामान्य अध्ययन में 360 से अधिक अंक

प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए लिखी गयी यह पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है विशेषरूप से खण्ड 8 जो मेन्स के लिए है।'

- **डॉ. सी.बी.पी. श्रीवास्तव**, डिस्कवरी इन्स्टीट्यूट, नयी दिल्ली 'प्रो० लाल की भारतीय अर्थव्यवस्था की उपयोगिता का आप अन्दाज़ इसी से लगा सकते हैं, कि 2004 यू०पी० पी० सी० एस० प्रीलिम तथा पी.जी.टी. 2006 में क्रमशः 57 तथा 55 प्रश्न इसी पुस्तक से थे।

हिमांशु उपाध्याय

चौथी रैंक पर डिप्टी एस.पी. पद पर चयनित पुस्तक प्राप्ति के कुछ प्रमुख स्थान-अजय पुस्तक केन्द्र, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, अग्रवाल मैगजीन इंस्ट्रीट्यूट्स नई दिल्ली, नवशक्ति पुस्तक केन्द्र, मुखर्जी नगर, दिल्ली, रामा बुक डिपो, लखनऊ, शिव पल्लिशिंग हाउस, आलोपीबाग रोड, इलाहाबाद (प्रकाशक) फोन: 0532-2508236, 2502755, 9335556414

ECONOMICS

IAS कोचिंग के लिये PCS

उत्तर भारत का एक मात्र विश्वसनीय नाम

प्रो० एस० एन० लाल

नया बैच इलाहाबाद विश्वविद्यालय नामांकन जारी 1 जुलाई 2007 से **प्रारम्भ** अवसर का लाभ उठाइये- 2003 यू०पी० सी० एस० में अर्थशास्त्र लेकर जो भी छात्र अन्तिम रूप से चयनित हुए वे सभी मेरीडियन कोचिंग के थे जिसमें प्रमोद यादव 9 वीं रैंक पर डिप्टी एस० पी० पद पर चयनित, 2005 में य०पी० सी० एस० में 7 छात्र चयनित जिसमें हिमांशु उपाध्याय चौथी रैंक पर डिप्टी एस० पी० पद पर चयनित 2005 बैच में चयनित अमित कुमार सिंह जिन्हें प्रथम प्रश्न पत्र में 149/200 अंक प्राप्त हुए कहते हैं।

अर्थशास्त्र में प्रो० लाल की कोचिंग का कोई विकल्प ही नहीं। अर्थशास्त्र की प्रत्येक ब्रांच पर जो विश्वसनीय सामग्री, धारणात्मक स्पष्टता, हमेशा नयापन तथा सबके ऊपर कुछ कर सकने की अनवरत प्रेरणा जो प्रो० लाल से मिलती है, वह अत्यन्त दुलाभ है।

लाल MERIDIAN सम्पर्क करें-09335154584, 0532-2508236

लेबर चौराहा, अल्लापुर, इलाहाबाद (होस्टल सुविधा भी उपलब्ध)

YH/8/7/6

योजना, अगस्त 2007

1857

1947

2007

स्वतंत्र भारत की अनुल्य यात्रा

भारत का कृषि क्षेत्र में नियति से मिलन

○ एम.एस. स्वामीनाथन

जवाहरलाल नेहरू ने 1947 में 14-15 अगस्त की मध्य रात्रि में भारत की नियति के साथ मिलन का संदर्भ देते हुए यह आग्रह किया कि स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही हमें एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण के लिये काम करना होगा, जहां प्रत्येक बच्चे, महिला और पुरुष को बेहतर स्वास्थ्य, पोषाहार, शिक्षा और रोज़गार के अवसर उपलब्ध हों। पिछले 60 वर्षों में अपनाई गई नीतियों और किए गए निवेशों के साथ-साथ कृषि अनुसंधान, शिक्षा और प्रसार के क्षेत्र में हुई ज़ोरदार प्रगति के फलस्वरूप जहां एक ओर कृषि उत्पादकता के क्षेत्र में प्रभावशाली उपलब्धियां हासिल हुई हैं, वहां दूसरी ओर इंसानी उम्र में भी बढ़ोतरी हुई है।

भारत में कृषि के (सार्वजनिक) क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों के योगदान का विवरण निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है।

- खाद्यान्न का उत्पादन जो 1951-52 में करीब 4 करोड़ 50 लाख टन था, इस सदी के शुरू में 20 करोड़ टन तक पहुंच गया।
- 1961-62 में प्रति हेक्टेयर कुल 700 किलोग्राम प्रमुख अनाजों का उत्पादन होता था जो अब बढ़ कर 1,700 किग्रा. प्रति हेक्टेयर हो गया है।
- 1951-52 में लगभग 2 करोड़ 10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई होती थी, जबकि अब 6 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई होने लगी है। कुल सिंचित क्षेत्र के रक्केमें भी 300 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

सिंचित क्षेत्र के विस्तार में भूजल सिंचाई की अग्रणी भूमिका रही है। यह प्रौद्योगिक प्रगति के कारण ही संभव हो सका है।

- दूध का वार्षिक उत्पादन भी 1950-51 के दो करोड़ टन से बढ़कर इस वर्ष (2007) दस करोड़ टन तक पहुंच गया है। विश्व में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भारत अब पहले स्थान पर आता है। और यह सब संभव हो सका राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के नेतृत्व में प्रबंधन के क्षेत्र में अपनाई गई नयी-नयी विधियों और तौर-तरीकों के फलस्वरूप। दुग्ध उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन के बीच परस्पर सुदृढ़ संपर्क स्थापित करने में एनडीडीबी ने मार्गदर्शक का कार्य किया।
- समुद्री और देश के अंदर (नदी-तालाबों में) मत्स्य-पालन में प्रभावी प्रगति हुई है। इस प्रगति में प्रमुख योगदान मत्स्य बीजों, उनके चारों ओर प्रजनन के क्षेत्र के अलावा मत्स्याखेट के उपकरणों और कौशल के क्षेत्र में हुई वैज्ञानिक प्रगति का रहा है।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ-साथ सामाजिक मंथन ने वानिकी के संरक्षण और उसमें सुधार को बढ़ावा देने के साथ उसको वाणिज्यिक आधार प्रदान करने में मदद की है। तटीय और दलदली क्षेत्र में उगने वाले बनस्पतियों के पुनरुद्धार में भी यही जुगलबंदी काम कर रही है।
- मलेरिया, तपेदिक, कुप्त रोग, हैजा और अन्य बीमारियों के नियंत्रण के लिये सहज और सस्ती दवाओं के विकास ने

उल्लेखनीय काम किया है। चेचक का उन्मूलन हो चुका है और कुप्त रोग के भी शीघ्र हो इस देश से विदाई की संभावना है।

- पौधिक आहार की कमी से पैदा होने वाली अनेक बीमारियों के निदान के लिये अब भोजनाहार को ही पुष्ट बनाने की जो प्रक्रिया अपनाई गई है, उससे कुपोषण का सस्ता इलाज संभव हो पाया है।
- नलों (बाटर पंप) की सरल डिजाइनों और सुदूर संवेदी तथा चट्टानों की खुदाई (ड्रिलिंग) की तकनीक के अपनाए जाने से प्रायः सभी क्षेत्रों में, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, पेयजल सहजता से उपलब्ध होने लगा है।

- बायोगैस, जैवकचरा, सौर, पवन और अक्षय ऊर्जा के अन्य रूपों के उपयोग से संबंधित वैज्ञानिक उपायों से ग्रामीण ऊर्जा प्रणालियों को अत्यधिक लाभ पहुंचा है। देश में विकसित प्रौद्योगिकियों पर आधारित नाभिकीय विद्युत उत्पादन, ऊर्जा सुरक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। जैव-ईंधन की ओर भी अब अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

- अंतरिक्ष विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग, दोनों ही क्षेत्रों में ज़ोरदार प्रगति हुई है।
- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के क्षेत्र में हम विश्व का नेतृत्व कर रहे हैं। 'प्रत्येक गांव एक ज्ञान केंद्र' अभियान के तहत खोले गए ज्ञान

चौपालों और ग्राम ज्ञान केंद्रों के माध्यम से शहर और गांव के बीच जो ज्ञान के साधनों की कमी है उसे भरना अब संभव हो गया है।

इस प्रगति के बावजूद, हमारी स्वाधीनता के 60वीं जयंती वर्ष के दौरान कृषि के क्षेत्र में विषाद और दुर्भाग्य का वातावरण बना हुआ है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 20 प्रतिशत से भी कम हो गया है, जबकि हमारी आबादी का दो-तिहाई हिस्सा अभी भी अपनी रोज़ी-रोटी के लिये खेती पर ही निर्भर है। कृषि पर निर्भर जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिशत भाग छोटी जोत वाले किसानों का ही है। जोत का औसत आकार 1.41 हेक्टेयर है। 32 करोड़ 90 लाख हेक्टेयर के कुल भौगोलिक क्षेत्र में से 14 करोड़ 20 लाख हेक्टेयर में ही खेती होती है। इसका लगभग 63 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के हाल के एक अध्ययन में, जिन किसानों से बातचीत की गई, उनमें से 40 प्रतिशत लोगों ने कहा कि दूसरा कोई विकल्प हो तो, वे खेती छोड़ना पसंद करेंगे। हम इस स्थिति से कैसे निपटें कि साठ और सत्तर के दशकों के हरित क्रांति के दौर किसानी और किसानों के गौरव को वापस ला सकें।

मुख्य चुनौतियां

इस निबंध में मैं उन 6 मुख्य चुनौतियों की चर्चा करना चाहूंगा जिनसे उन्नीस सौ नब्बे के दशक के 'हम हमें कामयाब' की भावना को पुनर्जीवित करने के लिये कृषि वैज्ञानिकों और नीति-निर्माताओं को जूझना है। ये हैं :

लाभों को बनाए रखना

पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का अर्द्धचंद्राकार क्षेत्र वर्तमान में हमारी खाद्य सुरक्षा प्रणाली का मुख्य आधार है। दुर्भाग्य से इस क्षेत्र को गंभीर पारिस्थितिकीय और अर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भूजल का स्तर प्रतिवर्ष दो या तीन फीट की दर से गिर रहा है। इसके साथ ही यहां की मिट्टी में लवणीयता भी बढ़ती जा रही है। अर्थिक दृष्टि से लागत, जोखिम और लाभ वाली कृषि संरचना अब प्रतिकूल होती जा

रही है। परिणाम यह हुआ है कि अधिकांश किसान कर्ज में डूबे हुए हैं।

इन क्षेत्रों में यह महत्वपूर्ण है कि संरक्षण कृषि, न्यूनतम जुताई और हरित कृषि को बढ़ावा दिया जाए। संरक्षण कृषि में मिट्टी के स्वास्थ्य और जल प्रबंधन तथा सूक्ष्म कृषि के सिद्धांतों को अपनाए जाने पर जोर दिया जाता है। हरित कृषि में समेकित कीट प्रबंधन और पौधिक तत्वों की आपूर्ति, फसल-पशुधन का एकीकरण तथा सबसे उपयुक्त फसल और प्रजाति के उपयोग को बढ़ावा दिया जाता है। जैविक कृषि के विपरीत हरित कृषि में न्यूनतम आवश्यक खनिजीय उर्वरक और रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों को उगाने की भी अनुमति रहती है। राष्ट्रीय कृषक आयोग (एनसीएफ) ने सुझाव दिया है कि जैविक और हरित कृषि के उत्पादों की प्रमाणन प्रक्रिया अलग-अलग होनी चाहिए।

दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता कृषि के लिये उपयोगी भूमि का संरक्षण है। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में पारिस्थितिकी, अर्थशास्त्र, समानता और रोज़गार सृजन पर आधारित भूमि आयोग के बारे में सरकारी नीति होनी चाहिए। उपलब्ध भूमि का वर्गीकरण एक पेशेवर भूमि उपयोग परामर्श सेवा द्वारा निमांकित श्रेणियों में किया जाना चाहिए :

- संरक्षित क्षेत्र : यथा - वन, राष्ट्रीय पार्क, संरक्षित जीवमंडल आदि।
- पुनरुद्धार क्षेत्र : जिन पर भूमि की देखभाल और मिट्टी के स्वास्थ्य (गुणवत्ता) सुधार के दृष्टिकोण से ध्यान देने की ज़रूरत है।
- संपोषणीय सघनीकरण क्षेत्र : वे क्षेत्र जो फसल और पशु पालन, मत्स्यपालन और कृषि-वानिकी तथा बिना किसी पारिस्थितिकीय हानि के अनंतकाल तक उत्पादन में वृद्धि देने वाली हरित क्रांति को बढ़ावा देने के लिये आदर्श हैं।
- औद्योगिक एवं गैर कृषि योग्य क्षेत्र : ऐसे क्षेत्र जो कृषि के लिये जीवविज्ञान की दृष्टि से अधिक सक्षम नहीं हैं। उद्योगों, आवासों, सड़कों और विशेष अर्थिक क्षेत्रों

के लिये ये अधिक उपयुक्त होते हैं।

प्रत्येक राज्य में उपलब्ध भूमि का यदि इस प्रकार का वर्गीकरण उपलब्ध हो तो कृषि और उद्योग के एक समान विकास को बढ़ावा देना सरल हो जाएगा। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि संपोषणीय कृषि ग्रामीण जनसंख्या की न केवल आजीविका सुरक्षा प्रणाली की मेरुदंड है, बल्कि राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की प्रमुख पूर्व शर्त भी है। पानी के लिये होने वाली लड़ाई के साथ-साथ आजकल हमें भूमि के लिये भी लड़ाई होती दिख रही है। यह तो केवल हिमशैल का ऊपरी सिरा अर्थात मात्र संकेतभर है, क्योंकि भूमि पर जनसंख्या के भारी दबाव और आधुनिक उद्योगों की रोज़गारविहीन विकास प्रवृत्ति को देखते हुए आगे जो स्थिति आने वाली है, वह काफी भयावह होगी। मौजूदा दौर में, केवल फसल और पशुपालन, समुद्री क्षेत्र और नदी-तालाबों में मत्स्य पालन, कृषि-वानिकी और कृषि प्रसंस्करण सहित कृषि ही ऐसे क्षेत्र हैं जो रोज़गारमूलक आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकते हैं। जितनी जल्दी श्रेष्ठतम उपलब्ध सुदूर संवेदी आंकड़ों और पेशेवर निपुणता वाली वैज्ञानिक और राजनीतिक रूप से स्वीकार्य भूमि उपयोग प्रणाली का विकास होगा, उतना ही अधिक कृषि समुदायों के साथ संबंध और मुकाबले से बचा जा सकेगा। देश की आर्थिक प्रगति को रोकने वाले भूमि-मुद्दों की संभावना की अब ज्यादा देर तक अनदेखी नहीं की जा सकती।

गैरकृषि कार्यों के लिये भूमि का दिशा-परिवर्तन (अपवर्तन) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधानों का सहारा लेते हुए कुछ मामलों में शुरू हो चुका है। यह अधिनियम कालातीत हो चुका है और इसका यह घाटा तो पूरी तरह से किसान विरोधी और अमीरों के पक्ष में है : 'मुआवजे का निर्धारण करते हुए, न्यायालय अधिग्रहण के समय भूमि के अधिग्रहण के बाद उसके उपयोग से भूमि की कीमत में होने वाली बढ़ोतरी पर विचार नहीं करेगा।' बहुत से ऐसे लोग हैं जो यह चाहते हैं कि छोटी जोत वाले तमाम किसान खेती-बाड़ी छोड़कर अपनी ज़मीनें व्यापार

और उद्योग के लिये बेच दें। इस काम के लिये छोटे किसानों को उनकी ज़मीन की अच्छी कीमत मिलेगी, ऐसी दलीलें दी जा रही हैं। वे लोग जो किसानों को ज़मीन से हटने के लिये इस तरह के तर्क दे रहे हैं, उन्हें वह रणनीति भी सुझानी चाहिए जो किसानों को ज़मीनें दिला सके। जो किसान अपनी ज़मीनें बेचेंगे, वे जीवनपर्यांत अपनी आजीविका के लिये कहां जाएंगे। किसानों के बहिर्गमन और आगमन की रणनीति अर्थात् ज़मीन बेचने के बाद वे क्या करेंगे, इसका प्रस्ताव एक साथ ही सामने रखा जाना चाहिए। हमारे देश में उद्योग और खुदरा व्यापार के क्षेत्र में सभी विकासात्मक और व्यावसायिक परियोजनाओं में आजीविका पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में स्पष्ट व्याख्या का अनिवार्य होना सबसे बड़ी ज़रूरत है। अनेक अंतरराष्ट्रीय सुपर बाज़ारों के आने से छोटे खुदरा व्यापार में लगे लाखों लोगों (स्त्री और पुरुष दोनों) की आजीविका पर असर पड़ेगा। दरअसल, छोटे-छोटे खुदरा उद्यमों में शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के सबसे ज्यादा लोगों को जीवनयापन के अवसर मिलते हैं। यदि हमें सामाजिक उथल-पुथल और अराजकता के माहौल से बचना है तो रोज़गार की समाप्ति और रोज़गार का सृजन दोनों ही समवर्ती घटना होनी चाहिए।

लाभों का विस्तार

जैसा पहले बताया जा चुका है, देश में अनछुए उत्पादन अवसरों का विशाल भंडार है (तालिका-1)। इस तरह का अनछुआ और अदोहित भंडार हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मुख्य शक्ति है।

हमें तत्काल टेक्नोलॉजी, आधारभूत तकनीकी ढांचा, प्रशिक्षण और व्यापार के

परस्पर सुदृढ़ बनाने वाले पैकेज़ को लागू करने की योजना बनानी चाहिए ताकि देश में अधोलिखित दो और चंद्राकार उर्वर क्षेत्र (फर्टाइल क्रेसेंट) तैयार हो सके :

- **बिहार, पूर्वी उप्र., प. बंगाल और असम क्षेत्र :** इस क्षेत्र में पानी प्रचुरता से उपलब्ध है, और अच्छी मिट्टी भी। महत्वपूर्ण यह है कि संरक्षण-फसलोत्पादन, उपभोग व्यवसाय की शृंखला को उसकी समग्रता में ध्यान दिया जाना चाहिए। इस शृंखला की सभी कड़ियों पर बराबर ध्यान देना होगा। जैसा कि पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के पहले चंद्राकार उर्वरक क्षेत्र में हैं, सुनिश्चित और लाभकारी विपणन अवसर ही किसानों को अधिक उपज लेने के लिये प्रेरित कर सकते हैं।
- **तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा क्षेत्र :** अब जबकि कावेरी जल न्यायाधिकरण ने कावेरी थाले में पानी के बटवारे को लेकर अपना फैसला सुना दिया है, समय आ गया है कि उपलब्ध जल के दक्षतापूर्वक उपयोग पर ध्यान दिया जाए। भारत सरकार इस वर्ष से देशभर में 'पानी की प्रति बूंद से और अधिक उपज एवं आय' नाम का अभियान शुरू कर रही है। इस क्षेत्र को इस आंदोलन (अभियान) में अधिक सक्रिय भाग लेना चाहिए ताकि पानी, फसल और उसकी विविधता, वृहद और सूक्ष्म पोषक तत्व, उपकरण और बाज़ार के बीच बेहतर समन्वय से अधिकतम आय प्राप्त की जा सके।

उपर्युक्त दोनों अतिरिक्त चंद्राकार उर्वर क्षेत्र न केवल सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिये खाद्य आपूर्ति का स्थायित्व

सुनिश्चित करने में मदद करेंगे, बल्कि लाखों ग्रामीण परिवारों की आमदनी और रोज़गार को सुरक्षा भी देंगे।

- **नये लाभ अर्जित करना :** वर्षा पर पूर्णरूप से निर्भर 63 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में नये लाभ अर्जित करने के अवसर सबसे अधिक हैं। वर्षाजल संचय और जलमृत (अक्वीफर) के दोहन के साथ-साथ कम पानी में होने वाली कीमती फसलों की खेती से दलहनों और तिलहनों जैसे शुष्क खेती वाले क्षेत्रों में उत्पादकता में वृद्धि को बढ़ावा मिलेगा। इन क्षेत्रों में तथाकथित 'द्वितीय हरित क्रांति' की प्रतीक्षा बनी हुई है। इस क्षेत्र पर ध्यान देने से दलहनों, तिलहनों, सब्जियों और फलों की उच्च लागत से मुद्रास्फीति पर पड़ने वाले दबावों को हटाने में मदद मिलेगी। शुष्क खेती वाले क्षेत्रों पर ध्यान देने से ही मूल्य वृद्धि के साथ-साथ भूख और गुरीबी को रोका जा सकता है। ये क्षेत्र पशुपालन और बागवानी के लिये भी आदर्श हैं। संकर अरहर की पैदावार जैसे शुष्क कृषि क्षेत्र की उपज और आय बढ़ाने में मदद करने वाली तकनीक अब सहज उपलब्ध है। छोटी जोत वाली बागवानी और डेयरी (दुग्धोत्पादन) प्रक्षेत्रों के साथ-साथ 'दलहन ग्रामों' का विकास किया जा सकता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि लाभों को बचाए रखने का अर्थ है - हरित क्रांति के हृदय स्थल की रक्षा करना। जिन राज्यों में सिंचाई का पानी कोई प्रमुख बाधा नहीं है, उनमें इन लाभों का विस्तार करने के लिये पूर्वी और दक्षिणी भारत में दो और चंद्राकार उर्वर क्षेत्रों का तत्काल निर्माण करना ज़रूरी है। नये लाभ अर्जित करने की योजना से वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों की पैदावार और अर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने में मदद मिलेगी। जब तक हम उपभोग नहीं बढ़ाएंगे, उत्पादन भी नहीं बढ़ेगा। अतएव, सर्वव्यापी सार्वजनिक वितरण प्रणाली से न केवल कृषि की पैदावार बढ़ाने में मदद मिलेगी, बल्कि इससे संसार में सर्वाधिक कुपोषित बच्चों, महिलाओं और पुरुषों का

तालिका-1

तुलनात्मक फसल उत्पादकता (कि.ग्रा./हेक्टे.)

फसल	अमरीका	चीन	भारत
मक्का	8900	4900	2100
धान	7500	6000	3000
सोयाबीन	2250	1740	1050
कपास बीज	2060	3500	750
टमाटर	6250	2400	1430

देश कहलाने के अवांछनीय कलंक को भी मिटाया जा सकेगा।

जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करना : फरवरी 2007 में प्रकाशित जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी समूह (संयुक्त राष्ट्र) ने अपने चौथे आकलन रिपोर्ट में अधोलिखित तथ्यों और संभावनाओं की ओर ध्यान खींचा है :

- ❖ धरती की सतह का तापमान बढ़ाने वाले जो 12 सबसे गर्म वर्ष रहे हैं, उनमें पिछले 12 वर्षों (1995-2006) में से 11 वर्ष भी शामिल हैं। 1850-1899 से 2001-2005 के बीच कुल तापमान में 0.76° सेल्सियस की वृद्धि हुई है।
- ❖ 1961-2003 के बीच औसत समुद्री सतह में औसतन प्रतिवर्ष 1.8 मिमी/वर्ष की वृद्धि दर्ज की गई है। यह दर 1993-2003 के बीच कहीं अधिक लगभग 3.1 मिमी/वर्ष मापी गई। अनुमान है कि 20वीं सदी में कुल 0.17 मीटर समुद्र स्तर बढ़ा है।
- ❖ अगले दो दशकों में अनुमान है कि प्रति दशक 0.2° सेल्सियस तापमान बढ़ेगा। यहां तक कि यदि सभी ग्रीन हाउस गैसों और एयरोसॉल्स का संकेंद्रण वर्ष 2000 के स्तर पर स्थिर रखा जाए तो भी तापमान में प्रति दशक 0.1° सेल्सियस की वृद्धि होने का अनुमान है।
- ❖ 21वीं शताब्दी में सतही वायु के तापमान में वृद्धि, न्यूनतम 1.8° सेल्सियस और अधिकतम 4° सेल्सियस का अनुमान है।
- ❖ यह लगभग 90 प्रतिशत निश्चित है कि गर्म मौसम, गर्म हवाओं (लू) और भारी वर्षा के दौर बार-बार आएंगे। यह भी 60 प्रतिशत से अधिक निश्चित है कि सूखे, तीव्र समशीतोष्ण चक्रवार्तों और अत्यधिक ऊंची-ऊंची समुद्री लहरों के उठने की घटनाएं बढ़ेंगी।
- ❖ पर्यावरण में कार्बनडाइऑक्साइट की मात्रा बढ़ने से सागर का लवणीकरण भी बढ़ेगा।

‘जलवायु परिवर्तन प्रबंधन’ पर अंतर्विधा अनुसंधान केंद्रों की स्थापना में हमें अब ज्यादा

समय नहीं गंवाना चाहिए। इसके अलावा, प्रत्येक पंचायत में एक महिला और एक पुरुष को जलवायु प्रबंधक के रूप में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उद्देश्य होगा कि अपवादी मौसम के दुष्प्रभाव को न्यूनतम किया जाए और सामाज्य मानसून का अधिकतम लाभ उठाया जाए। इसके अलावा, सूखे, बाढ़ और समुद्र के स्तर में वृद्धि की चुनौतियों का सामना करने के लिये पूर्वानुमानिक अनुसंधान की भी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, एमएसएसआरएफ में डा. अजय परिदा और उनके साथी ‘एवेसीनिया मरीना’ जैसी दलदली प्रजातियों की लवण सहन-सीमा का अंतरण तटीय क्षेत्रों के काश्तकारों के लिये महत्वपूर्ण चावल, दाल और अन्य फसलों की ओर करने की दिशा में काम कर रहे हैं। इसी प्रकार, ‘प्रोसोसिस जुलीफ्लोरा’ से सूखा-सहन करने वाले जीनों के अंतरण की दिशा में भी कार्य प्रगति पर है। नर-मादा बाधाओं को आर-पार जींस के अंतरण की संभावना का जो असामान्य अवसर हमें उपलब्ध है, उसका फायदा उठाया जाना चाहिए।

लघु किसान परिवारों को समुचित आर्थिक शक्ति प्रदान करना : लघु कृषि क्षेत्र प्रबंधन क्रांति के कारण डेयरी क्षेत्र में जो जबर्दस्त सफलता मिली है, उसका श्रेय दुर्गम उत्पादकों की सहकारी समितियों के संगठन को जाता है। इससे विकेंद्रीकृत लघु उत्पादकों की सहायतार्थ केंद्रीकृत सेवाओं की सुविधा विशेषकर फसलोपरांत प्रसंस्करण और विपणन में, मिलना आसान हो जाता है। सहकारी समितियों के अलावा, स्वसहायता समूहों (एसएचजी), उत्पादक कंपनियां और ठेके पर खेती जैसे और उपाय भी हैं, जिनसे लघु उत्पादकों को शक्ति और समान अर्थव्यवस्था प्रदान की जा सकती है। परस्पर लाभप्रद संविदा कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने के लिये यह एक महान अवसर है। इसमें, उत्पादक और क्रेता दोनों की ही जय-जय है। संविदा कृषि में छोटे किसानों का हित सुनिश्चित करने के लिये प्रत्येक राज्य में बहु शेयर धारकों वाली संपोषणीय संविदा कृषि परिषद का गठन करना काफी उपयोगी साबित होगा।

होगा। सफलता के लिये सबसे महत्वपूर्ण शर्त फसल कटाई के समय उपज का लाभकारी और सुनिश्चित मूल्य मिलना है। सफल और सामाजिक रूप से संपोषणीय और न्यायसंगत संविदा कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देने के लिये एक आचार-संहिता की रचना होनी चाहिए।

यदि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के संगठनों की संविदा कृषि वाली सहचर प्रणालियों का संवर्धन हो सकता है, तो ग्राम स्तर पर सार्वभौमिक फसल बीमा को शुरू करना संभव हो सकेगा। इसके साथ ही, ऋण और अन्य आवश्यक चीजों का प्रबंध भी सही समय और स्थान पर किया जा सकता है। छोटी जोत वाली कृषि की कार्य कुशलता, दक्षता और अर्थशास्त्र को सुधारने की आवश्यकता है। खेत जितने छोटे होंगे, उतनी ही अधिक ज़रूरत बाज़ार में बेचने लायक अतिरिक्त उपज की होगी, ताकि किसान परिवार को उचित नकद आमदनी हो सके। भूख और गरीबी के उन्मूलन से संबंधित संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी विकास लक्ष्य को हासिल करने हेतु लघु खेत प्रबंधन क्रांति ही रास्ता दिखा सकता है।

भारत में कृषि निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा उद्यम है। ज़मीन की मिल्क़ियत अलग-अलग हाथों में होती है, और ज़मीन का कैसा इस्तेमाल हो, इसका फैसला भी अलग-अलग लोग करते हैं। परस्पर लाभप्रद संविदा कृषि के विभिन्न तरीकों का प्रचलन सदा से रहा है। गन्ने और तंबाकू की खेती इसके उदाहरण हैं। हमें सफल प्रादर्शों से सबक लेना चाहिए और उसका उपयोग, कपास, दलहन, तिलहन, सब्जियों, फलों, फूलों और औषधीय पौधों जैसे अन्य फसलों में भी करना चाहिए। ग्रामीण उत्पादकों और शहरी क्रेताओं (विशेषकर विशाल कंपनियों) के बीच का अनुबंध असमान सामाजिक सौदा नहीं होना चाहिए। प्रस्तावित राज्य संविदा कृषि परिषद को सहचर निजी (शहरी क्रेता) - निजी (ग्रामीण उत्पादक) भागीदारी को बढ़ावा देना चाहिए। तभी संविदा कृषि अभिशाप की बजाय वरदान साबित होगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में ज्ञानाभाव का समापन : लघु जोत प्रबंधन क्रांति के अतिरिक्त, आवश्यकता इस बात की है कि हम संभावना वाले और वास्तविक उपज के बीच बढ़ती खाई को पाठने वाली कार्यविधियों में सुधार करें, भले ही उसके लिये निष्क्रिय प्रौद्योगिकियों का उपयोग करना पड़े। व्यवहारिक ज्ञान और कैसे करें के बढ़ते अंतर को समाप्त करने में अधोलिखित उपायों से मदद मिलेगी :

- किसान से किसान को शिक्षित करने के प्रयास को बढ़ावा देने के लिये उत्कृष्ट उपलब्धियां हासिल करने वाले किसानों के खेतों में कृषि पाठशालाएं स्थापित करें।
- प्रत्येक पंचायत में एक महिला और एक पुरुष को कृषि विज्ञान प्रबंधक के रूप में प्रशिक्षित किया जाए और उन्हें फसलों और किसानों के अधिकारों की पूरी जानकारी दी जाए।
- कृषि विज्ञान केंद्रों का पुनर्गठन कृषि और उद्योग विज्ञान केंद्रों के रूप में किया जाए ताकि एक ओर तो उत्पादन और फसलोपरांत प्रविधियों के बीच चले आ रहे अंतर को समाप्त किया जा सके और दूसरी ओर कृषि आधारित तथा गैरकृषि आजीविका के अवसरों को बढ़ावा देने पर समान रूप से ध्यान दिया जा सके।
- उच्च गुणवत्ता वाले व्यापार और कानूनी साक्षरता (किसानों के अधिकारों से संबंधित) को बढ़ावा देने तथा मौसम संबंधी एवं विपणन (बाजार) कारकों पर उपयोगी सूचना प्रदान करने हेतु ज्ञान चौपालों अथवा ग्रामीण ज्ञान केंद्रों की स्थापना की जाए।
- फसलोपरांत प्रविधि, कृषि प्रसंस्करण और विपणन के क्षेत्रों में 60 हजार 'प्रयोगशाला से खेत तक' प्रदर्शन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।
- प्रविधि और नीति विषयक मामलों पर किसान परिवारों के साथ निरंतर संवाद के लिये राज्य कृषक आयोगों का गठन किया जाए।

ऊपर जो विवरण दिया गया है, वे 21वीं शताब्दी में हमारे सामने पेश होने वाली कुछेक चुनौतियां हैं। प्रत्येक समस्या के लिये हो सकता है अनेक समाधान हों। हमें खाद्यान, दालों और अन्य खाद्य पदार्थों के बाहर से आयात करने जैसे सरल समाधानों को नहीं अपनाना चाहिए। ये थोड़े समय के लिये आकर्षक लग सकते हैं, परंतु दीर्घविधि में घातक सिद्ध होंगे। हमें याद रखना चाहिए कि हमारे देश में अधिकांश उपभोक्ता किसान ही हैं। हमारी जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा किसानों का ही है। अतः औद्योगिक देशों का उपभोक्ता और उत्पादक के बीच का अंतर, जहां मुश्किल से तीन प्रतिशत लोग ही खेती करते हैं, हमारे देश की स्थितियों में लागू नहीं होता। कृषि उत्पादकता में वृद्धि ही वह रास्ता है जिस पर चल कर हम जवाहरलाल नेहरू के 'नियति के साथ मिलन' के लक्ष्य, अर्थात् 'भूख, गरीबी, अज्ञानता, रोग और अवसर की असमानता को दूर करने के संकल्प' को पूरा कर सकते हैं। केवल त्वरित कृषि प्रगति के माध्यम से ही हम समावेशित आर्थिक विकास को हासिल कर सकते हैं। □

(लेखक संसद सदस्य एवं जाने-माने कृषि विशेषज्ञ है)

संवाद

... The Achievers

हिन्दी साहित्य कुमार "अजेय" (B.P.S.C. Topper)

सफलता का प्रतिमान : UPSC: दीपि अग्रवाल, अभिषेक, अशोक कुमार, सुनील अग्रवाल, संजय कुमार

UPPCS: श्रवण कुमार यादव, राकेश कुमार, मनोज सिंह ...

BPSC: राजेश कुमार, बालमुकुन्द यादव, (B.A.S.)

रवीश कुमार (Dy. Sp.)

U.P.S.C. में औसत प्राप्त अंक

182 + 171 = 353

173 + 169 = 342

167 + 165 = 332

कामेश्वर ठाकुर (DAO)

R.P.S.C.: सुरेश कुमार

अन्य विषय :
सा. अध्ययन, निवाय
साक्षात्कार, सा. हिन्दी

विशिष्ट पहलू :

- भाषा छांड, व्याख्या एवं टिप्पणी पर विशेष बल
- उत्तर लेखन की वैज्ञानिक प्रविधि (चार्ट, सारणी, आदि) : 350+अंक
- गुणवत्ता विकास (Quality Improvement) /लेखन सुधार हेतु विशेष कक्षा
- विगत एवं संभावित 200 प्रश्नों के उत्तर प्रारूप पर विशेष कक्षाएं
- राज्य लोक सेवा आयोगों के पाठ्यक्रम का भी अध्ययन (नि:शुल्क)
- परिष्कृत अध्ययन सामग्री (I.A.S./PCS/JRF/NET) + मॉडल प्रश्नोत्तर प्रारूप

कक्षा समय/कार्यक्रम

प्रथम बैच : प्रातः 8-10 बजे टेस्ट सिरीज+मूल्यांकन प्रत्येक द्वितीय बैच : सायं 6-8 बजे गुणवत्ता विकास सत्र शनिवार

क्रैश कोर्स IAS/PCS JRF/NET

निबंध : विशेष सत्र + मॉडल प्रारूप
⇒ (110 + अंक) प्रत्येक रविवार

पत्राचार पाठ्यक्रम : • हिन्दी साहित्य : 3000/- • सा. अध्ययन प्रा.+मुख्य : 4000/- • निबंध : 1000/- • सा. हिन्दी : 1000/-

नोट : आवेदन पत्र के साथ ड्राफ्ट AJAY KUMAR के नाम से भेजें।

सफलता हेतु अपेक्षित अंक की गारंटी एवं नैतिक प्रतिष्ठान

नया बैच प्रारंभ : 15 जुलाई एवं प्रारंभिक परिणाम के बाद (मात्र 30 नामांकन एक बैच में)

B-10, तृतीय तल, (Above महाराष्ट्र बैंक) मुख्यांगी नगर, दिल्ली-9

9213162103, 9891360366

सफलता का मानक सफल शिक्षक के मार्गदर्शन में ही संभव है।

भारत की शिक्षा - कैसे?

○ माधव चवण

“शिक्षा इस समय भारत में चौराहे पर खड़ी है। न क्षेत्रिज विस्तार और न ही सुधार की वर्तमान गति और प्रकृति स्थिति की अपेक्षाओं के अनुरूप हैं” – ये वाक्य हैं राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुच्छेद 1.9 के। आपके अनुसार इस बात की कितनी संभावना है कि हम 2026 में भी ऐसा ही दस्तावेज़ पढ़ें तो लगभग यही वाक्य मिलें? इस सवाल का आप जो उत्तर देंगे उससे पता चलेगा कि आप सनकी हैं अथवा आशावादी। कुछ भी हो, अगर आप ‘चौराहे पर’ का निहितार्थी अलंकरण निकाल दें तो यह वाक्य आज की स्थिति के एकदम अनुरूप बैठता है। मुख्यतः पिछले दो दशकों से जो कुछ हुआ है, वह है क्षेत्रिज विस्तार। यदि कोई सुधार आया भी है तो उसकी गति और प्रकृति नाटकीय नहीं थी।

भारत में शिक्षा की कहानी कथनी और करनी, कामना और कर्म, प्रयास और परिणामों के बीच भारी अंतर की कहानी है।

एक ऐसे समय में जब शिक्षा सिर्फ़ महत्तर सामाजिक न्याय की ही बात नहीं बल्कि आर्थिक विकास और संपदा सृजन के लिये भी महत्वपूर्ण बन गई है, हम चिलंब, स्थगन और असमंजस की स्थिति बरकरार नहीं

रख सकते। इस समय स्पष्ट दिशानिर्देशों और संकल्पयुक्त कार्य अति आवश्यक हैं।

पिछले दशकों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि शिक्षा की ज़रूरत जो हमेशा रही है, वह अब शिक्षा की मांग बन गई है। इस प्रक्रिया में शिक्षा भी एक जिस बन कर रह गई है। लेकिन जिस तंत्र पर इसे उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी है वह एक बुनियादी ढांचे, फार्म और विषयवस्तु में सिमट कर रह गया है। यह भी वे चीज़ें हैं जिनका सृजन तब किया गया था जब बहुत कम संसाधनों के बावजूद, शुरू-शुरू में इसकी पूर्ति ज्यादा थी और मांग कम। अब, जब हम अधिक संसाधनों के साथ मांग के युग में प्रवेश कर रहे हैं, लोगों की सामान्य आकांक्षाएं हैं कि इसकी उपलब्धता सहज और गुणवत्ता बेहतर हो और उन्हें विशेषतः शिक्षा के उच्च स्तर पर विकल्प, वैविध्य और लचीलापन मिले। यहां तक कि पूर्ति प्रधान युग में भी अधिकांश नीतिगत दस्तावेज़ों में ऐसे लचीलेपन की आवश्यकता का उल्लेख है जो शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिये ज़रूरी रचनात्मकता को प्रोत्साहित करे। लेकिन जो संरचना हम बना पाए वह अपरिवर्तनशील और संवेदनहीन थी और उसका उदय उस क्षेत्रिज विस्तार का परिणाम था जिसे वांछनीय नहीं माना जाता।

1986 की शिक्षा नीति के एक अनुच्छेद में स्कूली शिक्षा के तहत शिक्षक प्रशिक्षण को ठीकठाक करने का उल्लेख किया गया है। इसमें जिला शैक्षणिक प्रशिक्षण संस्थान खोलने की सिफारिश की गई और घटिया प्रशिक्षण संस्थानों को क्रमशः बंद कर देने और शिक्षा विभागों और इस प्रकार की अच्छी चीज़ों के बीच संपर्क स्थापित करने की भी बात कही गई। इसका परिणाम, जैसा कि उम्मीद थी, यह हुआ कि देशभर में जिला शैक्षणिक प्रशिक्षण संस्थान खोल दिए गए लेकिन घटिया संस्थानों को क्रमशः बंद करने की जगह हमने ऐसे घटिया संस्थान खोल दिए जिनकी न तो कोई भूमिका थी और न ही वे काम कर सके। इसके अगले वर्षों में और कदम डाए गए और हर विकास खंड में एक विकास खंड संसाधन केंद्र और हर 10-15 स्कूलों के लिये समूह संसाधन केंद्र खोले गए। इन ब्लॉक और जिला स्तर के केंद्रों के ऊपर राज्य स्तर के निकाय हैं – शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण राज्य परिषद। इनसे उम्मीद की जाती है कि वे नेतृत्व प्रदान करेंगी। इनकी सर्वोच्च संस्था है राष्ट्रीय शैक्षणिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद। अगर सरकारी भाषा में कहें तो ये सभी संस्थाएं काम कर रही हैं, लेकिन इनके

परिणाम क्या हैं?

शैक्षणिक स्थिति की वार्षिक रिपोर्ट (2005 एवं 2006) में सीखने के एकदम बुनियादी स्तर पर बच्चों के पढ़ने, लिखने और गिनने आदि सीखने की स्थिति का आकलन करने की कोशिश की गई है। मोटे तौर पर निष्कर्ष इस प्रकार रहे :

- कक्षा-1 के लगभग आधे बच्चे अक्षर और गिनती नहीं पढ़ पाते। बाकी अक्षर पढ़ लेते हैं लेकिन शब्द नहीं पढ़ सकते।
- कक्षा-3 के आधे बच्चे कक्षा-1 स्तर की किताब पढ़ लेते हैं और घटाने के सवाल भी कर लेते हैं।
- कक्षा-5 के आधे बच्चे कक्षा-2 की किताब पढ़ सकते हैं और जो तेज़ी से पढ़ लेते हैं, वे उसे समझ भी लेते हैं, बशर्ते कि उसमें ऐसी बातें न हों जो सिफर पढ़ने से ही समझ आने वाली न हो। साथ ही, कक्षा-5 के केवल आधे बच्चे ही तीन अंकों वाली संख्या को एक अंक की संख्या से भाग दे सकते हैं।

हाँ, यह भी सच है कि शासन व्यवस्था ने हर बस्ती के एक किलोमीटर दूरी के अंदर पर स्कूल खोल दिए हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बिहार को अगर अपवाद मानें तो 6-10 वर्ष आयु वर्ग के 95 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं। 11-14 वर्ष आयु वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों की औसत संख्या 90 प्रतिशत है। जिन राज्यों में स्कूल जाने की आदत नहीं पड़ी है, उन्हें अगर छोड़ दें तो विद्यालयों में उपस्थिति भी काफी अच्छी है।

खास बात यह है कि सरकारी व्यवस्था पहले जहां प्रत्यक्ष लक्ष्यों और पहुंच सुनिश्चित करने के लिये निधियों के खर्च करने को ज्यादा महत्वपूर्ण मानती थी, वहीं अब वह विद्यालय के भवन निर्माण, शिक्षकों की भरती आदि का काम करने लगी है। लेकिन जहां मानवीय तत्व महत्वपूर्ण होते हैं, गुणवत्ता के मुद्दे, प्रभावशीलता और कुशलता का सवाल होता है, यह व्यवस्था बुरी तरह विफल रही है। उच्च शिक्षा के संदर्भ में, जहां उच्च वर्गों

के हित अधिक हैं, जल्दी परिवर्तन किए गए हैं लेकिन अगर प्रारंभिक शिक्षा की बात करें तो यह क्षेत्र सुधार में काफी पीछे है।

भारत को शिक्षित और इसके अंतिम गांव तक तकनीकी संसाधन विकसित करना सचमुच ही एक विशाल कार्य है। नियोजन, प्रबंधन और शिक्षण दक्षता की कमी है। हमारे देश में साक्षरता का वर्तमान स्तर पश्चिमी यूरोप के 1850 के स्तर के बराबर है। हम लोग एक औद्योगिक क्रांति के भी नज़दीक हैं। भले ही भारत के शीर्ष वाले सुनिश्चित लोग दुनिया के किसी सुशिक्षित व्यक्ति से बेहतर हैं, लेकिन मध्य और निम्न वर्गों के लोग इस तेज़ी से आधुनिक बन रहे विश्व से पीछे हैं। इस समय महत्वपूर्ण काम यह है कि समाज में ऐसी क्षमता निर्मित की जाए जिसकी सहायता से शिक्षा प्रक्रिया में सुधार लाया जा सके। जब तक ऐसी क्षमता का निर्माण नहीं किया जाएगा, हम अपने लोगों को शिक्षित नहीं कर पाएंगे और जब तक हमारे पास काफी संख्या में शिक्षित और प्रशिक्षित लोग नहीं होंगे, हम क्षमताओं का सृजन नहीं कर सकेंगे।

इस संदर्भ में गैर-क्षेत्रिज विस्तार और सुधार का मुद्दा महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस प्रवृत्ति का भी कुछ खास लाभ नहीं होने वाला। आप ज्यादा लोगों को काम पर लगाएं, ज्यादा पैसा खर्च करें और उम्मीद करें कि हालत बेहतर हो जाएगी। यह सच है कि वर्तमान स्थिति इतनी बुरी है कि अगर सीखने में सुधार पर कुछ ज्यादा ध्यान दिया जाए तो भी कुछ समय के लिये थोड़ी राहत हो सकती है। लेकिन अगर गुणवत्ता में सुधार लाना है तो और भी बहुत कुछ करना होगा। बिना व्यवस्था को पुनरुन्मुख किए अथवा सुधारे अगर ज्यादा पैसा खर्च किया जाता है तो यह दीघावधि में पैसे की बबादी सिद्ध होगा।

वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों पर व्यवस्था राशि 2007-08 में 162 करोड़ से बढ़ा कर 450 करोड़ रुपये कर देने का प्रस्ताव किया है। संभवतः यह

राशि इन संस्थानों में प्रशिक्षकों की नियुक्ति पर खर्च की जाएगी। उनके लिये उपकरणों की खरीद और उन्हें ठीकठाक करने में यह व्यवस्था किया जा सकता है। लेकिन हम केंद्रीय क्षेत्र में एक ही विभाग के नियंत्रण में रखते हुए इन्हें संचालित करने का सरकारी नियंत्रण बाला ढरा अपनाएंगे और अप्रभावी तंत्र का विस्तार करेंगे? हम अध्यापक प्रशिक्षण का कौन-सा मॉडल अपनाने जा रहे हैं? ये अध्यापक किस व्यवस्था के तहत काम करेंगे? अगर बाकी व्यवस्था वही रही तो क्या ये संस्थान ठीक काम कर पाएंगे?

पहला काम होगा व्यवस्था को परिणामोन्मुख बनाना। इसका मतलब शिक्षा विभिन्न स्तरों पर भिन्न हो सकता है और इसे करने के भिन्न-भिन्न तरीके हो सकते हैं। प्रारंभिक स्तर पर ज्ञान की अपेक्षा दक्षता पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। जब बच्चा निःशुल्क और अनिवार्य चरण पूरा कर ले अर्थात् माध्यमिक चरण पूरा कर ले तो पाद्यपुस्तकों के ज्ञान की अपेक्षा प्रमाणन के लिये रुझान परीक्षण को आधार बनाया जाना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर जिन उपलब्धियों की उम्मीद की जाती है उनका विवरण पारदर्शी तरीके से सुनिश्चित मापदंडों के अनुसार स्पष्ट किया जाना चाहिए। इससे शिक्षा का ज़ोर रटंट शिक्षा की जगह दक्षता शिक्षा पर होगा। यह थकाऊ किस्म की शिक्षा नहीं होगी। बच्चों को यह आज़ादी होनी चाहिए कि वे किसी सुनिश्चित समय पर परीक्षा देने की जगह कभी भी, जब वे तैयार हों मानकीकृत-राज्य परीक्षाएं दें सकें। इसका मतलब यह नहीं कि ज्ञान की उपेक्षा की जाए। ज्ञान आधारित परीक्षाएं अलग से होनी चाहिए और विषयानुसार विभिन्न स्तरों पर छात्रों को प्रमाणित करने वाली संस्थाएं हों। वस्तुतः छात्रों द्वारा ज्ञान पाद्यक्रमों को पारंपरिक स्कूली पाद्यक्रमों के द्वारा सीमित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी परीक्षा में शामिल होने के लिये छात्र को किसी विद्यालय में नाम लिखाना ज़रूरी नहीं होना चाहिए और कोई आयु सीमा भी नहीं होनी चाहिए।

दूसरा काम है इस व्यवस्था का विकेंद्रीकरण। इसका भी प्रमुख अंश है निधियों का प्रबंध। सरकार की भूमिका स्कूलों की संचालक और प्रबंधक एजेंसी होने के बजाए इनके लिये संसाधन जुटाने, सुविधाएं प्रदान करने और वैसे नियामक की होनी चाहिए जैसा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों के लिये होता है। सिद्धांत रूप से हमें वह व्यवस्था अपनानी चाहिए जिसमें सभी स्कूल सरकारी संसाधनों से चले और इनका प्रबंधन स्थानीय और निजी संस्थानों द्वारा किया जाए। शिक्षा का अधिकार - 2005 विधेयक में दो प्रमुख सुधारों का प्रस्ताव किया गया है - पहला अध्यापकों की नियुक्ति विनिर्दिष्ट स्कूलों के लिये हो, राज्य पूल के लिये नहीं और उनकी नौकरी स्थानांतरण योग्य न हो। दूसरा स्कूलों के लिये स्कूल प्रबंधन समितियां गठित की जाएं और सारी परिसंपत्तियां इन्हें सौंप दी जाएं। इन दोनों सुधारों के पक्ष में एक तीसरा सुधार भी करना होगा कि स्कूलों के लिये धनराशि उन्हें सीधे उपलब्ध कराई जाए। इसके बिना स्कूल प्रबंधन समिति को सचमुच नियंत्रण नहीं मिल पाएगा। यह स्वाभाविक होगा कि निधियां उपलब्ध कराने का आधार उस स्कूल में आने वाले बच्चों की संख्या हो। इसके अनुसार सरकार के हर स्तर की एजेंसियां स्कूलों के लिये अपना आर्थिक योगदान तय करें और उसे सीधे स्कूल के खाते में हस्तांतरित कर दें। सूचना टेक्नोलॉजी और बैंकों की मदद से अब दूरदराज के इलाकों को भी धन इलेक्ट्रॉनिक तरीके से भेजा जा सकता है। सर्व शिक्षा अभियान को इससे लाभ मिल रहा है। स्थिति में गुणात्मक सुधार तब आएगा जब भारत सरकार हर बच्चे के पीछे 500 रुपये का योगदान करे। ऐसी स्थिति में 6-14 वर्ष की आयु वर्ग के 20 करोड़ बच्चों के लिये सरकार को 10,000 करोड़ रुपये की राशि देनी होगी। यह लगभग उस राशि के बराबर है जो 07-08 में सर्वशिक्षा अभियान के लिये बजट में रखी गई है। इसमें दोपहर के भोजन का व्यय शामिल नहीं है। वर्तमान

समय में सर्वशिक्षा अभियान की राशि का अधिकांश भाग पिछड़े राज्यों को जाता है। अतः संक्रमण अवधि के लिये पिछड़े राज्यों को बुनियादी सुविधाओं के सृजन के लिये अतिरिक्त सहायता दी जानी चाहिए ताकि वे अन्य राज्यों की बराबरी पर आ जाएं। यह उन विकसित राज्यों के लिये भेदभावपूर्ण लग सकता है जिन्होंने वर्षों से अपने यहां स्कूलों के निर्माण पर पैसा निवेश किया है। लेकिन यहां सवाल बच्चों के प्रति निष्पक्ष होना है - राज्यों के प्रति नहीं। केंद्र सरकार द्वारा समानता आधारित रास्ता अपनाने का एक तरीका यह हो सकता है कि वह सभी स्कूलों के सभी बच्चों को समान राशि दे। सरकार के इस निवेश के बदले कुछ न्यूनतम शिक्षण लक्ष्य प्राप्ति की मांग इसे विभिन्न राज्य, जिले और उप जिले के प्रशासन की ओर से भी इसी प्रकार के अनुदान दिए जा सकते हैं। स्कूल प्रबंधन समिति/पंचायत को दान अथवा स्थानीय करों के जरिये भी संसाधन जुटाने की आज़ादी होनी चाहिए।

आज राज्यों और शहरों में शिक्षा पर प्रति बच्चा वार्षिक व्यय की गणना करना मुश्किल है और यह कुछ पिछड़े राज्यों में 2,000 रुपये प्रति बच्चा से लेकर एक महानगर के म्युनिसिपल स्कूल को 17,000 रुपये तक हो सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर इस समय शिक्षा व्यय प्रति बच्चा पीछे 4,000 रुपये प्रतिवर्ष बैठता है। इसका मतलब यह है कि 330 रुपये मासिक की फीस हर बच्चे के लिये जा रही है। अगर प्रति बच्चे पीछे आने वाली लागत की गणना स्पष्ट हो जाए, तो ख़र्च की तुलना में उपलब्धियों का हिसाब लगाना आसान हो जाएगा। इससे व्यवस्था की जवाबदेही और कुशलता के सुधार में सहायता मिल सकती है।

तीसरा, शैक्षणिक समर्थक संस्थाओं के संजाल को पुनर्गठित करना होगा। आमतौर पर ये सरकार के स्वामित्व और सरकारी कर्मचारियों वाली संस्थाएं हैं। इनमें काम करने वाले लोग पदोन्नति पाकर अलग चले जाते

हैं। इनमें से अधिकांश संस्थाओं का न तो कोई स्वामी होता है, न हो कोई नेता और न ही कहीं से आर्थिक सहायता की आस। इन संस्थाओं को स्वायत्तशासी बना देना चाहिए और इन्हें तीन से पांच साल के लिये वित्तीय सहायता दी जाए जो पुतल के कामकाज और निष्पादन से जोड़ दी जाए। अगर मान लिया जाए कि बुनियादी ढांचा मौजूद है तो इन्हें सरकार की स्वामित्व वाली संस्था से स्वायत्तशासी बनाने में समस्याएं हो सकती हैं लेकिन इन समस्याओं से निपटना होगा। यह भी संभव है कि इन्हें चलाने के लिये विभिन्न शिक्षा संस्थाओं और गैरसरकारी संगठनों से प्रस्ताव मांगा जाए। इन संस्थाओं को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि यदि वे चाहें तो अन्य स्रोतों से वित्तीय सहायता पाने की कोशिश करें और ऐसे पाठ्यक्रम चलाएं जिससे उन्हें राजस्व मिल सके।

शिक्षा व्यवस्था से बाहर भी काफी अधिक मानव एवं तकनीकी संसाधन हैं जो शिक्षा के काम से संबंधित नहीं हैं। ऐसे रचनात्मक तरीके विकसित किए जाने चाहिए कि इन तक पहुंचा जा सके। गांवों में और राजधानियों में यह व्यवस्था अलग-अलग रह कर काम करती है। बड़े पैमाने पर लोगों को लाभान्वित करने के लिये अलग-थलग रह कर काम करने की प्रवृत्ति दूर की जानी चाहिए।

चौथा, आज की प्रमुख ज़रूरत है विभिन्न शिक्षा संस्थानों के निष्पादन को परखने के लिये एक भरोसेमंद, स्वतंत्र तंत्र की जो उनकी प्रगति पर नज़र रखे और उनका मूल्यांकन करे। इस प्रकार की कोई व्यवस्था है ही नहीं। संभवतः प्रथम की वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट एकमात्र रिपोर्ट है जिसमें हर वर्ष राष्ट्रीय, राज्य और जिलावार शिक्षा स्थिति का स्वतंत्र मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन को और उन्नत और विस्तृत बनाया जा सकता है। इसके लिये शिक्षा पर होने वाले व्यय के 0.5 प्रतिशत से भी कम राशि ख़र्च करनी होगी। अगर शिक्षा उपकर से प्राप्त राशि का एक छोटा भाग इस काम पर ख़र्च किया जाए तो

यह बहुत महत्वपूर्ण होगा। इसके लिये योजना आयोग अथवा एक स्वतंत्र शिक्षा आयोग को (मानव संसाधन विकास मंत्रालय नहीं) नोडल एजेंसी बनाया जा सकता है, जो इस मूल्यांकन का प्रशासन करे। ऐसा करने से मूल्यांकनकर्ता कार्यान्वयन मंत्रालय से दूर रह सकेंगे। इस तरह का मूल्यांकन सामाजिक क्षेत्र की सभी स्कीमों के लिये कराया जा सकता है।

मेरे हिसाब से स्कूल व्यवस्था में ये चार प्रमुख सुधार होंगे। इन्हें स्कूली व्यवस्था में प्रमुख क्षैतिज सुधारों का मुख्याधार बनाया जा सकता है। अगर इस प्रकार के सुधार न लाए गए तो भविष्य की ज़रूरतें पूरी नहीं हो पाएंगी।

मानव इतिहास में इस समय पहली बार ऐसा अवसर आया है जब ऐसी स्थिति बन रही कि अगर किसी के पास ज़रूरी दक्षता एवं ज्ञान का आधार है तो ज्ञान तक पहुंच सकता है भले ही वह कहीं भी रहता हो अथवा समाज के किसी भी वर्ग से संबंध रखता हो। प्रमुख बाधाएं अगर कोई हैं तो वे हैं इस पर आने वाली लागत और नियंत्रण। अन्य शब्दों में, ज्ञान तक पहुंच इस बात पर निर्भर करेगी कि आप इसके लिये कुछ ख़र्च कर सकते हैं अथवा नहीं। नयी टेक्नोलॉजी पुरानी आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं और विचारों को भी चुनौती दे रही हैं ताकि ज्ञान तक सबकी पहुंच और सुगम बन सके। लेकिन जब तक पुरानी व्यवस्था को माकूल नहीं बनाया जाता तब तक समय, प्रयास और धन बर्बाद होता रहेगा।

इस संदर्भ में सूचना टेक्नोलॉजी में महाराष्ट्र राज्य प्रमाणन एक प्रमुख कदम है जिसे कंप्यूटर साक्षरता की बढ़े ऐमाने पर ज़रूरत पूरी करने के लिये उठाया गया है। कंप्यूटर साक्षरता न सिर्फ़ दफ़तरों में काम करने में उपयोगी है वरन् इसके जरिये उच्च दक्षता भी प्राप्त की जा सकती है। इसकी वेबसाइट में आवश्यक योग्यता बताइ गई है 'सूचना टेक्नोलॉजी का ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा'। शैक्षणिक योग्यता दसर्वी कक्षा पास वांछनीय कहा गया

है। इसके लिये कोई छात्र ऑनलाइन पंजीकरण करा सकता है। फीस रखी गई है, 720 रुपये। परीक्षा फीस 230 रुपये प्रति प्रयास है। यदि छात्र किसी सूचीबद्ध केंद्र पर जाना चाहता है तो पाठ्यक्रम शुल्क अधिक अर्थात् 1980 रुपये देना होगा। शुल्क किसी में देना भी संभव है। ऐसे मामले में थोड़े पैसे और देने होंगे क्योंकि अध्ययन सामग्री भी दी जाती है। केंद्र संचालकों को छात्र से वसूली गई लगभग 50 प्रतिशत परीक्षा फीस दे दी जाती है जिसे वे अपनी आय मान सकते हैं। अनेक संचालक अपने हिस्से का एक अंश छात्रों को दे देते हैं क्योंकि कड़ी प्रतिस्पर्धा है। इसकी परीक्षा ऑनलाइन होती है और प्रमाणपत्र सरकारी नौकरी का एक महत्वपूर्ण मापदंड होता है। अनेक अन्य नियोक्ता भी इसको दक्षता का आधारभूत प्रमाण मानते हैं। कम से कम दो बैंकों के नाम तो सूचीबद्ध हैं जो उन उद्यमियों को ऋण देने को तैयार हैं जो ऐसे केंद्र खोलना चाहते हैं।

क्या अन्य प्रमाणन के लिये भी इसी प्रकार की व्यवस्था संभव नहीं है? इसके विषय हो सकते हैं - लेखन, संचार, लेखाकरण, वाहन मरम्मत, प्लंबर का काम, बढ़ी का काम या फिर इसी तरह का कोई अन्य काम। इसकी उस व्यावसायिक प्रशिक्षण व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती जिसे शुरू किए जाने का कार्यक्रम है। परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में भी यह तरीका अपनाया जा सकता है। कल्पना कीजिए एक ऐसी स्थिति की, जब किसी भी स्कूल की कोई छात्रा या छात्र यह तय करे कि उसे किसी राज्य के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की परीक्षा में बैठना चाहिए। यही बात डिग्री परीक्षाओं पर भी लागू होनी चाहिए। किसी छात्र के प्रमाणन का विकल्प इस बात पर क्यों निर्भर करे कि उसने किस स्कूल या कॉलेज से शिक्षा ग्रहण की है।

डिग्री और नौकरियों को अलग करने पर भी काफी चर्चा होती रही है। लेकिन कोई शिक्षा व्यवस्था डिग्री और नौकरियों को अलग नहीं कर सकता। बाज़ार को वही भूमिका

निभानी है जो वह अब निभा रही है। बाहर से ठेके पर व्यावसायिक काम कराने (बीपीओ) को, यदि ग्राहक सेवा जैसा कोई काम कराना है, तो उसे शायद इस बात की चिंता नहीं होगी कि उसने कौन-सी परीक्षा पास की है। उसे तो विशेष रूप से यही देखना होगा कि उसे ठीक से अंग्रेजी बोलनी आती है अथवा नहीं। सूचना टेक्नोलॉजी से संबंधित निचले स्तर के काम में प्रमाणन डिग्री से ज्यादा महत्वपूर्ण है। उत्पादन उद्योगों में, प्रशिक्षित किए जा सकने वाले व्यक्ति को ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है, अनेक डिग्रीधारक को नहीं। जैसे-जैसे नौकरियों की संख्या डिग्रीधारी लोगों के मुकाबले बढ़ेगी, खास दक्षता को ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाएगा, विषय के संपूर्ण ज्ञान को नहीं। ऐसी स्थिति में डिग्रियों और नौकरियों में अधिक संबंध नहीं होगा।

शिक्षा संबंधी भारत की समस्याएं एक विशेष वर्ग में आती हैं। कुछ प्रकार की समस्याएं वे हैं जो हमारी अतीत की आर्थिक-सामाजिक स्थिति के कारण इकट्ठी हुई हैं। कुछ अन्य समस्याएं हैं जिन पर हमें भविष्य के लिये तैयार होने के उद्देश्य से ध्यान देना है। दूसरी तरफ, मात्रा की समस्याएं हैं और गुणवत्ता की समस्याएं हैं। अतीत की समस्याएं अधिकांशतः भावात्मक हैं और ये बुनियादी साक्षरता तक पहुंच से संबंधित हैं। भविष्य की समस्याएं ज्यादातर गुणवत्ता की हैं। शिक्षा संगठनों को मात्रा पर ध्यान देने की आदत है। गुणवत्ता में सुधार का वर्तमान चिंतन, चाहे कितना ही प्रगतिशील जान पड़े, लगाए जा रहे संसाधनों पर केंद्रित है। हम 'चौराहे' खड़े हैं और हमें यह विकल्प चुनना है कि क्षैतिज विकास के पक्ष में काम जारी रखें या फिर यह दृष्टिकोण छोड़ कर, प्रगतिशील शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दें ताकि अगले दशक में भारत एक साक्षर देश नहीं, अपितु सुशिक्षित देश बन सके। □

(लेखक प्रथम के संस्थापक सदस्य एवं निदेशक : कार्यक्रम हैं। वह भारत सरकार की राष्ट्रीय सलाहकार समिति के सदस्य भी हैं)

IAS 2007 Results **103**

7 in top 50
19 in top 100
Total selections 103

UNPARALLELED ACHIEVEMENTS

In the past six years, Interactions IAS Study Circle is credited to have illuminated the career graph of 2 IAS toppers, 24 rankers in top 20, 54 in top 50 and altogether 430 successful Candidates.



Alok Ranjan Jha
(2001)



S. Nagarajan
(2005)

R
A
N
K

15

हिन्दी माध्यम में सर्वोच्च स्थान



Shainamola
AIR - 20

Atul Kumar
AIR - 22

Sachindra PS
AIR - 26

Abhay
AIR - 33

Arda Agarwal
AIR - 41

Sanjay K Singh
AIR - 42

Sailesh K C
AIR - 44

The National Leader in IAS Entrance Training

सामान्य अध्ययन

GSFOUNDATION

समग्र समाधान

2008-09

Prelim-cum-Main Comprehensive GS Training Programme

The BEST EVER GS TEAM (हिन्दी माध्यम)

अद्भुत क्षण

30 hours with
Shashank Atom

इतिहास व संस्कृति

By YD Mishra
& AK Jha

भारतीय राजव्यवस्था

By Manoj K Singh & Dr.
CK Singh

भारतीय अर्थव्यवस्था

By PK Jha &
Arunesh Singh

भूगोल एवं पर्यावरण

संबंधी मुद्रे

सामान्य विज्ञान

By Dr. Shashi Shekhar
(Physics & Chemistry) &
JP Narayan (Bio)

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

Section-wise panel of
experts (Jojo Mathews,
Dr. Sheelwant Singh
& JP Narayan)

समसामयिकी

By Dr. Sheelwant Singh
& Dr. SP Jha

सांख्यिकी व मानसिक

योग्यता
By Arvind Singh

मानचित्र अध्ययन

By BM Panda

हमारी कक्षागत योजना (Programme Highlights)

कालक्रम-बद्ध पाठ्यक्रम : • 500+ घंटे का क्लासरूम प्रशिक्षण • कक्षा प्रारंभ में परीक्षा संबंधी रणनीति व GS Basics की जानकारी • राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व समसामयिक विषयों की तैयारी हेतु विश्लेषणात्मक प्रशिक्षण व्यवस्था • सामान्य ज्ञान (GK) अभिवर्धन पर विशेष बल • कक्षा प्रारंभ के पूर्व ही पाठ्य सामग्री का वितरण • कम्प्यूटर/प्रोजेक्टर आधारित प्रशिक्षण योजना • शंका समाधान सत्र • पाठ्यक्रम पुनरावलोकन सुविधा।

लेखन कौशल संवर्धन कार्यक्रम : • मुख्य परीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर लेखन का अभ्यास (250 शब्द, 150 शब्द, 20 शब्द) • लेखन शैली पर हमारे IAS Toppers द्वारा Orientation Programme. • परीक्षा टेस्ट की व्यवस्था • 15 प्रारंभिकी टेस्ट सिरीज व्याख्या सहित(PTSP) • 6 मुख्य परीक्षा टेस्ट सिरीज व्याख्या सहित।

Programme Director
Manoj Kumar Singh (Managing Director, ALS)

कक्षा प्रारंभ

17 अगस्त

समय : 3:30pm to 6:30pm



IAS Study Circle
interactions
Shaping dreams into success

Alternative Learning Systems (P) Ltd.

Corporate Office: B-19, ALS House, Commercial Complex, Dr Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph. 27651700, 27651110 • South Delhi Centre : 62/4, Bar Sarai, Delhi-16, Ph. 26861313
Mobile Nos. 9910600202, 9910602288

IAS 2007 Results : 7 in TOP 50

YH/8/7/11

योजना, अगस्त 2007

ALS

Foundation Course at ALS

(हिन्दी माध्यम)

In the past six years, ALS is credited to have illuminated the career graph of 2 IAS toppers, 24 rankers in top 20, 54 in top 50 and altogether 430 successful Candidates.

Admission Notice | IAS 2008-09

सामान्य अध्ययन

*Under the expert guidance of
Manoj Kumar Singh
(Managing Director ALS, Competition Wizard)*

इतिहास by YD Misra

**समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान
लोकप्रशासन, दर्शनशास्त्र**

*Under the expert guidance of
a Panel of Experts
from DU, JNU & Allahabad University*

All Batches Begin : August 17

IAS आधार

A 1-year Foundation Course

The Best IAS
preparatory course
in India for basic
& advance level
in हिन्दी माध्यम

सामान्य अध्ययन (Foundation & Advance Level) प्रशिक्षण + वैकल्पिक विषय (ग्रा.+मुख्य) प्रशिक्षण कार्यक्रम
+ करेंट अफेयर्स क्लैस कोर्स (ग्रा.+मुख्य) + द्वितीय वैकल्पिक विषय (मुख्य परीक्षा) प्रशिक्षण कार्यक्रम
+ साक्षात्कार प्रशिक्षण कार्यक्रम + सामान्य अध्ययन टेस्ट सिरीज कार्यक्रम (ग्रा.+मुख्य) + वैकल्पिक विषय टेस्ट
सिरीज कार्यक्रम (ग्रा.+मुख्य) + नियन्त्रण लेखन प्रशिक्षण कार्यक्रम + अनिवार्य अंग्रेजी प्रशिक्षण कार्यक्रम

Fees : Rs 45,000

Seats : 70 only

उपलब्ध वैकल्पिक विषय
भूगोल, लोकप्रशासन, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, दर्शनशास्त्र, हिन्दी साहित्य

Batches Begin : August 17

Alternative
Learning
Systems

interactions
IAS Study Circle
Shaping dreams into success

Alternative Learning Systems (P) Ltd.

Corporate Office: B-19, ALS House, Commercial Complex, Dr Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph. 27651700, 27651110 • South Delhi Centre : 62/4, Ber Sarai, Delhi-16, Ph. 26861313
Mobile Nos. 9810312454, 9810269612

YH/8/7/12



"ये भारत के नये मंदिर हैं जहां मैं पूजा करता हूँ " पं. जवाहरलाल नेहरू ने भाखड़ा नंगल बांध का
31 दिसंबर, 1956 को चीन के प्रधानमंत्री चाउ एन लाइ के घ्रमण के दौरान व्यक्त किए थे।

(योजना अभिलेख से)

1857

1947

2007

स्वतंत्र भारत की अतुल्य यात्रा

भारत में बैंकिंग : पुनरावलोकन

○ ओ.पी. भट्ट

अनंतकाल से भारत में बैंकिंग होती रही है। शुरू-शुरू में यह केवल कर्ज़ देने वाली प्रणाली भर थी, जिसमें ब्याज की दर लेन-देन के तौर तरीके पर नहीं, बल्कि कर्ज़ लेने वाले की जाति के हिसाब से तय होती थी। प्रख्यात अर्थशास्त्री एल. सी. जैन अपनी पुस्तक इंडिजेनस बैंकिंग इन इंडिया में लिखते हैं कि ब्राह्मणों को 24 प्रतिशत, क्षत्रियों को 36 प्रतिशत, वैश्यों की 48 प्रतिशत और शूद्रों को 60 प्रतिशत की दर से ब्याज देना होता था, हालांकि वैधानिक दर कुल 15 प्रतिशत ही थी। उस समय जमा करने की प्रथा नहीं थी। यूरोपीयों के भारत में आते-आते भारतीय बैंकिंग घराने ज्यादा संगठित हो चुके थे। उनमें से कई के संपर्क तो उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों से भी बन चुके थे। उनका नेटवर्क कोठियों और एजेंसियों के जरिये देश के कई भागों में फैल चुका था। वे अन्य बैंकरों (महाजनों), जर्मानों, व्यापारियों और राजा-महाराजों को आड़े बृक्ष में पैसे से मदद करने के अलावा देसी रजवाड़ों से भी निकट संबंध बनाए रखते थे।

अंग्रेज़ों ने भारत में पहली बार सीमित दायित्व वाली संयुक्त पूंजी बैंकिंग प्रणाली की शुरुआत की। बैंक ऑफ कलकत्ता के जन्म के तीन वर्ष बाद ही एक आदेश जारी कर 1809 में बैंक ऑफ बंगाल की स्थापना की गई। 1840 में बैंक ऑफ बांबे और उसके तीन वर्ष बाद बैंक ऑफ मद्रास अस्तित्व में आए। 1860 के कंपनी

अधिनियम के पारित होने के पहले भारत में जो इतिहास संयुक्त पूंजी वाली कंपनियों का रहा वही करीब-करीब बैंक ऑफ बंगाल, बांबे और मद्रास सरीखे चार्टर्ड बैंकों का रहा। ये तीनों बैंक, ब्रिटिश भारत में शीर्ष बैंकिंग प्रणाली के सर्वोच्च स्तर पर थे। ये बैंक मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में धन लगाया करते थे और कंपनी सरकार को उनकी तीन प्रेसीडेंसियों में समय-समय पर कर्ज़ वैगरह दिया करते थे। संबंधित प्रेसीडेंसियों में वे सरकारी बैंकरों की तरह काम करते थे। बंगाल, बांबे और मद्रास की तीन प्रेसीडेंसियों में कार्यरत इन बैंकों के विलय से 1921 में अस्तित्व में आए इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया की स्थिति में भी कोई बदलाव नहीं आया। 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व इंपीरियल बैंक वाणिज्यिक बैंक और केंद्रीय बैंक, दोनों का ही काम करता था। इसके बाद यह बैंक शुद्ध रूप से वाणिज्यिक बैंक बन गया और भारतीय बैंकिंग उद्योग में अग्रणी स्थान हासिल कर लिया।

भारतीय उपमहाद्वीप के दूरदराज के क्षेत्रों की ऋण ज़रूरतों को पूरा करने की गरज से 19वीं शताब्दी में, यूरोपीय और भारतीय नियंत्रण के तहत अनेक निजी संयुक्त पूंजी वाली बैंकों का गठन हुआ। इनमें से यूरोपीय नियंत्रण वाले आगरा और यूनाइटेड सर्विसेज़ बैंक और एलायंस, बैंक ऑफ शिमला, वित्तीय गड़बड़ियों के कारण अंततः बंद हो गए। इसके अलावा भारतीय प्रबंधन के अधीन कई अन्य बैंकों में भी, खासकर जो बांबे और पंजाब में

थे, 1913 और उसके बाद 1930 और 1940 के दशक के बैंकिंग संकट में ताला लग गया। 1913-14 के संकट के दौरान 15 करोड़ 47 लाख रुपये के कुल चुकाता पूंजी वाले 57 बैंक (अधिकांश पंजाब के) संकट में ढूब चुके थे। बैंकों के नाकाम होने का सिलसिला उसके बाद भी जारी रहा। 1939 और 1949 के बीच का समय सबसे कठिन था, जिसके दौरान 647 बैंक बंद हो गए और उनमें जमा लोगों के बचत खाते के 26 करोड़ रुपये भी ढूब गए। निवेश, शाखाओं के विस्तार और जमा खातों के बारे में अपनाई गई ग़लत नीतियों के कारण बैंकों की यह स्थिति हुई। इन असफलताओं ने ही 1949 में बैंकिंग कंपनी अधिनियम के नाम बाद में बदल कर बैंकिंग नियमन अधिनियम हो गया। 1949 और 1950 के दौरान बैंकिंग कंपनी अधिनियम में अनेक परिवर्तन हुए। उनका उद्देश्य बैंकों के विलय की प्रक्रिया को सरल बनाने के अलावा नीति संबंधी विषयों पर बैंकों को निर्देश देने का अधिकार रिज़र्व बैंक को प्रदान करना था। इससे रिज़र्व बैंक यह सुनिश्चित करने में सफल हुआ कि वे गैर-अधिसूचित बैंक जो न्यूनतम पूंजी की अनिवार्यता के निर्धारित मानकों को पूरा नहीं करते थे, बंद कर दिए जाएं। इसके अलावा वे बैंक भी जो बैंकिंग कारोबार के साथ-साथ गैरबैंकिंग गतिविधियों में भी लिप्त थे, उन्हें भी रिज़र्व बैंक के निर्देश पर बंद कर दिया गया। हालांकि इनमें से अनेक निजी संयुक्त पूंजी वाले बच गए और

कालांतर में तरक्की कर गए। इनमें प्रमुख हैं - इलाहाबाद बैंक (1865) और पंजाब नेशनल बैंक (1895), उत्तर में; कैनरा बैंक (1906) और इंडियन बैंक (1906), दक्षिण में बैंक ऑफ इंडिया (1906) और सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (1911), पश्चिम में।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अनेक विनियम बैंकों का आविर्भाव हुआ। देश में तेज़ी से बढ़ रहे विदेश व्यापार की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये ही इन बैंकों की शुरुआत हुई, क्योंकि तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों और इंपीरियल बैंक (रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व) को इस तरह के कारोबार में भाग लेने की सख्त मनाही थी। ब्रिटिश संसद द्वारा प्राधिकृत अथवा यूरोप में कंपनियों के तौर पर गठित इन बैंकों में भारत, आस्ट्रेलिया और चीन के चार्टर्ड बैंक; चार्टर्ड मर्केटाइल बैंक ऑफ इंडिया, लंदन और चीन; हांगकांग एंड शंघाई बैंकिंग कार्पोरेशन; दी कांप्टोयर, एस्काम्प्टे दे पेरिस और इसी तरह के कुछ अन्य बैंक शामिल थे।

भारतीय बैंकिंग उद्योग के औपचारिक क्षेत्र के उपर्युक्त घटकों के साथ-साथ, बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सहकारी ऋण समितियों का भी गठन किया गया था, जिन्हें भारतीय कृषि जगत की ऋण संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने का काम सौंपा गया। बंबई, मद्रास और पंजाब प्रांतों को छोड़कर दुर्भाग्यवश अन्यत्र इस दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई। 1951-52 में प्राथमिक कृषि साख समितियों ने जो कुल ऋण वितरित किए, उनमें से 64 प्रतिशत कर्ज़ केवल बंबई और मद्रास प्रांतों में ही दिए गए।

1947 के अंत तक देश में 654 अधिसूचित, गैरअधिसूचित और विनियम बैंक थे। इनकी कुल 500 शाखाएँ थीं और इनमें कुल 11 अरब 53 करोड़ 45 लाख रुपये की राशि जमा थी और 5 अरब 20 करोड़ 29 लाख रुपये के अग्रिम (ऋण) जारी किए गए थे। प्रति बैंक कार्यालय औसत जनसंख्या 1916 में साढ़े आठ लाख थी जो 1947 में घटकर 70 हज़ार रह गई थी। अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार यह संख्या भी काफी अधिक थी।

बड़े शहरों और व्यापारिक केंद्रों के बाहर बैंकिंग सुविधाओं का जो सर्वथा अभाव रहा,

उसके कारण ग्रामीण आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा निजी तौर पर कर्ज़ देने वाले महाजनों साहूकारों और व्यापारियों के चंगुल में फ़ंसता चला गया।

ग्रामीण ऋण के बारे में एक दीर्घकालिक नीति तैयार करने के लिये रिज़र्व बैंक द्वारा गठित अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण (एआईआरसीएस) की दिशानिर्देश समिति ने ग्रामीण ऋण प्रदान करने में बैंकिंग प्रणाली की ओर अपर्याप्तता की ओर ध्यान दिलाया। समिति ने सहकारी क्षेत्र को मज़बूत बनाने में सरकार की असफलता और ग्रामीण क्षेत्र पर साहूकारों के कसते शिकंजे की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया। समिति की जांच से पता चला कि निजी साहूकारों/महाजनों की गांवों में तूती बोलती है और कुल ग्रामीण कर्ज़ का क्रीब 70 प्रतिशत भाग इन्हीं साहूकारों और महाजनों के खाते में जाता है। इसमें सरकार, सहकारिताओं और वाणिज्यिक बैंकों का हिस्सा केवल 7.3 प्रतिशत ही है। परंतु सबसे दुखद बात तो यह है कि इस बहुत छोटे से हिस्से का भी अधिकांश भाग बड़े किसानों के ही हाथ लगा, छोटे किसान के हाथों में तो मामूली राशि ही पहुंची।

इस बात को महसूस करते हुए कि भारत में जो बैंक हैं वे निकट भविष्य में ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक पुनरुद्धार की तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ हैं। सरकार ने वाणिज्यिक बैंकिंग के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में सरकारी भागीदारी की अवधारणा को मूर्त रूप देने का निर्णय लिया। एआईआरसीएस की सिफारिश पर देश के सबसे बड़े इंपीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया ताकि बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों में भी किया जा सके। कृषि और लघु उद्योगों के लिये ऋण राशि का प्रवाह बढ़ाने और ग्रामीण बचत को बढ़ावा देने के लिये ऐसा करना आवश्यक समझा गया।

1 जुलाई, 1955 को संसद के कानून द्वारा भारतीय स्टेट बैंक के गठन के साथ ही भारतीय बैंकिंग प्रणाली के संसाधनों का क्रीब एक चौथाई हिस्सा सरकारी नियंत्रण में आ गया। चार वर्ष बाद पारित भारतीय स्टेट बैंक (सहायक बैंक) अधिनियम के फलस्वरूप

विभिन्न राज्यों से संबद्ध 8 और बैंक भी सहायक बैंकों के रूप में स्टेट बैंक की छत के नीचे आ गए।

स्टेट बैंक के अध्युदय के बाद बैंकिंग की अवधारणा में एक जबर्दस्त परिवर्तन आया। उसके केंद्रीय उद्देश्य में आया परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा। सुरक्षा पर ज्यादा ज़ोर देने के स्थान पर लोगों की ज़रूरत के मुताबिक कर्ज़ देने की नीति पर ध्यान दिया जाने लगा। शहरी क्षेत्र से निकल कर ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग का विस्तार उच्च वर्ग के साथ-साथ आम लोगों की बैंकिंग ज़रूरतों की पूर्ति के साथ-साथ आमतौर पर वाणिज्यिक गतिविधियों में लिप्त रहने वाले बैंक अब सामाजिक मकसद को पूरा करने वाली गतिविधियों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने की ओर भी ध्यान दे रहे थे। प्रमुख रूप से लाभ कमाने वाले वाणिज्यिक बैंक से सार्वजनिक उत्तरदायित्व निभाने वाले महान राष्ट्रीय संस्थान बनने की ओर प्रस्थान कोई आसान काम नहीं था। बैंक के लिये आवश्यक हो गया कि बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार ढलने के लिये अपने संगठन का आकार-प्रकार बदले और अपने पारंपरिक तौर-तरीकों से आगे जाकर पर्याप्त गतिशीलता अपनाए। इसमें बैंक की नीतियों को नयी दिशा देना, व्यापारिक पद्धतियों और व्यवहार में सुधार और सभी स्तरों पर कर्मचारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन शामिल था।

अपनी स्थापना के बाद से ही बैंक सार्वजनिक हितों को ध्यान में रखते हुए दोहरी भूमिका निभा रहा था। वाणिज्यिक बैंक के तौर पर पहले की तरह ही उद्योग और व्यापार की वित्तीय ज़रूरतें पूरी करने के साथ ही एक राष्ट्रीयकृत संस्था के रूप में देश के दूरदराज़ क्षेत्रों में शाखाओं का विस्तार कर विकास और सामाजिक दायित्व को निभाने के लिये बैंक ने कई कार्यक्रम हाथ में लिये। 1921 में जिस तरह इंपीरियल बैंक को 5 वर्षों में 100 शाखाएँ खोलने का काम सौंपा गया उसी तरह स्टेट बैंक को 1960 तक 400 शाखाएँ खोलने का काम सौंपा गया था। दोनों ही बैंकों ने अपना लक्ष्य पूरा किया। स्टेट बैंक को, नये परिवेश में, लघु उद्योगों की वित्तीय मदद के लिये एक विशेष योजना बनानी और उस पर

अमल करनी थी; सहकारी समितियों को विपणन और प्रसंस्करण के लिये वित्तीय संसाधन जुटाना था और भारत के विदेश व्यापार को बढ़ावा देना था। देश के नियोजित आर्थिक विकास के साथ बैंक ने अपने आप को सफलतापूर्वक जोड़ लिया और अर्थव्यवस्था की आवश्यकतानुसार ऋण सुविधाएं प्रदान की। 1968 में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण के तहत उठाए गए कदमों के पहले से ही स्टेट बैंक ने सभी कृषि कार्यों के लिये योजनाएं तैयार कर ली थी। इन कृषि कार्यों में कृषि उपज के विपणन के साथ-साथ, खेतों का आधुनिकीकरण एवं मशीनीकरण, सिंचाई सुविधाओं का प्रावधान और भूमि का विकास जैसे कार्य शामिल थे। ग्रामीण क्षेत्रों के त्वरित आर्थिक विकास के माध्यम से ग्रीबी हटाने और रोज़गार के अवसरों के सृजन पर सरकार ने ज़ोर देने की जो नीति अपनाई, बैंक उसमें अथवा योगदान करने के लिये नवाचारी और सुनियोजित रणनीतियां तैयार की। कृषि उत्पादन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, कला और शिल्प के संवर्धन के लिये स्टेट बैंक ने अनेक योजनाएं पेश कीं। वर्ष 1980 तक कृषि, लघु उद्योग, लघु व्यवसाय और निर्यात को प्राथमिक क्षेत्र मानते हुए, स्टेट बैंक ने जो वित्तीय सहायता मुहैया कराई वह उसके द्वारा प्रदत्त कुल ऋण राशि का 36.2 प्रतिशत था। गांवों के ग्रीब लोगों की वित्तीय सहायता के अलावा ग्रामीण जनों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों की आवश्यकताओं का समेकित नज़रिया भी विकसित किया गया था।

उद्योग और कृषि को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता पहुंचाने के लिये भारतीय स्टेट बैंक के अलावा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आईएफसीआई) (1948), कृषि पुनर्वित्त निगम (एआरसी) (1963), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई) (1964) और राज्यों में वित्तीय निगमों का गठन किया गया।

इस बीच, कृषि, कुटीर और लघु उद्योगों के विकास पर बढ़ते ज़ोर को देखते हुए यह और भी ज़रूरी हो गया कि सभी बैंक भारत के दूरदराज के क्षेत्रों में साख संबंधी अर्थपूर्ण गतिविधियों के लिये अपने आप को तैयार करें। 1968 के सामाजिक नियंत्रण योजना के

तहत सरकार ने आर्थिक नियोजन की आवश्यकताओं के साथ बैंकिंग नीति का बेहतर तात्त्वमेल बिठाने के लिये अनेक नये कदम उठाए। “बैंकिंग प्रणाली की खामियों के बारे में लगातार मिल रही शिकायतों को देखते हुए यह मुख्य शर्त थी कि किसी खास ग्राहक अथवा ग्राहकों के समूह के साथ ऋण देने में कोई पक्षपात न हो। अंशाधारियों का जो भी प्रभाव हो, उसे निदेशक मंडल के गठन के समय और बैंक प्रबंधन द्वारा विभिन्न स्तरों के कर्ज़ के बारे में निर्णय लिये जाते समय ही प्रभावहीन कर दिया जाए” यह कहना था तत्कालीन उपप्रधान मंत्री और वित्तमंत्री, मोरारजी देसाई का जो 14 दिसंबर, 1967 को संसद में बयान देते समय बैंकों के सामाजिक दायित्व की चर्चा कर रहे थे। ऋण नियोजन का आर्थिक नियोजन के साथ समन्वय करने और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को ऋणों का आवंटन सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से फरवरी 1968 में गठित राष्ट्रीय ऋण परिषद, सामाजिक नियंत्रण वाली योजनाओं का मूलाधार बन गई। उद्योगों और व्यापारिक जगत को खासकर बड़े उद्योगपतियों और व्यावसायिक घरानों के, कर्ज़ के पूर्ति कर्ता की स्थिति से आगे बढ़ कर बैंकों को अब राष्ट्रीय दायित्व के तौर पर कृषि और लघु उद्योगों के लिये कहीं अधिक ऋण देने के लिये प्रोत्साहित किया जाने लगा। बुनियादी सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में बैंकों की ऋण प्रक्रिया को निर्देशित करने के लिये अखबारों में मोराजी देसाई की सराहना की गई। उसी वर्ष (1968) संसद में बैंकिंग कानून (संशोधन) विधेयक भी पारित हो गया। इसका उद्देश्य बैंकिंग को एक विशेषज्ञ व्यवसाय के रूप में स्थान दिलाना था। संशोधन का उद्देश्य, अन्य बातों के अलावा, भारतीय वाणिज्यिक बैंकों के निदेशक मंडलों का पुनर्गठन, पेशेवर बैंकरों और वित्तीय विशेषज्ञों की पूर्णकालिक अध्यक्ष के पद पर नियुक्ति और निदेशकों तथा उनके सगे-संबंधियों को कर्ज़ और अग्रिम देने पर पावंदी लगाना था। बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 10अ के तहत निदेशक मंडलों में उद्योगपतियों की संख्या आधी कर दी गई और उनके स्थान पर कृषि, सहकारिता, लघु

उद्योग, अर्धशास्त्र, लेखाकर्म, कानून और अन्य संबद्ध विशेषज्ञों को प्रतिनिधित्व का अवसर दिया जाने लगा। असल मकसद उद्योगपतियों और बैंकों के बीच पारंपरिक गठजोड़ को तोड़ना था ताकि किसी खास ग्राहक या ग्राहकों के समूह के साथ कर्ज़ वगैरह देने में पक्षपात न किया जाए।

इसके कुछ दिन बाद ही फरवरी 1969 में सरकार ने भारतीय बैंकिंग प्रणाली संरचना, प्रक्रिया और नीति संबंधी परिवर्तन सुझाने के लिये बनाई गई राज्य सहकारी बैंक के अध्यक्ष आर.जी. सरैया की अध्यक्षता में एक बैंकिंग आयोग का गठन किया, जिसको विस्तृत जांच पड़ताल के बाद अपनी सिफारिशों देनी थीं। यद्यपि आयोग ने वाणिज्यिक और सहकारी बैंकों के पुनर्गठन, उनके कार्यक्षेत्र के विस्तार, प्रचालन कार्यदक्षता सुधारने के उपाय, कानूनी सुधार और भावी शोध और अध्ययन के क्षेत्रों के बारे में अनेक सिफारिशों दी परंतु उन पर अमल करने की दिशा में कोई ठोस काम नहीं हो सका।

बैंकिंग के क्षेत्र में दूरगामी महत्व की घटना जुलाई 1969 में हुई जब सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर 50 करोड़ या उस से अधिक की जमा वाले भारतीय अधिसूचित बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। भारत के वित्तीय विकास में बैंकों के लिये यह नये चरण में प्रवेश का द्योतक था। दरअसल, यह उस प्रक्रिया की पराकाष्ठा थी, जो 1950 के दशक के मध्य में जीवनबीमा निगम और इंपीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण से शुरू हुई थी। राष्ट्र के नाम दिए गए अपने संदेश में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा :

“बैंकिंग जैसी संस्था, जो लाखों लोगों के जीवन को स्पर्श करती है, उसे व्यापक सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होना चाहिए और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होना चाहिए। यही कारण है कि लोगों के लिये प्रमुख बैंकों को न केवल सामाजिक रूप से नियंत्रित होना चाहिए, बल्कि उनका स्वामित्व भी जनता के हाथों में ही रहना चाहिए।”

अधिनियम की प्रस्तावना में कहा गया था, “राष्ट्रीयकरण का व्यापक लक्ष्य अर्थव्यवस्था की ऊंचाइयों को नियंत्रित करना और राष्ट्रीय

नीतियों और उद्देश्यों के अनुसार अर्थव्यवस्था के विकास की आवश्यकताओं को उत्तरोत्तर पूरा करना और बेहतर सेवा करना है।” राष्ट्रीयकृत बैंकों को यह सुनिश्चित करना था कि कर्ज लेने वालों खासकर किसानों, लघु उद्योगों और स्वरोज़गार वाले पेशेवर समूहों, के आकार और सामाजिक हैसियत की परवाह किए बिना उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने पर ज्यादा ज़ोर दिया जाए। उन्हें नये और प्रगतिशील उद्यमियों के विकास को बढ़ावा देना था और देश के विभिन्न भागों के पिछड़े क्षेत्रों में नये अवसरों का सृजन करना था। शाखाओं के संजाल का ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों में विस्तार के अलावा बैंकों को बचत के लिये भी लोगों को लामबंद करना था। बाद में बनी अग्रणी बैंक योजना के तहत उन्हें आवंटित जिलों में एकीकृत बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करके मार्गदर्शी की भूमिका निभानी थी। बैंकों को समय-समय पर ग्राहीबी उन्मूलन के लिये शुरू किए गए कार्यक्रमों (आईआरडीपी, एसईपीयूपी, एसईयूबी आदि) की सफलता के लिये ऋण देने की व्यवस्था भी करनी थी।

1980 में, छह उन दूसरे निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिनमें जमा राशि 2 अरब रुपये से अधिक थी। उद्देश्य था “अर्थव्यवस्था की ऊँचाइयों पर और अधिक नियंत्रण, अर्थव्यवस्था के विकास की आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पूरा करना और राज्य की नीति के अनुसार लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना।” इसके साथ ही, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की कुल संख्या 28 हो गई। इनमें भारतीय स्टेट बैंक और उसके सात सहयोगी बैंक भी शामिल थे। देश के वाणिज्यिक बैंकों से लेन-देन (जमा और कर्ज) का जो कारोबार होता था उनका करीब 91 प्रतिशत इन्हीं बैंकों के हवाले था। निजी क्षेत्र में बैंक बने रहे पर वे केवल कुछ उद्योगों के आसपास ही सीमित रहे।

राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीय बैंकिंग प्रणाली में व्यापक ढांचागत परिवर्तन हुए। बैंकों की शाखाओं में जर्बर्डस्ट विस्तार हुआ, खासकर उन ग्रामीण क्षेत्रों में जहां बैंकों की शाखाएं नाममात्र की थीं। रिज़र्व बैंक ने अपनी शाखाओं की लाइसेंसिंग नीति को इस प्रकार

लैस किया कि उन सभी क्षेत्रों में, जहां या तो शाखा थी ही नहीं या थी भी तो बहुत कम, वहां शाखाओं का विस्तार हो सके। साथ-साथ शहरी और मेट्रोपालिटन क्षेत्रों में भी शाखाओं का विस्तार जारी रहा। जून 1969 और मार्च 1990 के बीच बैंकों की शाखाओं की संख्या 8,262 से बढ़ कर 60,294 तक पहुंच गई। इनमें से ग्रामीण शाखाओं की संख्या भी 1,833 से बढ़ कर 34,940 हो गई, जो कि कुल शाखाओं के 57 प्रतिशत के बराबर थी। 1969 में यह प्रतिशत केवल 22 तक सीमित था। प्रत्येक शाखा द्वारा सेवित औसत जनसंख्या भी इसी अवधि में 65 हज़ार से कम होकर 12 हज़ार तक आ गई।

इसके अतिरिक्त, बैंकिंग प्रणाली के परिचालन में भी भारी गुणात्मक परिवर्तन आया। इसका कारण यह था कि सामाजिक बैंकिंग के क्षेत्र में बैंकों ने अनेक प्रकार की नयी जिम्मेदारियां अपने सर पर ले ली थीं, जिनके बारे में विश्व के आधुनिक बैंकिंग के इतिहास में कोई मार्गदर्शन और कार्यवाही की नज़ीर नहीं थी। बैंकों द्वारा दी गई कुल ऋण राशि में से प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को दी गई ऋण राशि जून 1969 के 14 प्रतिशत से बढ़ कर मार्च 1990 में 43 प्रतिशत हो गई।

1970 और 1980 के दशकों में बैंकिंग की प्रगति और विकास में जो ज़ोरदार उफान आया, उससे इसे भलीभांति संभालना कठिन हो गया। कतिपय क्षेत्रों को रियायती दर पर कर्ज देने की सामाजिक और आर्थिक चिंताओं से उपजे व्याज दर के जटिल ढांचे ने न केवल व्यवस्था को बिगाड़ दिया, बल्कि इससे बैंकों की संभाव्यता और लाभ कमाने की क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा। बैंकिंग प्रणाली के परिचालन में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और विवेकपूर्ण सिद्धांतों के महत्व को मापने की अक्षमता के कारण बैंकों में अनिष्टादक परिसंपत्तियों की मात्रा बढ़ती गई। निम्न परिचालक दक्षता, अस्वस्थ तुलनपत्र और असंतोषजनक ग्राहक सेवा के वित्तीय प्रणाली के स्थायित्व को ही ख़तरे में डाल दिया।

देश में भुगतान की समस्या से उत्पन्न आर्थिक संकट को देखते हुए सरकार ने 1991 में अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने के लिये कुछ उपाय शुरू किए और ढांचागत सुधार के

लिये कदम उठाए। ढांचागत सुधारों की योजना का उद्देश्य समग्र अर्थव्यवस्था की उत्पादकता और दक्षता में वृद्धि करना था ताकि बढ़ रही वैश्विक प्रतिस्पर्धा के सामने ठहर सकें।

इसी के एक भाग के रूप में, नरसिंहम समिति की सिफारिशों पर आधारित सुधारों को भी दो चरणों में शुरू किया गया ताकि इसके परिचालन में लचीलापन और कार्यात्मक स्वायत्ता आ सके। आरक्षित आवश्यकताओं के रूप में अनुक्रम में पर्याप्त कमी, प्रशासकीय व्याज दरों के ढांचे को समाप्त करना, आय की मान्यता, बट्टा खाते की रकम, परिसंपत्ति का वर्गीकरण, अप्रिय ऋणों, बट्टे खाते की रकम और पूँजी पर्याप्तता से संबंधित अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत विवेकपूर्ण सिद्धांतों की शुरूआत, निजी क्षेत्र के नये बैंकों को लायसेंस देना और राष्ट्रीयकृत बैंकों को पूँजी बाज़ार में उत्तरने की छूट देना, उन अनेक उपायों में सामिल हैं, जो पहले चरण में शुरू किए गए थे। बैंकिंग प्रणाली की बुनियाद को सुदृढ़ बनाने के इरादे से शुरू किए गए दूसरे चरण के सुधारों में बैंकों में जोखिम प्रबंधन प्रणालियों को भलीभांति लागू करने के दिशानिर्देश, ख़तरा आधारित अधीक्षण की शुरूआत आदि के अलावा विवेकपूर्ण मानकों को और भी मज़बूत बनाने का प्रयास किया गया था। ‘बेसल टू’ मानकों के अनुसार पूँजी पर्याप्तता के नये ढांचे को बैंकों द्वारा अपनाए जाने का अभी इंतज़ार है। बैंकों की आय की गणना के लिये नये मानक तैयार किए गए हैं। इन सब उपायों से भारतीय बैंकिंग प्रणाली को मज़बूती मिली है, जिससे यह अपने पास-पड़ोस में सबसे सुदृढ़ प्रणाली बन गई है।

वित्तीय क्षेत्र में सुधारों के प्रथम चरण का प्रभाव कुछ ही वर्षों में अनुभव किया जाने लगा। बैंकों के मुनाफे में हो रही वृद्धि और परिचालन में सुधार के साथ-साथ अनिष्टादक परिसंपत्तियों में आ रही कमी से वाणिज्यिक बैंकों की हालत में सुधार स्पष्ट दिखाई देने लगा। अधिकांश बैंकों ने न्यूनतम पूँजी अनुपात की प्राप्ति में भी सफलता पाई।

वित्तीय बाज़ारों में चल रहे विनियमन और उदारीकरण ने भारतीय बैंकों के लिये नयी चुनौतियां पेश की हैं। इनमें सबसे ज्यादा उत्तेजक नये स्वदेशी और विदेशी बैंकों के

आगमन के साथ बैंकिंग उद्योग में बढ़ रहे स्पर्धात्मक वातावरण का पैदा होना है। भारत में इस समय 28 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (पीएसबी), 30 विदेशी बैंक और 29 निजी क्षेत्र के बैंकों के अलावा अनेक सहकारी और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी हैं। भारत के केवल दो बैंकों - भारतीय स्टेट बैंक और आईसीआईसीआई की गणना ही एशिया के 25 शीर्ष बैंकों में होती है। तुलनपत्र के लिहाज़ से स्टेट बैंक का विश्व में 107वां स्थान है। सुदृढ़ पूँजी आधार, आधुनिक प्रौद्योगिकी, क्षीण नेटवर्क की लाभकारी पृष्ठभूमि से शुरू करते हुए, और उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण अतीत की समस्याओं के किसी भी बोझ से दूर, प्रवेश करने वाले नये घरेलू बैंक अपने व्यापारिक लक्ष्यों के प्रति पर्याप्त महत्वकांक्षी थे। इन नये बैंकों की विशेषता यह थी कि खाता खोलने, दिए गए ऋण का संधारण आदि जैसे लिपिकीय कार्यों के लिये उनकी सभी शाखाएं एक केंद्रीय प्रोसेसिंग इकाई से जुड़ी थीं। आकर्षक वेतन पैकेज देकर ये बैंक बाज़ार में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ कर्मचारियों को नौकरियों पर रखते थे। इन सब कारणों से नयी पूँजी के बैंक शीघ्र ही सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के सामने कड़ी प्रतिष्पर्धा पेश करने लगे।

इस अप्रत्याशित हमले से सार्वजनिक बैंकों ने महसूस किया कि आने वाले समय में उन्हें इन चुनौतियों को अवसरों में बदलना होगा। परस्पर जुड़ी शाखाओं वाली बैंकिंग की सफलता ने सार्वजनिक बैंकों को भी वही रास्ता और तरीका अपनाने के लिये प्रेरित किया। आज की तारीख में न केवल सभी सार्वजनिक बैंक पूर्णतया कंप्यूटरीकृत हैं, बल्कि उनमें से कुछ बैंकों की सभी शाखाएं आपस में जुड़ गई हैं। नेटवर्किंग की इस प्रणाली में शामिल होने में बाकी बैंक भी ज्यादा पीछे नहीं हैं। भारतीय स्टेट बैंक के सात सहयोगी बैंक, दरअसल नेटवर्किंग के जरिये परस्पर जुड़ने वाले भारत के पहले सरकारी बैंक हैं।

कंप्यूटरीकरण और नेटवर्किंग के अलावा एक और नयी बात जिसने बैंकों में प्रतिष्पर्धा को बढ़ावा दिया है, वह है स्वचालित पैसा देने वाली मशीन (एटीएम) और इंटरनेट बैंकिंग जैसी वैकल्पिक वितरण प्रणाली की लोकप्रियता। इन प्रणालियों के जरिये ग्राहकों

को चौबीसों घंटे बुनियादी बैंकिंग सेवा उपलब्ध रहती है। इससे बैंक का परिचालन लागत भी कम होता है। बैंक अब सूचना प्रौद्योगिकी में भी पर्याप्त निवेश कर रहे हैं, ताकि उनके क्रियाकलाप में दक्षता बढ़े और ग्राहकों को सर्वोत्तम सेवा मिले।

सुधारों के बाद के समय में खुदरा व्यापार में धन लगाने की प्रवृत्ति भी तेज़ी से बढ़ी है। इससे पहले इस क्षेत्र की उपेक्षा ही जाती थी और बैंक केवल विनिर्माण और कृषि क्षेत्रों में ही धन लगाने पर ध्यान दिया करते थे। बड़ी विनिर्माण कंपनियों के पास अब अपनी ज़रूरतों में निवेश के लिये वैकल्पिक और सस्ते संसाधन उपलब्ध हैं, इसे देखते हुए बैंकों ने बढ़े पैमाने पर उपभोक्ता ऋण प्रदान करने का सिलसिला शुरू किया है। बैंक ऋणों का एक चौथाई भाग अब खुदरा क्षेत्र के निवेश का होता है। बैंक ऋणों की सहज उपलब्धता ने देश में उपभोक्ता क्षेत्र के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आवास और वाहन क्षेत्रों में हाल में आई अचानक तेज़ी ने ज़मीन-जायदाद की अर्थव्यवस्था को नया प्रोत्साहन दिया है।

भारतीय वित्तीय बाज़ारों के खुल जाने से बैंकों को न केवल व्यापार के नये क्षेत्रों को खटखटाने के लिये व्यापक अवसर मिले हैं, बल्कि इससे कोष आधार (पूँजी) प्रौद्योगिकी और नये उत्पादों (योजनाओं) के मामलों में नये बैंकों से स्पर्धा करने हेतु छोटे बैंकों के सामने भारी चुनौतियां आ गई हैं। विश्व व्यापार संगठन के समझौते के तहत अप्रैल 2009 से विदेशी निवेशकों के लिये भारतीय बैंकों में दरवाजे खुल जाने के बाद तो छोटे सरकारी बैंकों के लिये लाभ के लिये कमाने का दबाव ज्यादा देर तक सह पाना कठिन ही होगा। इस संकट से पार पाने के लिये इन बैंकों को, जैसा कि विश्वभर में हो रहा है, आपस में विलय कर अपने को मज़बूत बनाना होगा।

हाल के वर्षों में, भारत की तेज़ी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था और बैंक ऋणों में हुई चमत्कारी वृद्धि के बावजूद यह दुख की बात है कि देश के देहाती क्षेत्रों में अभी भी बैंकिंग सेवाओं का अभाव है। किसान परिवारों के 58 प्रतिशत और गैरकिसान घरों के 70 प्रतिशत लोग अभी बैंक की बुनियादी सेवाओं से वंचित

हैं। अखिल भारतीय ऋण एवं निवेश सर्वेक्षण से पता चला है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों का कवरेज़ क्षेत्र 1991 के 64 प्रतिशत से घट कर 2002 में 57 प्रतिशत रह गया जबकि साहूकार का हिस्सा 17.5 प्रतिशत से बढ़ कर 29.6 प्रतिशत हो गया। भारत में बैंकिंग प्रणाली की पहुंच इतनी कम है कि बैंकों में जमा राशि सकल घरेलू उत्पाद का कुल 60 प्रतिशत है, जबकि चीन में यह 190 प्रतिशत और जापान में 142 प्रतिशत है। अर्थव्यवस्था में तेज़ी के बावजूद भारत में आर्थिक विषमताएं लगातार बढ़ रही हैं। अमेर और अमेर होते जा रहे हैं तथा ग्रीब और भी ग्रीब। अतः यह आवश्यक है कि बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था और वित्तीय समावेशन की तात्कालिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखा जाए। प्रो. सी.के. प्रहलाद का यह एक बहु प्रचारित सिद्धांत है कि विश्व के सबसे उत्तेजक, आकर्षक और सर्वाधिक तेज़ी से बढ़ने वाले बाज़ार वर्षों होते हैं, जहां आपको उनकी बिल्कुल आशा नहीं होती; पिरामिड के नीचे। भारतीय बैंकों ने इससे प्रेरणा लेकर व्यापार के लिये ग्रामीण ग्रीबों की ओर देखना शुरू किया है। वे अब गांव वालों को ई-कियोस्क (ई-गुमटियों) और एजेंटों के नेटवर्क के जरिये बुनियादी बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने की दिशा में काम कर रहे हैं। अन्य विकासशील अर्थव्यवस्था वाले देशों में यही मॉडल सफलतापूर्वक अपनाया जा रहा है। वह दिन अब दूर नहीं, जब भारत के 6 लाख गांवों में तमाम प्रकार की वित्तीय सेवाएं सहज रूप से उपलब्ध होंगी।

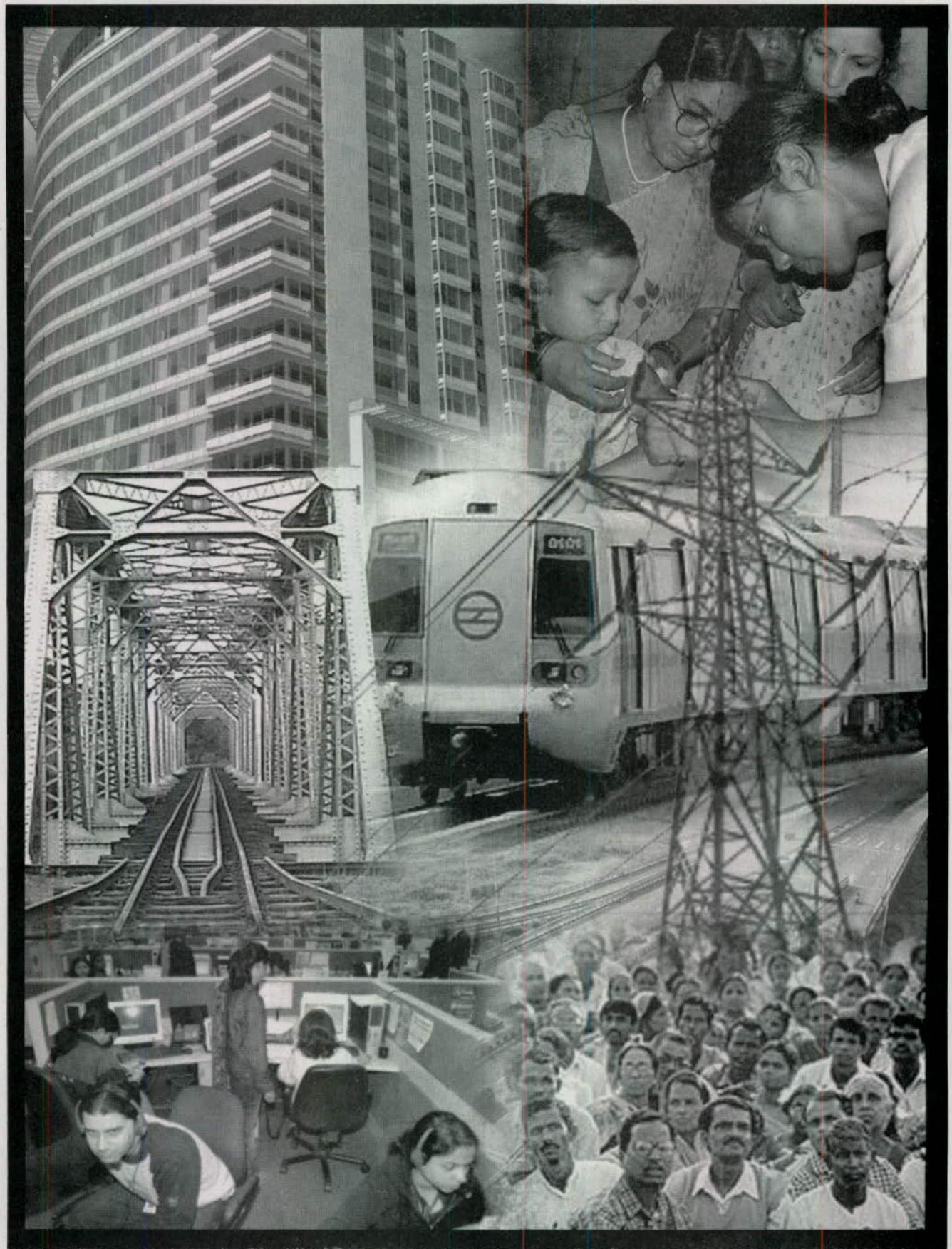
भारतीय बैंकिंग की गाथा ने अधिकांश अन्य चीज़ों की तरह अनेक उत्तर-चढ़ाव देखे हैं। इसकी शैली में हालांकि, औपनिवेशिक काल की तुलना में, कोई खास अंतर नहीं आया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था की तेज़ी, विस्तार पा रही प्रौद्योगिकी और बदल रही मानसिकता का शुक्र है कि बैंकिंग व्यवस्था का रूप अब शीघ्र ही बदलने वाला है। प्राचीन प्रक्रियाओं और प्रणालियों को त्याग कर नये नियम बनाए जा रहे हैं। विद्वान् ग्रामीण वित्तीय सेवाओं का युग अस्थायी धावा कर चुका है। चारों ओर हवा में उत्सुकता और उत्तेजना भरी हुई है। □

(लेखक भारतीय स्टेट बैंक के अध्यक्ष हैं)

हम मिलकर बुनते हैं वस्त्र देश का



हुबली में कर्नाटक खादी ग्रामोद्योग सम्. बंगरी की मणिलाये राष्ट्रीय ध्वज तैयार करती हुई। संघ को भारतीय मानक ल्यूरो द्वारा राष्ट्र ध्वज तैयार करने हेतु प्रयोगपत्र प्राप्त हुआ है।



फाउण्डेशन कोर्स-2008 हेतु नामांकन जारी

लोक प्रशासन

द्वारा अनिल सिंह

(एक मात्र टीचर जिन्हें प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा दोनों पर समानरूप से दक्षता प्राप्त)

लोक प्रशासन विषय ही क्यों?

- * एक मात्र Job Oriented Subject
- * साधारण छोटा पाठ्यक्रम- $2\frac{1}{2}$ माह में कोर्स पूरा।
- * किसी पृष्ठभूमि की आवश्यकता नहीं।
- * आर्ट्स एवं साइंस दोनों वर्गों के अभ्यर्थियों हेतु समानरूप से उपयोगी।
- * अत्यंत व्यावहारिक विषय, दिन-प्रतिदिन की घटनाओं से संबंधित, अतः अत्यंत रूचिकर।
- * आप IAS बनना चाहते हैं। IAS, IPS के Role क्या हैं? आदि के बारे में जानकारी इसी विषय से प्राप्त होती है।
- * चयनित अध्ययन की अपार संभावनाएं।
- * हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों माध्यम के विद्यार्थियों हेतु अत्यंत अंकदारी विषय
- * Fringe Benefits-सामान्य अध्ययन में 180+ अंक का योगदान
 - (1-2) निबंध
 - साक्षात्कार में अत्यंत सहायक 80% प्रश्न इसी विषय से संबंधित पूछे जाते हैं।

इम वर्ष हमारे सम्म्यान में Public Admn. में (हिन्दी माध्यम से) प्राप्त अंक
RAVI SINGH - 378 (196/182) • VIKASH SINGH - 371 (190, 181)

विगत वर्ष Public Admn. में → A.P. SINGH - 392 (195 + 197)
O.P. GUPTA - 345
R.K. SINGH - 339 (180 + 159)

वर्ष 2007 (P.T.) में Cut Off-Pub. Ad. 68 G.S.-70 Score-240*

- * प्री. एवं मेस हेतु अलग-अलग कक्षाओं का आयोजन।
 - * Question Practice पर अत्यधिक बल।
 - * सारगर्भित अध्ययन सामग्री।
- पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

प्रीलिस्स 100% गारंटी (यदि G.S. 75) अन्यथा 100% फीस वापस

कक्षा अवधि :

प्री0 - 4 माह * मेस - 2½ माह * प्री-कम-मेस - 6 माह

प्री0 एवं प्री-कम-मेस हेतु नवीन कक्षाएं प्रारंभ : 5 एवं 20 अगस्त

हिन्दी साहित्य

द्वारा उमेश शुक्ला

(5 वर्ष का अध्यापन-अनुभव)

- * उमेश शुक्ला के कुशल मार्गदर्शन में 3-4 माह में 350+ अंक लाना संभव
- * साहित्यिक एवं गैर साहित्यिक पृष्ठभूमि दोनों वर्गों अभ्यर्थियों के लिए अत्यंत रूचिकर एवं अंकदारी विषय।
- * चयनित अध्ययन संभव परीक्षा के समय 40% पाठ्यक्रम का अध्ययन कर सफलता अर्जित कर सकते हैं।
- * प्रथम प्रश्न पत्र में सामान्यतः 180-200 अंक तक प्राप्त किये जा सकते हैं वशर्ते तैयारी वैज्ञानिक रीति से की जाए। यह प्रश्न पत्र अत्यधिक अंकदारी है।
- * द्वितीय प्रश्न पत्र साहित्यिक दृष्टिकोण नहीं बल्कि प्रशासनिक दृष्टिकोण से लिखे जाने की माँग करता है। ऐसा होने पर 150-170 अंक आसानी से इस पेपर में आ जाते हैं। इस प्रश्न पत्र में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। जिसे अध्यापक एवं विद्यार्थी के निकट संपर्क द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। एक अध्यापक ही नहीं बल्कि मित्र एवं मार्गदर्शक की तरह भी, एक टीचर को होना चाहिए।
- * नियमित रूप से प्रश्नोत्तरों के मूल्यांकन की व्यवस्था।
- * विगत वर्षों में पूछे गये प्रश्नों पर परिचर्चा एवं आदर्श उत्तर-लेखन।
- * मित्रवत् वातावरण जिसमें आप निःसंकोच अपनी समस्याओं को सर के समझ रख सकते हैं।

फाउण्डेशन कोर्स-2008 हेतु कक्षाएं प्रारंभ

10 एवं 20 अगस्त, 2007

मुख्य परीक्षा-2007 हेतु Q.E.P.

ऐसे अभ्यर्थी जिन्हें विगत वर्षों में लोक प्रशासन में 300 से कम अंक मिले हैं, उन्हीं की समस्याओं पर केंद्रित 20 दिवसीय गुणवत्ता संवर्द्धन कार्यक्रम का आयोजन। 330+ अंक की 100% गारंटी, अन्यथा 50% फीस वापस। Advance Classes का आयोजन - 5 अगस्त से।

NEW VISION IAS ACADEMY

303, Top Floor, A-29/30, Jaina House, Mukherjee Nagar, Delhi-9 Cell.: 9891147383, 9871142602

1857

1947

2007

भविष्य की दिशाएं

आर्थिक विकास के 150 वर्ष

लंबा है राजता और मंजिल अभी ढूँढ़

○ नारायण एन.आर. मूर्ति

आज जब हम आजादी की पहली लड़ाई की 150वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, हमारे लिये यह मौका संग्राम में शिरकत करने वाले लोगों की स्मृतियां, उम्मीदें और अपेक्षाएं लेकर आया है। हम इस लड़ाई और राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की दूरदृष्टि के आभारी हैं, जिन्हें यह भेसेसा था कि जनतांत्रिक, नैतिक और उदार मूल्यों के द्वारा एक राष्ट्र की स्वतंत्रता की इच्छा को संसार के अब तक के सबसे ताक़तवर स्वाधीनता आंदोलन में बदला जा सकता है। 15 अगस्त, 1947 को दि हिन्दू के संपादकीय में ठीक ही कहा गया था, “इस देश की सबसे बड़ी उपलब्धि करोड़ों देशवासियों के दिलों में पैदा हुआ यह विश्वास है कि सत्य की विजय होती है, चाहे उसे किसी बड़ी सैन्य टुकड़ी का समर्थन प्राप्त न हो; कि आप अपने शत्रु पर उसे आदर देकर उसके विश्वास पर भरोसा कर और उसकी तर्क बुद्धि से अपील कर विजय प्राप्त कर सकते हैं।”

60 साल पहले औपनिवेशिक निर्भरता से मुक्त होने के बाद आज भारत विकासशील दुनिया में अग्रोन्मुखी जनतंत्र के रूप में उभरा है। विभाजन से उपर्युक्त उथल-पुथल और तकलीफों के बीच कयामत की भविष्यवाणी करने वाले लोगों ने इसे एक बदलती हुई इमारत की संज्ञा दी थी। लेकिन राष्ट्र निर्माण के अनिश्चित प्रयोग में भारत ने सफलता हासिल की है। भारतीय लोकतंत्र ने विभिन्न

उत्तर-चाढ़ावों के प्रति मजबूत स्थितिप्रज्ञता दिखाई है और इसके देशवासियों ने राष्ट्रीयता की ठोस समझ ज़ाहिर करते हुए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी की है। निर्धनता और सामाजिक-आर्थिक असमानता जैसी अनेक चुनौतियों के बावजूद भारत आज दुनिया के दूसरे नागरिक समाजों के सम्मुख अपनी बहुलतावादी स्वरूप और संघीय लोकतंत्र के साथ एक आदर्श बनकर खड़ा है।

किसी देश की परिपक्वता की परख के प्रायः दो आधार होते हैं: राजनीतिक व्यवस्था की सांगठनिक संरचना और आर्थिक विकास की अवस्था। इस लेख में भारत के आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था के मौजूदा स्वरूप की उत्पत्ति के सूत्र सोलहवीं शताब्दी में ढूँढ़े जा सकते हैं जब यहां अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रवेश हुआ। संक्षिप्त के लिहाज़ से इस लेख में भारतीय इतिहास पर 1757 से नज़र डाली गई है।

लेख को भारत के आर्थिक विकास के चार चरणों में बांटा गया है। इनमें से दो चरणों में आजादी से पूर्व की स्थितियों और दो चरणों में स्वतंत्रता पश्चात के विकास की चर्चा है। पहले खंड में 1757 से 1857 के दौरान भारत के उपनिवेश में बदलने का संक्षिप्त उल्लेख है, दूसरे खंड में 1857 से 1947 के काल में आर्थिक विकास का वर्णन है जबकि तीसरे और चौथे खंड में स्वातंत्र्योत्तर भारत में हुए

आर्थिक विकास का उल्लेख किया गया है। लेख का अंत समावेशी आर्थिक विकास हेतु प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था के सुजन के लिये ज़रूरी शर्तों के वर्णन के साथ होता है।

औपनिवेशिक अपंगता (1757-1857)

भारत के 1857 के बाद के आर्थिक विकास को समझने के लिये इससे पहले के 100 सालों के परिदृश्य को जानना ज़रूरी है। प्लासी के युद्ध में 1758 में ईस्ट इंडिया कंपनी की विजय के साथ भारत में उपनिवेशवाद की शुरुआत हुई।

भारत तब रियासतों का समूह था। उनमें राजकाज और प्रशासन की एक जैसी संरचना नहीं थी। आर्थिक नीतियों के नाम पर विभिन्न प्रकार के नियमों का एक पुलिंदा हुआ करता था जो एक रजवाड़े से दूसरे में भिन्न था। सामंती व्यवस्था के कारण राजस्व हानि आम बात थी और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर उत्पादकता बढ़ाने की ओर कोई ध्यान न था। प्राकृतिक संसाधनों के वाणिज्यिकरण की अवधारणा अनजानी चीज़ थी। ईस्ट इंडिया कंपनी और आगे चलकर अंग्रेज़ों के हुकूमत के प्रवेश से भारत की राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक संरचना में भारी परिवर्तन आए क्योंकि वे प्रौद्योगिकी, व्यापार और शासन-व्यवस्था में काफी आगे थे।

सर्वप्रथम, मुगल साम्राज्य के पतन का अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। 1750 तक मुगल साम्राज्य ढहने के कग़ार पर पहुंच

चुका था, हालांकि नाममात्र के बादशाह दिल्ली दरबार से अपना राजकाज चला रहे थे और अपने नियंत्रण से बाहर हो चुकी घटनाओं को ऐतिहासिक वैधता प्रदान कर रहे थे। 1757 से 1857 की अवधि में मुगल साम्राज्य के बड़े हिस्से का सफाया हो चुका था।¹ इन राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विलासितापूर्ण हस्तशिल्प की लगभग तीन चौथाई देसी मांग समाप्त हो चुकी थी। इससे उत्कृष्ट किस्म के मलमल, तलवार, सजावटी हथियार, आभूषण, विलासितापूर्ण कपड़े और जूते-चप्पलों के निर्माताओं को गहरा आधात लगा। इन वस्तुओं का बाजार समाप्त हो गया जिससे लाखों लोगों पर गुरीबी की मार पड़ी।

दूसरे, भारत का अ-औद्योगीकरण। अठारहवीं शताब्दी में भारत एक महान उत्पादक और कृषि उपज बाला देश था जो एशिया और यूरोप के बाजार में वस्तुओं की आपूर्ति करता था।² लेकिन इस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश संसद की देखरेख में भारत के तैयार माल पर भारी कर लगा दिया, साथ ही ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं पर आयात शुल्क कम कर दिया। भारत को ग्रेट ब्रिटेन में स्थित करघों और कारखानों के लिये सस्ते कच्चे माल का एक स्रोत बना दिया गया। इंग्लैंड से सस्ते कपड़ों के आयात के कारण घरेलू कताई और हथकरघा उद्योग का आकार घटने लगा। इन नीतियों के कारण भारत की व्यापारिक संरचना बदल गई। 1811 में भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान कपड़े का था (कुल निर्यात मूल्य का 33 प्रतिशत), उसके बाद अफीम (24 प्रतिशत), नील (18 प्रतिशत), कच्चे सिल्क और रुई का सम्मिलित रूप से कुल निर्यात मूल्य में हिस्सा 13 प्रतिशत था। लेकिन 1850 तक निर्यात की शीर्ष वस्तु अफीम (30 प्रतिशत) हो गई। उसके बाद कच्ची रुई 19 प्रतिशत और नील (11 प्रतिशत) का स्थान था।³ इस काल में रोजगार के स्वरूप में भारी परिवर्तन हुआ और लोग उद्योग की बजाय कृषि में रोजगार ढूँढ़ने लगे। निषेधात्मक नीतियों की वजह से करोड़ों भारतवासी बेरोज़गार हो गए क्योंकि उनके उत्पादों का न तो बाजार था

न ही उचित मूल्य।

सबसे बड़ा परिवर्तन ईस्ट इंडिया कंपनी का राज चलाने वाले के रूप में उदय था। 1764 में कंपनी की बक्सर में विजय के बाद 1765 में इलाहाबाद समझौता हुआ। इससे कंपनी के आधिपत्य को मुगलों की औपचारिक स्वीकृति मिल गई। एक व्यापारिक कंपनी ने भारत के सर्वाधिक समृद्ध प्रांत की दीवानी, न्यायिक और राजस्व प्रशासन की जिम्मेदारी हासिल कर ली। 1733 में ब्रिटिश पर्लियामेंट ने इस्ट इंडिया कंपनी पर अपनी संप्रभुता और नियंत्रण स्थापित कर प्रशासनिक और अर्थिक सुधारों की एक शृंखला लागू की। इसके बाद वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त कर दिया गया।

चालाकीभरी युक्तियों और बल प्रयोग के कारण कंपनी भारतीय भू-क्षेत्र पर अपना आधिपत्य बढ़ाती और सीधे नियंत्रण में लेती जा रही थी। 1857 तक इसने आज के भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश की 60 प्रतिशत भूमि पर कब्ज़ा कर लिया था।⁴ इस्ट इंडिया कंपनी की बदौलत भारतीय अर्थव्यवस्था का वैशिक अर्थव्यवस्था से समन्वय स्थापित हो चुका था। भारत सहित यूनाइटेड किंगडम के अन्य अनेक उपनिवेश यूरोप में जारी औद्योगीकरण की प्रक्रिया हेतु कच्चे माल के स्रोत बन गए थे।

1857 तक आते-आते अंग्रेज़ों का व्यापार और अर्थव्यवस्था पर लगभग पूरा नियंत्रण हो चुका था। यूरोप के भूखे मिलों और उद्योगों को तृप्त करने के लिये सस्ता कच्चा माल निर्यात करने वाली अन्य उपनिवेशों की जमात में भारत भी शामिल हो चुका था। भारत के लोगों की अपरिहार्य पसंद कृषि बन चुकी थी। 1857 में क्रांति हुई और कंपनी ने 1858 तक अपने सारे प्रशासनिक अधिकारी ब्रिटिश सरकार के हाथों खो दिए। परिणामस्वरूप भारत औपचारिक रूप से एक उपनिवेश बन गया और ब्रिटिश राज ने सत्ता संभाल ली। राष्ट्रीय विकास रहित आर्थिक पुनर्निर्धारण (1857-1947)

भारत के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम से राष्ट्रवाद

की नींव पड़ी जिसकी परिणति 1947 में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में हुई। इस अवधि में तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पहला, बुनियादी रूप से अंग्रेज़ों की आवश्यकताओं द्वारा प्रेरित आर्थिक एकीकरण हुआ। दूसरा, रक्षा व्यापार में सहूलियत और प्रशासन के लिये बुनियादी ढांचे का विकास किया गया और अंतिम, आय में ठहराव आया तथा गुरीबी बढ़ी। इसका भारत के सामाजिक तनेबाने पर अमिट निशान पड़ा और भारतवासियों ने खुद को मुक्त करने की तैयारी शुरू कर दी।

इस अवधि में आय में ठहराव, राष्ट्रीय संसाधनों के बाहर ले जाए जाने और अर्थव्यवस्था की धीमी प्रगति की वजह से निर्धन लोग और निर्धन होते चले गए। इसी अवधि में प्रलयकारी विश्वयुद्ध हुए और भारत तथा भारतवासियों का शोषण जारी रहा। अंग्रेज़ों ने प्रौद्योगिकीय, मौलिक और शासन व्यवस्था चलाने में सहयोग करने वाली आधारभूत संरचना तैयार करने में निवेश किया। लेकिन आधारभूत संरचना तैयार करने के इस क्रम में राष्ट्रीय विकास की नींव तैयार करने की कोई कोशिश नहीं की गई।

व्यापार

विश्व अर्थव्यवस्था से भारत का मज़बूत संपर्क स्थापित हुआ, लेकिन यह संपर्क यूरोप के चुनिंदा देशों तक ही सीमित रहा। यद्यपि भारत के विश्व से व्यापारिक संबंध 18वीं शताब्दी से पहले से ही थे लेकिन विश्व व्यापार में गति 1857 के बाद ही आई। 1857 से प्रथम विश्व युद्ध तक भारत के विदेश व्यापार में विस्फोटक विकास हुआ। घरेलू उत्पाद की तुलना में व्यापार का अनुपात सन् 1800 में जहां 1 से 2 प्रतिशत था, 1860 के दशक में वह बढ़कर 10 प्रतिशत और 1914 तक 20 प्रतिशत हो गया।⁵

बुनियादी ढांचा

अंग्रेज़ी शासन में बुनियादी ढांचे के निर्माण पर भारी निवेश किया गया। सन् 1857 से 1947 की अवधि में बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में अंग्रेज़ों की प्रौद्योगिकीय और अभियांत्रिक विशेषता को भारत लाया गया। ब्रिटिश शासन

का इकलौता सबसे बड़ा फायदा बुनियादी ढांचे को ही मिला। इसे स्वतंत्र भारत को अंग्रेज़ों का उपहार कहा जा सकता है, हालांकि उन्होंने राष्ट्रीय विकास के मकसद से इसमें निवेश नहीं किया था।

उदाहरण के लिये रेलवे के निर्माण में निवेश का फैसला इसलिये लिया गया था कि भारत के भीतरी इलाकों से कपास जैसे कच्चे माल का परिवहन बंदरगाहों तक करने में सहायत देना हो। प्रमुख रेल नेटवर्क मद्रास, बंबई और कलकत्ता में स्थित बंदरगाहों से जाकर मिलते थे। इन्हीं बंदरगाहों के जरिये अधिकतर विदेश व्यापार संचालित होता था। 1947 तक भारतीय रेल विश्व के सबसे बड़े रेल नेटवर्क में से एक बन चुका था। रेलवे के आंकड़ों^१ के अनुसार, 1860 में कुल रेलमार्ग 838 किमी था जो 1947 तक बढ़कर 42,000 किमी हो चुका था तथा यात्रियों की संख्या 1870 में जहाँ 5 करोड़ से भी कम थी वहाँ 1940 तक यह बढ़कर 60 करोड़ से भी अधिक हो चुकी थी। निश्चित रूप से रेलवे से स्थानीय व्यापार को त्वरा मिली, बाजारों का एकीकरण हुआ, देशभर में माल और लोगों की आवाजाही बढ़ी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि रेल से पैसे तथा समय के मामले में औसत परिवहन लागत में कमी आई और आपूर्ति श्रृंखला अधिक कुशल हुई।

लेकिन बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में व्यय भी कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में ही किया गया। उदाहरण के लिये, सड़कों के निर्माण की तुलना में रेलवे के निर्माण को प्राथमिकता दी गई और ढांचागत विकास में पूर्वी भारत की उपेक्षा कर दी गई। यह विकास पश्चिमी और दक्षिणी भारत में ही केंद्रित रहा।

राष्ट्रीय संसाधनों का अपवहन

1867 से 1930 की अवधि में प्रकट रूप से भारतीय संसाधनों को यूनाइटेड किंगडम (यूके) ले जाया जा रहा था। यह अपवहन भारत की राष्ट्रीय आय का 1 से 1.3 प्रतिशत था^२। इसके अलावा, राष्ट्रीय आय का पांच प्रतिशत भारत में कार्यरत अंग्रेज़ कारिंदे खा जाते थे, जिसका अन्यथा भारत में विकास कार्यों में उपयोग होता। अनुमान लगाया जाता

है कि यूके को भारत से होने वाली औसत वास्तविक आय का अनुपात 1857 के 20 प्रतिशत से गिर कर 1947 में 10 प्रतिशत से भी कम हो गया था।

आय में ठहराव और निर्धनता

अनेक अनुमानों के अनुसार, 1870 से 1914 के बीच वास्तविक कृषि आय में 33 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। लेकिन अगले 30 सालों के दौरान यह वृद्धि 3 प्रतिशत से भी कम रही। 1930 के दशक के आरंभिक वर्षों में भारी मंदी के झटके लग रहे थे जिससे किसानों के कर्ज़ों का बोझ बढ़ गया। कर्ज़ों और लगान के भुगतान के लिये वे अपनी संपत्ति बेचने के लिये मज़बूर हो गए।

1930 के दशक के आखिर में कृषि श्रमिकों की वास्तविक मज़दूरी सन् 1900 में मिलने वाली मज़दूरी से महज 4 प्रतिशत अधिक था। खाद्य सुरक्षा के मामले में भारत की स्थिति ख़राब थी। 1877, 1878, 1889, 1892, 1897 और 1900 के अकाल में देशभर में 1.5 करोड़ से भी ऊपर लोगों को जानें गंवानी पड़ी^३। सरकारी राजस्व मांग की अनमनीयता के कारण भारत के किसान साहूकारों की दासता के लिये विवश हो गए।

1857 से 1914 के बीच आबादी में 0.5 प्रतिशत से 0.7 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। जबकि 1914 से 1947 के बीच यह वृद्धि वार्षिक करीब 1 प्रतिशत की दर से हुई। इसकी तुलना में प्रतिवर्ष आय में मात्र 0.06 प्रतिशत की दर से ही वृद्धि हो पाई। इसके अतिरिक्त, जोत वाली भूमि में वृद्धि लगभग शून्य रही जिसके परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में भारी कमी दर्ज की गई।

औपनिवेशिक शासन का अंत

ब्रिटिश शासन के अंतिम दिनों में भारत एक कृषि प्रधान देश बन चुका था। भारत में निर्मित वस्तुओं पर शुल्क लगाकर जो आर्थिक अन्याय किया गया था, उसके कारण लोग कृषि कार्य अपनाने के लिये मज़बूर हो गए थे। कृषि कार्य में लोगों की भीड़ हो जाने के कारण आय में ठहराव आ गया था। कुल आबादी की तुलना में काम करने वाले लोगों

का प्रतिशत 1870 के दशक में 47 था जो 1947 में घटकर 37 प्रतिशत से भी कम हो गया। औद्योगीकरण तो कभी हुआ ही नहीं, हालांकि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अंतर्गत कुछ उद्योगों की स्थापना ज़रूर की गई थी, लेकिन उसने अपने को विकास के उपकरण के रूप में नहीं देखा। अंग्रेज़ों ने तकनीकी शिक्षा की उपेक्षा की, वे भारतीय लोगों को प्रशिक्षण अथवा प्रबंधकीय कौशल देने के प्रति अनिच्छुक थे जिससे भारतीय उद्योगों को गुणवत्तायुक्त मानव पूँजी से वंचित होना पड़ा। इससे भारतीय उद्योगों की उत्पादकता और प्रतिस्पर्धी लागत क्षमता पर सीधा असर हुआ।

स्वतंत्रता के उपरांत भी ये सीमाएं भारत पर असर डालती रहीं। इस अवधि में निवेश भी काफी कम हुआ। 1900 से 1947 के बीच निवेश राष्ट्रीय आय के 7 से 9.5 प्रतिशत के बीच घूमता रहा। भारत की स्थिति मुख्य रूप से निर्यातक की थी जहाँ निवेश नगण्य था। अग्रिम पंक्ति का देश बनने की दिशा में (1947-1991)

भारत अब शक्तिशाली और प्रभावशाली हैसियत हासिल करेगा और राष्ट्रों के समूह में अपनी उचित जगह प्राप्त करेगा। - लार्ड माउंटबेटन का संविधान सभा में भाषण; 15 अगस्त, 1947।

भारत जब आजाद, हुआ तब तक देश में पर्याप्त औद्योगीकरण हो चुका था। हमारे पास अच्छी मौलिक आधारभूत संरचना थी, पहले दर्जे का नागरिक और प्रशासनिक तंत्र था, कुशल विधायी व्यवस्था थी, अंग्रेज़ी आधारित शिक्षा प्रणाली थी और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ हमारा बेहतर संबंध था। लेकिन ग़रीबी काफी अधिक थी और साक्षरता स्तर हास्यास्पद रूप से अत्यल्प था। राष्ट्रीय आय में उद्योगों का योगदान काफी कम था। 1950-51 में जोत वाली भूमि में बढ़ोतरी लगभग नगण्य थी जिससे प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता में भारी कमी आ गई। कुल जीड़ीपी में बुनियादी क्षेत्र का योगदान 57 प्रतिशत, माध्यमिक क्षेत्र का 14 प्रतिशत और शेष 29 प्रतिशत तीसरी श्रेणी के क्षेत्र का था^४।

SAROJ KUMAR'S IAS ERA

IAS/PCS - 2007-08

GEOGRAPHY & GENERAL STUDIES - (P.T.&Mains) WITH

SAROJ KUMAR

IN हिन्दी / ENGLISH MEDIUM

Special Classes

Duration

Geog. (Mains)	2 Months
G.S. (Mains)	2 Months
History (Mains)	2 Months
Essay	1 Month
Comp. Hindi & Eng.	1 Month

TEST SERIES

DURATION

Geog. (Mains)	1 Month
G.S. (Mains)	1 Month
History (Mains)	1 Month

FOUNDATION COURSE

DURATION

Geog. (P.T. & Mains)	4-5 months
G.S. (P.T. & Mains)	4-5 months
History (P.T. & Mains)	4-5 months

POSTAL COURSE (HINDI & ENGLISH MEDIUM)

Geog. (P.T. & mains) ♦ G.S. (P.T. & Mains) ♦ Sociology (Mains)

P.C.S. SPECIAL

U.P., M.P., Bihar, Raj., Chhatis, Uttrakhand, West Bengal, H.P., Jhard.

HIGHEST MARKS

G.S. Marks		Geog. Marks	Interview Marks	Essay Marks	History Marks
K.K. Nirala 360	M.K. Sharma 358	R. Kumari (Eng. Med.) 426	A. Kumar 240	A. Kumar 153	S. Yadav 365
P. Singh 338	D. Rawat 323	H. Meena (Hindi Med.) 362	S. Aggarwal 226		

Free workshop with SAROJ KUMAR (Hindi & Eng. Medium)

29 OCT. 2007	Geog. (P.T.)	10.30 AM
30 OCT. 2007	Geog. (Mains)	10.30 AM
31 OCT. 2007	G.S. (P.T.)	10.30 AM
1 NOV. 2007	G.S. (Mains)	10.30 AM
2 NOV. 2007	History	10.30 AM
3 NOV. 2007	Essay	10.30 AM

Batch Starts :- 5th Aug., 10th Aug., 20th Aug., 5th Sept. 2007

Contact

**DR. VEENA SHARMA
SAROJ KUMAR'S IAS ERA**

1/9, Roop Nagar, G.T. Karnal Road, Near Shakti Nagar Red Light, Above P.N.B.
Shakti Nagar Branch, Delhi-110007 Ph.: 011-64154427 Mob. : 9910360051, 9910415305

YH/8/7/3

1947 के बाद अगले पचास सालों में भारत ने अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की और एक पराश्रित उपनिवेश से स्वतंत्र जनतांत्रिक देश के रूप में अपने को सफलतापूर्वक ढाल लिया। राष्ट्रीय विकास सभी राजकोषीय नीतियों का केंद्रीय विषय बना रहा। देश की जनसंख्या इस अवधि में जहां दोगुनी हो गई, वहीं कृषि उपज तिगुनी हुई जिससे विशाल आबादी वाले देश को समुचित खाद्य सुरक्षा हासिल हुई¹⁰। औद्योगिक आधार का विस्तार हुआ और कुल औद्योगिक उत्पादन में 15 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई। भारत के लोगों की प्रतिव्यक्ति आय 1947-48 की तुलना में दोगुनी से भी ज्यादा बढ़ी। सामाजिक कल्याण के मानकों की दृष्टि से भारत की विशिष्ट उपलब्धियों से शायद ही कोई असहमत हो।

यह अनेक मौलिक नीतियों का हासिल है। मुत्युदर में दो तिहाई से भी अधिक कमी आई जबकि जन्म के समय जीवन संभाव्यता लगभग दोगुनी और साक्षरता दर तिगुनी हो गई। स्पष्ट रूप से पहले के पचास वर्षों की तुलना में 1947 से 1997 के बीच हुई प्रगति काफी अधिक रही। 20वीं शताब्दी के आरंभिक 50 वर्षों में एक औसत भारतीय की प्रतिव्यक्ति आय में सालाना लगभग 0.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई जबकि 1950 से यह वृद्धि प्रतिवर्ष लगभग 2 प्रतिशत की दर से दर्ज की गई।

मज़बूत विकास की बुनियाद

स्वतंत्र भारत की पहली सरकार की तात्कालिक चुनौती विकासदर को तेज़ी से बढ़ाना थी। स्वतंत्र भारत की आर्थिक नीतियों का पथग्रदर्शक यही बना। सरकार ने महसूस कर लिया था कि विकास में तेज़ी के परिणामस्वरूप नौकरियों का सृजन होगा जिससे अधिकाधिक रोज़गार मिल पाएगा। इससे आय और जीवनस्तर में भी बढ़ोतरी होगी।

सरकार ने समझ लिया था कि तीव्र औद्योगिकरण से विकास दर में तेज़ी आएगी। निजी क्षेत्र उच्च निवेश की ज़रूरत वाले औद्योगिकरण की जिम्मेदारी लेने के लिये तैयार नहीं था। इसके बावजूद पचास के दशक में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के अनुपात

के रूप में सकल घरेलू बचत (जीडीएस) दर चालू बाजार मूल्य पर औसत 10 प्रतिशत की दर से बढ़ी। इस आलोक में 11वीं पंचवर्षीय योजना में जीडीपी के अनुपात के रूप में जीडीएस की दर 33.4 प्रतिशत से 34.7 प्रतिशत के बीच प्रक्षेपित की गई है। 1930 के दशक की राष्ट्रीय योजना समिति और 40 के दशक के बांबे प्लान में औद्योगीकरण में सरकार की मज़बूत दखल की मांग की थी। आज़ादी के समय भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि आधारित थी और यहां निवेश दर जीडीपी के 10 प्रतिशत से भी कम थी। इसलिये औद्योगिक विकास हेतु बचत को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी सरकार पर आ गई।

पंचवर्षीय योजनाओं के जरिये विकास का नियोजन

हम तेज़ी से प्रगति करने के लिये बेचैन और अधीर हैं। लेकिन तेज़ी से आगे बढ़ने अथवा चंद जोखिम उठाने का मतलब यह नहीं कि हम मूर्खतापूर्ण तरीके से बिना सोचे—समझे, बिना तैयारी और बिना किसी योजना के काम करें। नेहरूजी ने आर्थिक नीति तथा नियोजन के महत्व पर अपने विचार रखते हुए यह कहा था। औद्योगीकरण और निवेश दर बढ़ाने के लिये मज़बूत सरकारी हस्तक्षेप की दरकार थी। नेहरूजी नियोजन प्रक्रिया के गहरे प्रशंसक थे और समान आर्थिक स्थितियों में सोवियत संघ के नियोजन के अनुभव से प्रभावित थे। नेहरूजी ने एक ऐसी नियोजित अर्थव्यवस्था की विकास की संकल्पना की जिसमें सरकार की प्रमुख भूमिका थी। इस प्रकार पंचवर्षीय योजना प्रक्रिया की शुरुआत हुई।

पंचवर्षीय योजनाएं इस प्रकार तैयार की गई जिससे कि भारत को तीव्र विकास के दायरे में लाकर औद्योगिकरण की प्रक्रिया को एक उछाल दी जाए। साथ ही, औद्योगीकरण की इस प्रक्रिया में राज्य की भूमिका का मार्ग भी प्रशस्त हो। योजनाओं का मकसद सरकार द्वारा का समुचित निवेश के द्वारा विकास दर को 5 प्रतिशत से ऊपर के स्तर पर रखना था। साथ ही, सरकार निवेश में संभावित वृद्धि के

लिये अपेक्षित वित्त उपलब्ध कराने हेतु सार्वजनिक बचत को बढ़ाने में राजकोषीय नीति का इस्तेमाल करने के बारे में प्रतिबद्ध थी। इन उपायों का मकसद उच्च विकास के परिदृश्य को विश्वसनीयता प्रदान करना और अर्थव्यवस्था में निजी निवेश आकर्षित करना था।

योजनाओं के महत्वाकांक्षी लक्ष्य थे। पहली योजना (1951-56) में 27 वर्षों के भीतर प्रतिव्यक्ति आय को दोगुना कर देने का लक्ष्य प्रक्षेपित किया गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1951-61) में औद्योगीकरण की समग्र रणनीति को परिभाषित किया गया था। उम्मीद की गई थी कि इस रणनीति को कृषि क्षेत्र से समर्थन मिलेगा जो उद्योगों को कच्चे माल और उद्योग में बढ़ी संख्या में रोज़गार पाने वाले श्रमिकों को पारिश्रमिकस्वरूप वस्तुओं की आपूर्ति करेगी। विश्वास था कि इसका पोषक प्रभाव पड़ेगा।

योजनाओं को पर्याप्त सफलता मिली। स्वतंत्र भारत में जीडीपी विकास दर की शुरुआत 1951-52 में मात्र 2.3 प्रतिशत थी। पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) के दौरान सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) में 3.7 की वृद्धि हुई जो दूसरी पंचवर्षीय योजना काल में बढ़कर 4.2 प्रतिशत हो गई।

संरक्षणवाद का युग

औद्योगीकरण के नेहरू-महानलोबिस्स मॉडल में भारी उद्योगों पर बल दिया गया। आगे चूंकि भारत में भारी और बुनियादी उद्योगों पर ज़ोर नहीं रहा, इसलिये उनकी लागत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी नहीं रह पाई। उनकी प्रतिस्पर्धी क्षमता को बढ़ाने की बजाय आपूर्ति और मांग दोनों ही पक्षों में विभिन्न प्रकार के नियंत्रण लागू कर उन्हें संरक्षण प्रदान किया गया। इससे अकुशलता को वैधता मिल गई। प्रबंधन का अधिक समय प्रतिस्पर्धी क्षमता बढ़ाने के बदले लाइसेंस हासिल करने में बीतने लगा। उत्पादन की अकुशलता का खामियाज़ा वस्तुओं और सेवाओं की ऊंची कीमत के रूप में उपभोक्ताओं को भुगतान पड़ा। इस व्यवस्था के तहत तैयार औद्योगिक संरचना बेहद

अकृशल थीं और उसे संरक्षणात्मक व्यापार नीति के द्वारा समर्थन दिया जाता था। प्रायः उद्योग के प्रत्येक क्षेत्र को पहले से तैयारशुदा संरक्षण प्रदान कर दिया जाता था।¹³ (अहलुवालिया 2002)

भारत ने निर्यात से भारी आय अर्जित करने को कभी भी प्राथमिकता नहीं दी। इसने निर्यात को हतोत्साहित किया और एक अंतर्मुखी 'आयात विकल्प' की नीति अपनाई। 1951 में विश्व के कुल निर्यात में भारत का हिस्सा 2 प्रतिशत था जो 1960 में गिरकर लगभग 1 प्रतिशत रह गया। यह अधोगमन आगे भी जारी रहा और 1980 में 0.5 प्रतिशत तथा 1990 में यह हिस्सा महज 0.42 प्रतिशत रह गया।¹⁴ दूसरी ओर, उसी अवधि में पूर्वी एशियाई देशों ने 'निर्यातवर्धन' की नीति पर ध्यान केंद्रित किया और उनकी अर्थव्यवस्था चौकड़ी मारने लगी। नेहरू का निधन और आर्थिक मंदी

नेहरू के निधन के तुरंत बाद भारत की अर्थव्यवस्था बोझ बन गई। डॉ. विमल जालान अपनी पुस्तक दि प्यूचर ऑफ इंडिया में 1966 से 1980 तक की अवधि को आजादी के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था के सबसे अंधकारमय काल के रूप में उल्लेख करते हैं। इस अवधि में अर्थव्यवस्था में औसतन 3 प्रतिशत से भी कम विकास हुआ। जनसंख्या में सालाना 2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई जबकि प्रतिव्यक्ति आय में इसकी आधी बढ़ोतरी हो पाई। औद्योगीकरण की गति धीमी पड़ गई। 1965 से 1980 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में सालाना 4 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई जबकि 1950 से 1965 की अवधि में यह दर 7.8 प्रतिशत वार्षिक थी।¹⁵

राजकोषीय फिजूलखार्ची जनित दिवालियापन

केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर एक के बाद एक सरकारों ने सब्सिडी को संरक्षण दिया। हालांकि उनका मकसद अच्छा था, लेकिन समय के साथ-साथ सब्सिडी में अनियंत्रित दर से वृद्धि हो गई। इसकी वजह यह थी कि विभिन्न सब्सिडी कार्यक्रम तैयार करने में तुच्छ आर्थिक दृष्टि अपनाई गई। 1987-88 में

आर्थिक सेवाओं पर केंद्र सरकार की सब्सिडी जीडीपी का लगभग 4.5 प्रतिशत थी जबकि राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी जीडीपी का करीब 4 प्रतिशत थी। इस तरह दोनों मिलकर जीडीपी का लगभग 8 प्रतिशत सब्सिडी दी जा रही थी।¹⁶

पड़ोसी देशों के साथ अनेक लड़ाइयां हुईं। इससे रक्षा मद में अधिक आवंटन ज़रूरी हो गया। निर्यात आय बहुत कम थी। सबसे बड़ी संगठित रोज़गारदाता सरकार थी और इसके उद्यमों से होने वाला नुकसान बढ़ता ही जा रहा था। इनका बढ़ता वेतन बिल चिंताजनक था। भारत के सम्मुख आंतरिक तथा बाह्य दोनों तरह के भारी ऋण भुगतान की समस्या आ खड़ी थी। राजकोषीय घाटा काफी बढ़ गया और कच्चे तेल का आयात बिल तेजी से ऊपर जा रहा था। इन सबने मिलकर ऐसा आर्थिक संकट पैदा कर दिया था जिसका देश को कोई पूर्वाभास न था।

1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था मात्र 10 लाख अमरीकी डॉलर विदेशी मुद्रा भंडार के साथ दिवालियेपन के कगार पर पहुंच चुकी थी।

बदलाव और आर्थिक नवजागरण का वर्ष 1991

अर्थव्यवस्था का संकट गंभीर और गहरा है। स्वतंत्र भारत के इतिहास में ऐसी स्थिति का अनुभव हमने पहले कभी नहीं किया है - डॉ. मनमोहन सिंह, 24 जुलाई, 1991 को केंद्रीय बजट प्रस्तुत करते हुए।

दिवालियेपन की दशा में सरकार ने सुधारों की पहली खेप लागू की जिसमें लाइसेंस प्रणाली, उलझती आयात प्रणाली तथा प्रमुख क्षेत्रों में सरकारी एकाधिकार समाप्त करने जैसे कदम शामिल थे। सीमा शुल्क 1991 में 200 प्रतिशत के ऊचे स्तर पर था जो नौवें दशक के मध्य तक कम होकर 40 प्रतिशत और कर दर 56 प्रतिशत से गिरकर 40 प्रतिशत तक आ गया। 1997 में इसे 30 प्रतिशत पर ले आया गया।

1991 से सभी सरकारों ने अनेक अग्रगामी सुधार किए। इनके परिणाम प्रकट और काफी

प्रभावपूर्ण रहे। पिछले चार सालों से अर्थव्यवस्था में औसतन 8 प्रतिशत सालाना वृद्धि हो रही है जो आठवें और नौवें दशक में लगभग 6 प्रतिशत थी। दूसरा जो स्पष्ट परिवर्तन है, वह यह कि अर्थव्यवस्था में विविधता आई है। दूरसंचार, बायु परिवहन और वित्तीय सेवाओं जैसे अनेक क्षेत्र सरकारी नियंत्रण से बाहर निकले, जिनसे इन सेवाओं तथा वस्तुओं के बाजार का विस्तार हुआ।

सुधारों ने व्यापार और निवेश के लिये काफी अनुकूल माहौल तैयार किया। पूँजी नियंत्रण कम करने, बाजार की ताक़तों द्वारा नियामक संस्था बनाने जैसे उपायों से देश का मुद्रा बाजार विकसित देशों के समकक्ष आ खड़ा हुआ। भारतीय धर्मों को वैश्विक जमा रसीद (जीडीआर) तथा अमरीकी जमा रसीद (एडीआर) के द्वारा विदेशों से कोष उगाही की अनुमति भी प्रदान की गई। व्यावसायिक वातावरण अधिक स्पष्ट और मैत्रीपूर्ण होने के कारण उद्यमिता का विकास हुआ। खासतौर से ज्ञान आधारित सेवा क्षेत्र में रोज़गार के नवीन अवसरों का सृजन हुआ। उदाहरण के लिये, भारत की शीर्ष तीन सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) सेवा कंपनियों इंफोसिस, टीसीएस और विप्रो में 31 मार्च, 2007 तक लगभग 2.5 लाख लोग रोज़गाररत थे। भारतीय उपभोक्ताओं को भी फायदा हुआ क्योंकि अब उनके पास कीमत और गुणवत्ता की दृष्टि से अधिक विकल्प उपलब्ध हैं। वे दिन गए जब उपभोक्ताओं को एक टेलीफोन कनेक्शन अथवा स्कूटर के लिये सालों, नहीं तो महीनों इंतजार करना पड़ता था।

भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) क्षेत्र का विकास

भारत के आर्थिक सुधारों पर कोई भी आलेख भारतीय आईटी सेवा उद्योग की चर्चा किए बगैर अधूरा रहेगा। आर्थिक सुधारों से भारतीय उद्योग के विकास की बुनियाद पड़ी। वित्तीय क्षेत्र में हुए सुधारों से अंशपूँजी के जरिये वित्त की उपलब्धता बढ़ी और विदेशी विनियम आसान हुए। करों, शुल्कों और प्रभारों में कमी करने और उन्हें तर्कसंगत बनाने से

समकालीन परिकलन युक्तियों तक पहुंच पहले के मुकाबले काफी आसान हो गई। इन बेहतर स्थितियों के परिणामस्वरूप भारत में एक मज़बूत आईटी उद्योग के सृजन में मदद मिली। इससे घरेलू आईटी उद्योग के विकास के साथ-साथ निर्यातोन्मुख आईटी सेवा उद्योग का भी विकास हुआ।

सुधारों के फलस्वरूप शक्तियां क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय कार्यालयों में विकेंद्रित की गई। कंपनियां अब दिल्ली जाने की बजाय स्थानीय सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी पार्कों को अपना प्रस्ताव भेज सकती थीं। इससे संगठनों के निर्णय लेने की क्षमता में गति आ गई और व्यापारिक अवरोध कम हुए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अधीनस्थ इकाइयों को शत-प्रतिशत स्वामित्व देने के सरकार के फैसले के बाद भारत में कई अग्रणी बहुराष्ट्रीय कंपनियां आईं। उनके साथ-साथ विश्वस्तरीय प्रौद्योगिकी, ग्राहक उन्मुखता और कर्मचारी-उन्मुखता भी आई। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने स्पर्धा बढ़ाई, जिससे भारतीय कंपनियां भी विश्वस्तरीय मानदंड अपनाने के लिये विवश हो गईं।

उदारीकरण का एक अन्य लाभ यह हुआ कि आंकड़ा (डेटा) संचार सुविधाएं उपलब्ध हुईं। विदेश संचार निगम लिमिटेड ने भारतीय फर्मों को उपग्रह के माध्यम से आंकड़ा संचार सुविधाएं उपलब्ध कराना आरंभ किया। उपलब्ध बैंडविथ की गुणवत्ता और परिणाम दोनों में सुधार हुआ। कीमतें और लगाने वाला समय कम होकर एक तिहाई और एक चौथाई भर रह गया। इससे आईटी सेवा फर्मों को आसानी से और सस्ती आंकड़ा संचार सुविधाएं हासिल होने लगीं। इससे विदेशों के साथ व्यापार संभव हो गया। भारत और उत्तरी अमरीका के समय में 9.5-12.5 घंटे का अंतर है। भारतीय आईटी कंपनियों ने इस कालांतर का लाभ उठाते हुए चौबीसों घंटे सेवा प्रदान करना आरंभ किया और कुशल परियोजना निष्पादन एवं उच्च उत्पादकता हासिल की। इस तरह इस उद्योग ने वैश्वक सेवा मॉडल आरंभ किया और काफी हद तक भारत में ही उसका मूल्यवर्धन किया। विश्व सेवा प्रदाय के लाभों

को अब बढ़े पैमाने पर दुनियाभर में स्वीकार किया जा रहा है।

विदेशों में सेवा प्रदान करने के बढ़ते चलने के कारण भारतीय आईटी उद्योग का तीव्र विकास हुआ है। भारत का सूचना प्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित सेवाओं का निर्यात 1991-92 में महज 150 करोड़ डॉलर का था जो 2005-06 में बढ़कर 24 अरब डॉलर का हो गया। 2010 तक इसके 60 अरब डॉलर तक पहुंच जाने का अनुमान है। भारतीय आईटी एवं आईटी समर्थित सेवा उद्योग में वर्तमान में तकरीबन 13 लाख लोग रोज़गाररत हैं। इनके अलावा 30 लाख से ऊपर लोग इससे अप्रत्यक्ष रोज़गार पाते हैं। सीएलएसए के एक हालिया अध्ययन के अनुसार, 2010-11 तक भारत के आईटी क्षेत्र में, निर्यात और घरेलू सेवा - दोनों को मिलाकर लगभग 35 लाख लोग रोज़गार पा रहे होंगे। यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि आईटी क्षेत्र में तैयार होने वाला प्रत्येक रोज़गार अर्थव्यवस्था में 1.4 अन्य रोज़गार अवसर भी तैयार करता है।

भारतीय आईटी सेवा उद्योग की चुनौतियां

भारतीय आईटी सेवा उद्योग लोगों के लिये है। भारत में उपलब्ध उच्च योग्यता प्राप्त, अंग्रेज़ी भाषी, तार्किक रूप से मज़बूत तकनीकी मेधा हमारी प्रमुख प्रतिष्यधी ताक़त रही है। अनुमान है कि भारत में हर वर्ष लगभग चार लाख इंजीनियर तैयार होते हैं जबकि अमरीका में एक लाख से भी कम। लेकिन मैकिंसी के अनुसार, इनमें से एक तिहाई से भी कम इंजीनियर रोज़गार के लायक होते हैं। इस असंगति की वजहों में पाठ्यक्रम में एकरूपता की कमी, शिक्षा का अलग-अलग स्तर, कमज़ोर विश्लेषण क्षमता और शोध पर ज़ोर का अभाव शामिल है।

नैसकॉम के अनुसार, भारतीय आईटी सेवा फर्मों के सम्मुख जल्दी ही उच्च गुणवत्ता प्राप्त लोगों की कमी की समस्या आने वाली है। यह स्थिति हमारी शिक्षा प्रणाली में समग्र परिवर्तन की मांग करती है। सबसे पहले हमें स्कूल स्तर पर विज्ञान और गणित की शिक्षा अंग्रेज़ी माध्यम से देने पर बल देना होगा। अंग्रेज़ी

चूंकि आईटी सेवा उद्योग की व्यापारिक भाषा है, इसलिये ऐसा करना बहुत ज़रूरी है। हमें केवल स्थानीय भाषा में शिक्षा जैसे लोकलुभावन उपायों से अलग होना होगा। स्कूली पाठ्यक्रम छात्रों की समस्या-समाधान क्षमता और विश्लेषण क्षमता बढ़ाने वाली हो। दूसरे, कॉलेज स्तर पर हमें आईटी सेवा उद्योग उन्मुख पाठ्यक्रम प्रदान करना होगा। उद्योग के साथ सहयोग की कमी से न केवल उद्योग का, बल्कि शिक्षा प्रणाली का भी नुकसान होता है। उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्र में अमरीकी प्रभुत्व का सीधा कारण वहां मज़बूत शैक्षिक-उद्योग सहयोग का होना है। वस्तुतः इन्हीं मज़बूत संबंधों की वजह से अमरीका दुनिया के किसी भी दूसरे देश के मुकाबले अधिक सफल रहा है। हमें विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों और शोधकर्ताओं को उद्योग के साथ सहयोग करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए और इसके लिये विश्वविद्यालयों और संस्थाओं को अपेक्षित स्वायत्ता प्रदान करनी चाहिए। इससे न केवल आईटी सेवा क्षेत्र को, वरन् अन्य अनेक क्षेत्रों को मदद मिलेगी।

आर्थिक सुधारों के सकारात्मक प्रभाव

आर्थिक सुधारों से विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के एकीकरण की गति को तेज़ी मिली। 1991 में भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश लगभग 10 करोड़ अमरीकी डॉलर था जो 2006-07 में बढ़कर करीब 13 प्रतिशत पर जा पहुंचा है। वित्तीय बाज़ार में सुधारों की बदौलत सभी उद्योगों में निजी क्षेत्र की भागीदारी के कारण जीडीपी के प्रतिशत के रूप में बाज़ार पूँजीकरण 1990 के 13 प्रतिशत से बढ़कर अब करीब शत-प्रतिशत हो गया है।

मानव विकास संकेतकों से जुड़े आंकड़ों की मानें तो बीते पंद्रह सालों में भारत ने पर्याप्त सफलता हासिल की है। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि की वजह से ग्रीष्मी में कमी आई है। जीवन संभाव्यता 1991 में 60 वर्ष से कम थी जो बढ़कर अब 65 वर्ष के करीब पहुंच चुकी है। साक्षरता दर 1991 में 52 प्रतिशत थी, वह 2006 में बढ़कर 62 प्रतिशत पर पहुंच चुकी है।



इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

६

भूगोल विभाग

**रोजगार उन्मुखी एक वर्षीय स्नातकोत्तर
डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश**

विदेशी भाषा पाठ्यक्रम प्रमाण-पत्र सहित पर्यटन प्रशासन

उपर्युक्त रोजगार उन्मुखी पाठ्यक्रम में प्रवेश सम्मिलित प्रवेश परीक्षा और साक्षात्कार के आधार पर किया जायेगा। मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के स्नातक (किसी भी विषय में) प्रपत्र में आवेदन कर सकते हैं जो कि “पाठ्यक्रम समन्वयक पर्यटन प्रशासन” के पक्ष में भारतीय स्टेट बैंक विश्वविद्यालय शाखा को देय 350/- रु० डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा 300/- रु० नगद भुगतान कर भूगोल विभाग से 25 जून, 07 से 8 सितम्बर, 07 के बीच प्राप्त कर उन्हें प्रस्तुत करें। आवेदन पत्र हमारी वेबसाइट से भी डाउनलोड किया जा सकता है और विधिवत् भरा आवेदन पत्र मात्र 350/- रु० के डिमाण्ड ड्राफ्ट के साथ भेजें। आगे के विवरण के लिए डा० सतीश कुमार सिंह, मो०: 09451846139, 9450618665 पर सम्पर्क करें अथवा www.allduniv.edu पर लॉग ऑन कर प्राप्त कर सकते हैं।

**प्रोफेसर : बी.एन. सिंह :- पाठ्यक्रम समन्वयक
पर्यटन प्रशासन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा
भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद**

YH/8/7/7

सुधारों के एक प्रमुख परिणाम के रूप में विभिन्न क्षेत्रों के योगदान का पुनर्संयोजन हुआ। जीडीपी में सेवा क्षेत्र का योगदान 1990-91 में 41 प्रतिशत था जो 2007 में बढ़कर 56 प्रतिशत हो चुका है। (स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 56 प्रतिशत था)। वर्तमान समय में अनुमानतः कुल करीब 49.7 करोड़ लोग कार्यरत हैं, इनमें से करीब 23 प्रतिशत को सेवा क्षेत्र में रोज़गार मिला हुआ है। कृषि हालांकि आज भी सबसे ज्यादा रोज़गार देने वाला क्षेत्र है और इसमें 60 प्रतिशत लोगों को काम मिला हुआ है लेकिन राष्ट्रीय जीडीपी में इसका योगदान पांचवें हिस्से से भी कम है।

उम्मीद क्या पूरी होगी?

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास को लेकर काफी उम्मीदें हैं। एक तरफ जहां इस बात को पुष्ट करने वाले अनेक आंकड़े हैं कि भारत दमक रहा है, वहीं दूसरी तरफ यह प्रमाणित करने वाले तथ्य भी प्रचुर हैं कि भारत के विकास मार्ग में कई गद्दे हैं जो इसकी महत्वाकांक्षी विकास योजना को पथच्युत कर सकते हैं। आइए, हम कुछ चिंताजनक आंकड़ों पर नज़र डालें। भारत की 35 करोड़ से अधिक आबादी की दैनिक कर्माई एक डॉलर प्रतिदिन से भी कम है। यह आबादी 1947 में देश की जितनी कुल आबादी थी उससे ज्यादा है। वयस्क साक्षरता दर लगभग 61 प्रतिशत है, करीब 15 करोड़ लोगों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है और पांच साल से नीचे की उम्र के आधे बच्चों का बज़न कम है। भ्रष्टाचार के मामले में भारत को सबसे भ्रष्ट देशों में शुमार किया जाता है। गोल्डमैन सैंस ने अपने एक हालिया अध्ययन में भविष्यवाणी की है कि भारत 2020 तक 8 प्रतिशत की विकासदर बनाए रख सकता है, लेकिन इसके लिये बेहतर शिक्षा और लालफीताशाही कम करने की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था बनाएं

राष्ट्रीय समृद्धि विरासत में नहीं मिलती, उसे बनाना पड़ता है – माइकल पोर्टर

किसी भी देश की समृद्धि उसकी प्रतिस्पर्धी

अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती है। प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था अलग-थलग रहकर नहीं तैयार की जा सकती, इसे एक सुनियोजित प्रक्रिया बनाकर और उसका अचूक क्रियान्वयन कर तैयार करना पड़ता है। हमें अपने करोड़ों लोगों को बुनियादी शिक्षा और रोज़गार देकर उन्हें ग्रीष्मी से निकालना होगा और इस तरह समग्र राष्ट्रीय विकास सुनिश्चित करना होगा। हमें निवेशक-हितैषी व अवरोध मुक्त माहौल बना कर भारत को उत्पादन और सेवाओं का प्रतिस्पर्धी लागत वाला विश्वस्तरीय स्रोत बनाने की ललक दिखानी होगी।

शिक्षा

यह सुस्थापित तथ्य है कि शिक्षा आय का स्तर बढ़ाने में और इस तरह ग्रीष्मी दूर करने तथा आर्थिक प्रगति को संभव बनाने में मदद करती है। भारतीय संविधान की राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों (अनुच्छेद 45) में कहा गया है : इस संविधान के लागू होने के 10 वर्षों के भीतर सरकार 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगी। लेकिन संविधान लागू होने के 50 साल से अधिक वर्ष बीत जाने के बावजूद हम इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं कर पाए हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की रिपोर्ट के अनुसार, प्राथमिक, माध्यमिक और तीसरे स्तर के स्कूलों में भारत का सम्मिलित समग्र नामांकन अनुपात 60 प्रतिशत है।

शिक्षा तक पहुंच बढ़ाएं

भारत की जनसांख्यिकीय स्थिति अनुकूल है। हमारे यहां 40 करोड़ लोगों की आयु 15 वर्ष से कम है और इसमें प्रतिवर्ष 1 करोड़ लोग बढ़ रहे हैं। लेकिन हमें निर्धन बच्चों को, कम से कम प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के बच्चों को प्राथमिक पोषक आहार की उपलब्धता सुनिश्चित करना होगा। उन्हें दोपहर का भोजन उपलब्ध कराया जाना चाहिए ताकि उनका शारीरिक स्वास्थ्य सुनिश्चित किया जा सके। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये बुनियादी शिक्षा को नये सिरे से बल प्रदान करना होगा और छात्र केंद्रित शिक्षण

प्रविधियों एवं कुशल व इच्छुक शिक्षक तैयार करने की नीति अपनानी होगी।

रोज़गार के अवसर तैयार करें

निर्धनता दूर करने का एकमात्र उपाय समुचित आय वाली रोज़गार के अवसर तैयार करना है। इस निष्कर्ष के लिये हमें किसी विशद अध्ययन की ज़रूरत नहीं है। यह एक बहुत बड़ा दायित्व है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार, हमारे देश में बेरोज़गारों की संख्या लगभग 25 से 30 करोड़ के बीच है। इस विशाल संख्या में हर साल 3.5 से 4 करोड़ नये रोज़गार ढूँढ़ने वाले जुड़ रहे हैं। इन युवाओं में से लगभग 70 प्रतिशत की उम्र 18 और 25 वर्ष के बीच है, वे अशिक्षित अथवा नाममात्र को शिक्षित हैं। इसकी तुलना में देश में बमुश्किल 30 लाख रोज़गार सालाना पैदा हो पा रहे हैं।

यदि हमारी बेरोज़गार आबादी के एक तिहाई हिस्से को भी काम मिल जाए और वे जीडीपी में सालाना प्रतिव्यक्ति 600 डॉलर का योगदान भी करें तो हमारी जीडीपी में वार्षिक 60 अरब डॉलर जुड़ेंगे। हमें गांवों में रह रहे लोगों का आय स्तर बढ़ाना चाहिए। एक ग्रामीण जीडीपी में सालाना 300 डॉलर से भी कम योगदान कर रहा है। हमारी 35 प्रतिशत से भी अधिक आबादी एक दिन में एक डॉलर से भी कम उपर्जित कर रही है। हमारे पास उनकी आय बढ़ाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इसके लिये हमें अल्प तकनीकी बाले उत्पादन कार्यों पर ध्यान केंद्रित करना होगा। चीन ने पिछले 11 वर्षों में अल्प तकनीकी उत्पादन क्षेत्र में लगभग 15 करोड़ रोज़गार का सृजन किया है।

हमें अपनी श्रम भागीदारी दर भी बढ़ाना होगा। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अध्ययन के अनुसार, 2005 में भारत में श्रम भागीदारी दर (15 से 62 वर्ष के बीच) 62 प्रतिशत थी जो चीन के 82 प्रतिशत की दर से कम थी। अतः न केवल श्रम बल में शामिल होने वाले नये लोगों को रोज़गार मुहैया कराने के लिये, बल्कि उच्च भागीदारी के कारण श्रम बल में वृद्धि को पूरा करने के लिये भी

तेजी से रोज़गार बढ़ाने की ज़रूरत है।

राष्ट्रीय क्रियाशील शक्ति का 92 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में काम करते हैं और जीडीपी में उनका योगदान 60 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में संगठित अर्थव्यवस्था के मुकाबले 7 गुना अधिक श्रम गहनता और पांच गुना कम पूँजी गहनता है। रोज़गार सृजन में संगठित क्षेत्र की भूमिका काफी कम रहने की उम्मीद है। रोज़गार सृजन में छोटे और लघु उद्यमों की केंद्रीय भूमिका होगी। इसलिये कौशल विकास में उनको सहायता दी जानी चाहिए।

औपचारिक कौशल प्रशिक्षण प्रणाली में प्रवेश की शैक्षिक आवश्यकताएं होती हैं और उनका कोर्स लंबी अवधि वाला होता है। इसलिये उनका स्वरूप अल्प शिक्षित लोगों को कौशल प्रदान करने वाला नहीं होता। इस कमी को पूरा करने के लिये भारत सरकार ने 1960 के दशक में अनेक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) खोले थे ताकि बढ़ीगिरी और प्लंबिंग आदि का व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अध्ययन के अनुसार, 2003 में भारत में 4,500 से अधिक आईटीआई थे जिनकी कुल क्षमता 6,78,000 लोगों को प्रशिक्षण देने की है। लेकिन आईटीआई को आवंटित बजट का 77 प्रतिशत वेतन देने में ख़र्च हो जाता है। इसलिये ये संस्थान अपेक्षित भौतिक संरचना तैयार नहीं कर पा रहीं। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार, 51 प्रतिशत से अधिक संस्थानों ने बताया है कि उनकी सीटों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता। बड़ी संख्या में कुशल तकनीशियन तैयार करने के लिये आईटीआई को सुविधासंपन्न बनाना होगा। इससे असंगठित क्षेत्र में कौशल का विकास होगा और लाखों लोग लाभकारी रोज़गार पा सकेंगे जिससे समग्रतः आर्थिक विकास होगा।

बढ़े पैमाने पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा दें

द इकोनॉमिस्ट के अनुसार, चीन तथा अधिकांश दूसरी उदीयमान एशियाई अर्थव्यवस्थाओं से अलग भारत प्रत्यक्ष विदेशी

निवेश की तुलना में बढ़े पैमाने पर अल्पकालिक पोर्टफोलियो पूँजी के अंतर्प्रवाह पर निर्भर है जबकि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश दीर्घकाल के लिये होती है। विगत साढ़े तीन सालों में भारत में पूँजी अंतर्प्रवाह का पांच में से चार भाग अल्पकालिक पूँजी कर रहा है। इससे भारत में वित्तीय झटके लगाने का ख़तरा बढ़ जाता है।

चीन, ब्राज़ील, मैक्सिको और पूर्वी एशियाई देशों जैसे अधिकांश अग्रगामी विकासशील देशों की जीपीडी में निर्यात का योगदान 30 प्रतिशत से अधिक है। दूसरी तरफ, हमारे यहां यह अब भी 15 प्रतिशत से कम है। यह लक्ष्य हासिल करने के लिये हमें उन उत्पादों पर ध्यान केंद्रित करना होगा जिनकी विकसित देशों को ज़रूरत है। चीन की तरह हमें दुनिया का कारखाना बनाना होगा।

हमें विदेशी फर्मों द्वारा शत-प्रतिशत निवेश वाले ऐसे निर्यातोन्मुखी इकाइयां लगाने के लिये अनुकूल महौल तैयार करना चाहिए जहां वे कुशल श्रमिकों को रोज़गार देकर कम मूल्य पर विश्वस्तरीय उत्पाद तैयार करें। उच्च निर्यात के फलस्वरूप रोज़गार और व्यय करने योग्य आय बढ़ेगी। इसका हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक पोषणीय प्रभाव पड़ेगा।

सरकार की भूमिका : व्यवसाय के अवरोध कम करें

सरकार को सुविधाप्रदाता और चुनौती रखने वाले की भूमिका निभानी चाहिए। उसे कंपनियों को प्रतिस्पर्धा के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए। माइकल पोर्टर के अनुसार, सरकार की वे नीतियां सफल होती हैं जो कंपनियों को प्रतिस्पर्धी बनाने के लिये उचित महौल रचती हैं न कि वे जो सीधे-सीधे सरकार को इस प्रक्रिया में शामिल कर लेती हैं।

ऐसी संस्कृति कदापि न बनाएं जो शाश्वत रूप से सब्सिडी के मार्फत उद्योगों और लोगों की मदद करे क्योंकि इससे देश की दीर्घकालिक प्रतिस्पर्धी क्षमता को नुकसान पहुँचता है। वस्तुतः 1991 में दिवालियेपन के

करीब हम 1980 के दशक के दौरान अत्यधिक सब्सिडी देने के कारण ही पहुँचे। हमें प्रतिस्पर्धा बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और इसके लिये उद्योगों की आवश्यकतानुसार सांस्थानिक संरचना की रचना हेतु उनके साथ मिलकर काम करना चाहिए। हमें इस पुरानी कहावत के अनुसार आचरण करना चाहिए कि मछली देने के बदले मछली पकड़ना सिखाओ। हमें व्यवसाय के मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करके व्यवसाय को बढ़ावा देना चाहिए, न कि कर छूट देकर।

आपूर्ति शृंखला की कुशलता बढ़ाएं

9 प्रतिशत अथवा उससे अधिक वृद्धि दर के मार्ग में खड़ा सबसे बड़ा अवरोध भारत का बुनियादी ढांचा है। खस्ताहाल सङ्कें, बंदरगाह और बिजली की स्थिति है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सफल होने के लिये आदान लागत तथा संसाधन लागत को कम होना चाहिए तथा आपूर्ति शृंखला की कुशलता अधिक होनी चाहिए। उत्पादन क्षेत्र में चीन की प्रतिस्पर्धी क्षमता का कारण बंदरगाहों पर लगने वाला कम समय और बेहतर सङ्केत संपर्क सुविधा है।

अनुमानों के अनुसार, भारत की औसत उत्पादन फर्में प्रतिवर्ष 8 प्रतिशत बिक्री बिजली की कटौती के कारण गंवा देती है। भारत का बुनियादी ढांचे पर निवेश इसकी जीडीपी का 4 प्रतिशत है जबकि चीन में यह 9 प्रतिशत है। डॉलर में देखें तो चीन अपने बुनियादी ढांचे पर भारत की तुलना में सात गुना ज्यादा ख़र्च करता है।

ग्रामीण और शहरी बुनियादी ढांचे में सुधार होना चाहिए। विश्व बैंक के अनुसार, “राज्य पीडल्ब्यूडी (लोक निर्माण विभाग) का केवल 5 प्रतिशत सङ्कें के रखरखाव पर ख़र्च किया जाता है।” गांवों का संपर्क बेहतर होना चाहिए ताकि वे आर्थिक विकास में भाग ले सकें। हाल में ही प्रकाशित भारत का ग्रामीण बुनियादी ढांचे रिपोर्ट के अनुसार, 1990-97 के दौरान ग्रामीण सङ्कें की कुल लंबाई में मात्र 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इस अवधि में बजट आवंटन बढ़कर लगभग तिगुना हो गया। राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक शोध परिषद की

एक रिपोर्ट के अनुसार, राज्य सरकारों की निधि का अधिकांश, “राज्य उच्चपथों तथा अन्य जिला सड़कों के साथ-साथ कर्मचारियों के बेतन भुगतान के मद में अंतरित कर दिया जाता है।”

हमारी सड़कों और हवाई अड्डों जैसे बुनियादी ढांचों के निर्माण के लिये वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी और सफल फर्मों को आमंत्रित किया जाना चाहिए। भारतीय फर्मों को बुनियादी ढांचे के सर्वोत्तम परामर्शदाताओं और संगठनों के साथ काम करना चाहिए ताकि हम आधुनिकतम विधियां सीख सकें। उदाहरण के लिये, फ्रांस के चार्ल्स दे गॉल हवाई अड्डे में माल दुर्लाल प्रणाली का निर्माण 1970 के दशक में विदेशी सहयोग से किया गया था। फ्रांस ने कंप्यूटर साइंसेस कॉर्पोरेशन जैसी अनेक विश्वस्तरीय फर्मों को स्थानीय फर्मों के साथ मिलकर काम करने के लिये आमंत्रित किया था।

सरकार की कुशलता बढ़ाने के लिये हमें निजी क्षेत्र को शामिल कर सार्वजनिक-निजी साझेदारी (पीपीपी) तैयार करना चाहिए। इसमें सरकार लोकहित का और निजी क्षेत्र कुशलता, प्रभाविता और जबाबदेही का ध्यान रखती है। श्रीमती इंदिरा गांधी ने सरकार में निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों को लाने का प्रयोग किया था। लेकिन उनके उत्तराधिकारियों ने इस प्रयोग को छोड़ दिया। हमें इसे पुनः आजमाना चाहिए।

शीघ्रता बोध का सृजन करें

हमें देश में एक तरह के शीघ्रता और निष्पादन का बोध पैदा करना चाहिए। हमारी

धीमी प्रगति का एक प्रमुख कारण नौकरशाही है जिसकी जवाबदेह नगण्य है और बेहतर काम करने पर जिसे किसी किस्म का प्रोत्साहन नहीं मिलता। क्रियान्वयन में होने वाले विलंब का हमारी राजनीतिक व्यवस्था से प्रायः कुछ लेना-देना नहीं होता। इसकी वजह क्रियान्वयन में गति और प्रकर्ष के प्रति ध्यानाभाव है। हमें सरकार की निर्णय-प्रक्रिया में आर्थिक व्यवहारिकतावाद का भाव लाना होगा और सरकारी व्यवस्था में निष्पादन एवं पुरस्कार के बीच संबंध स्थापित करना होगा। हमें यथास्थिति बनाए रखने की ‘प्रशासनिक’ मानसिकता को बदलना होगा। इसे प्रबंधकीय व्यवस्था बन जाना चाहिए जिसका अभिप्राय समयबद्ध रूप से, निर्धारित बजटीय लागत के भीतर और ग्राहकों की संतुष्टि के अनुरूप काम पूरा कर लेना होता है।

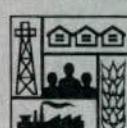
निष्कर्ष

हमारी अब तक की प्रगति से बहुत थोड़े से लोग लाभान्वित हुए हैं और बहुत सारे लोग छूट गए हैं। आर्थिक सफलता और वित्तीय समृद्धि की हमारी यात्रा को अभी लंबा रास्ता तय करना है। अपने अतीत के अंतर्निरीक्षण और भविष्य पर दृष्टिपात करने पर हम अपने आप को अवसरों के सागर के बीचोबीच पाते हैं। हम बदलती हुई विश्व व्यवस्था के मध्य में हैं जिनका भारत और उसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा असर पड़ा है। निकट अतीत में इससे पहले कभी भी भारत ऐसी स्थिति में नहीं रहा जहां ऊर्ध्वमुखी आर्थिक विकास, वैश्विक एकीकरण में बढ़त, वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिये

तत्पर भारतीय फर्मों का उदय और उत्पादन तथा ज्ञान आधारित उद्योगों में भारत की पहचान जैसे विभिन्न लाभकारी कारक अपना प्रभाव दिखा रहे हैं। इनके अलावा, भारत की युवा आबादी काफी ज्यादा है। इसकी आधी से अधिक जनसंख्या 25 वर्ष से कम उमर की है। अर्थशास्त्री इसे जनसांख्यिक लाभांश कहते हैं जिसका सही तरीके से इस्तेमाल हो तो वे चमत्कार कर सकते हैं।

इस बदलती हुई व्यवस्था में लंबी छलांग लगाने के लिये हमारे पास सभी समर्थ हथियार हैं। हमारे पास प्रभावकारी नेतृत्व, गतिशील कॉरपोरेशन और जनतांत्रिक शासन व्यवस्था है। वस्तुतः दुनिया के समस्त विकसित राष्ट्र जनतंत्र हैं। हमें सबके लिये शिक्षा सुनिश्चित करना चाहिए। उन्हें रोज़गार योग्य बनाना चाहिए और, देशवासियों के लिये रोज़गार पैदा करना चाहिए। हमें शीघ्रता बोध और निष्पादन की ललक सुनिश्चित करना होगा। इस ऐतिहासिक अवसर को खो देना अक्षम्य होगा।

विभिन्न कालविधियों के दौरान अर्थिक विकास पर नज़र डालने पर यह बेहद साफ़-साफ़ दिखाई देता है कि स्पष्ट निष्पादन नीति के साथ बनाई गई विकास योजनाओं का हमेशा चमत्कारी परिणाम मिलता है। बिना उचित निष्पादन रणनीति के तैयार की गई महान योजनाएं, हमेशा महान नज़र आती हैं, लेकिन केवल कागज़ पर। वे सार्वजनिक संसाधनों की बर्बादी करती हैं और हितधारियों के मनो-मस्तिष्क में क्षोभ पैदा करती हैं। स्पष्ट जवाबदेही के साथ निष्पादन बहुत महत्वपूर्ण



योजना

सितंबर 2007 अंक

जल

पर केंद्रित होगा

है और इसे राष्ट्रीय विकास की हमारी समग्र रणनीति का अंग बनाया जाना चाहिए। निष्पादन के लिये वको ध्यानम्, कागचेष्टा, अनुशासन और प्रतिबद्धता अपेक्षित हैं। इन सबके लिये व्यक्तिगत हितों और वर्तमान पीढ़ी के हितों का त्याग करने वाली मानसिकता की ज़रूरत है ताकि भावी पीढ़ियों का भला हो सके।

मुझे, जितना पीछे देख सकते हो, देखो, अतीत के शाश्वत सोतों से छक कर पियो, और उसके बाद आगे देखो, बढ़ो और भारत को और उज्ज्वल, और महान, और ऊँचाई तक ले जाओ, जहां वह पहले कभी न पहुंचा हो। - स्वामी विवेकानन्द □

(लेखक इकोनॉमिक्स टेक्नोलॉजिज़ लिमिटेड, बंगलुरु के अध्यक्ष और प्रमुख परामर्शदाता हैं)

संदर्भ सूत्र :

1. द वर्ल्ड इकोनॉमी (खंड-1), अंगस मेडिसन
2. द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल, खंड-1 रेमेश दत्त
3. द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1857 से 1947, तीर्थकर राय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006
4. स्रोत: माइकल एच. फिशर, दि पॉलिटिक्स ऑफ ब्रिटिश एनेक्सेशन इन इंडिया 1757-1857, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993
5. स्रोत: द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1857 से 1947, तीर्थकर राय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006
6. स्रोत: एम.डी.मौरिस. ब.सी.बी.दुबे, सेलेक्टेड रेलवे स्टैटिस्टिक्स फॉर द इंडियन सबकॉन्ट्रिनेंट, 1853-1946-7, अर्थ विज्ञान, 17(3), सितंबर 1975
7. द वर्ल्ड इकोनॉमी, खंड-1, एंगस मेडिसन
8. द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल, खंड-1 रेमेश दत्त
9. स्रोत: राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, भारत सरकार
10. 1947-1947: दि बैलेंसशीट, सी. राममोहर रेडी, दि हिंदू 15 अगस्त 1997
11. आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 1996-1997
12. ग्रोइंग ऑन सेविंग्स, शीतांशु स्वेन, दि फाइनेंशियल एक्सप्रेस, 21 मई, 2007
13. अहुलवालिया एम.एस. इकोनॉमिक रिफॉर्म्स इन इंडिया सिस 1991 : हैज ग्रीनुअलिज वर्क, जर्जल ऑफ इकोनॉमिक पर्स्पेरिट्स, खंड-16, सं. 3
14. इंडियाज एक्पोर्ट परफॉर्मेंस ए कंपोरेटिव एनालिसिस, श्रीनिवासन टी.एन., ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
15. दि फ्यूचर ऑफ इंडिया—पॉलिटिक्स, इकोनॉमिक्स एंड गवर्नेंस, डॉ. पेंग चिमल जालान बुक्स, 2005
16. किरकल स्टेबलाइजेशन एंड इकोनॉमिक रिफॉर्म्स इन इंडिया, विजय जोशी, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 2001

हमारी प्रेरणा के स्रोत



सन् सत्तावन का एक वीर, गंगा मेहतर, फांसी दिए जाने से ठीक पहले यह तस्वीर सन् 1858 में 5 कानपुर में अंग्रेज सिविल सर्जन जॉन निकोलस ट्रेसीडर (1818-1889) ने ली थी।

साभार : अल्काजी संग्रह

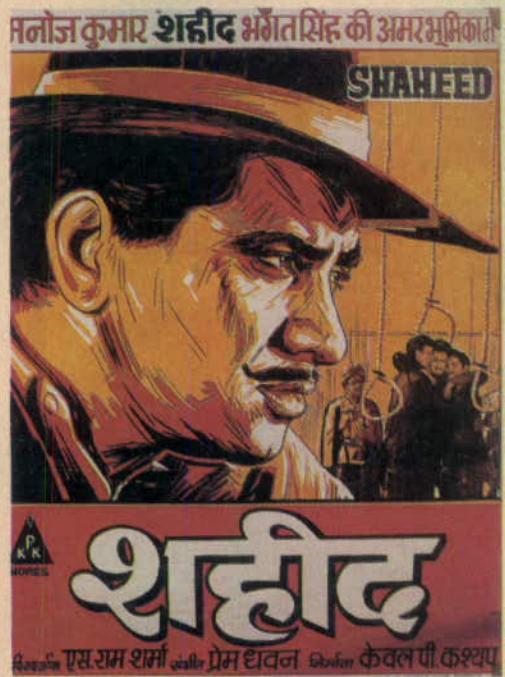
1857

1947

2007

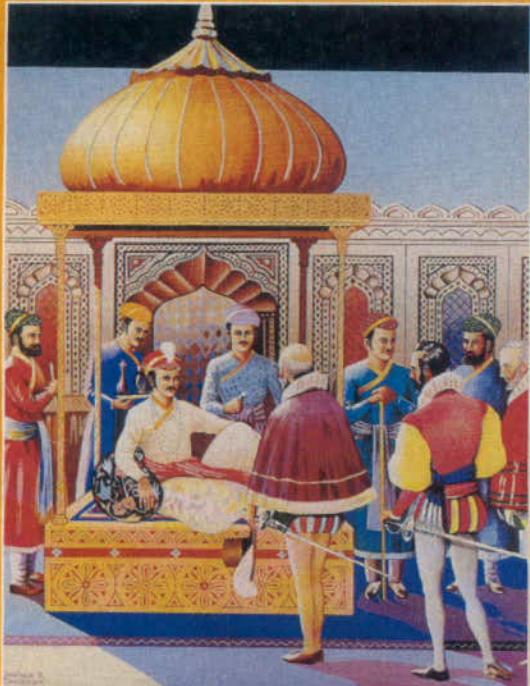
अदम्य जिजीविषा

सिनेमा के जरिये मुकित कामना की एक झलक



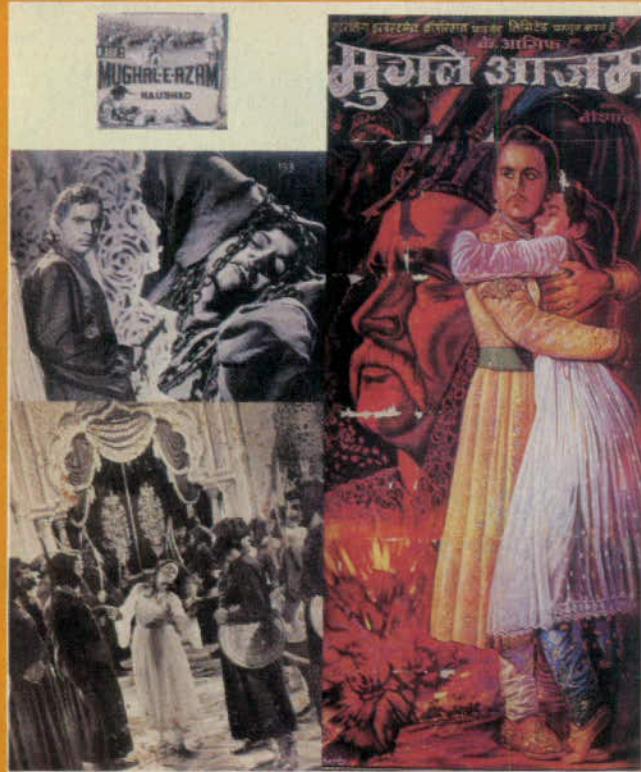
VIOLENCE
ANEW

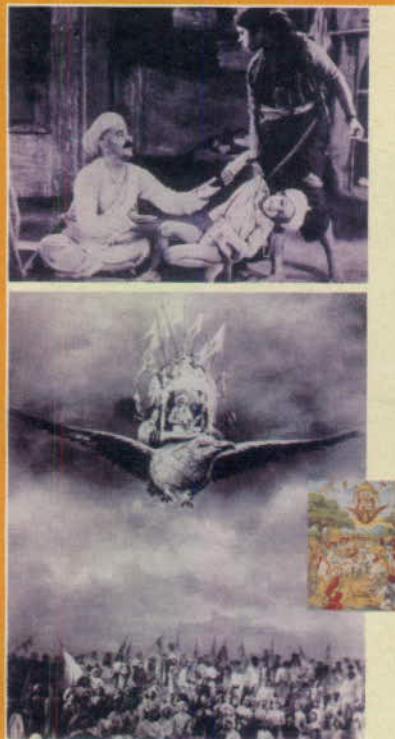
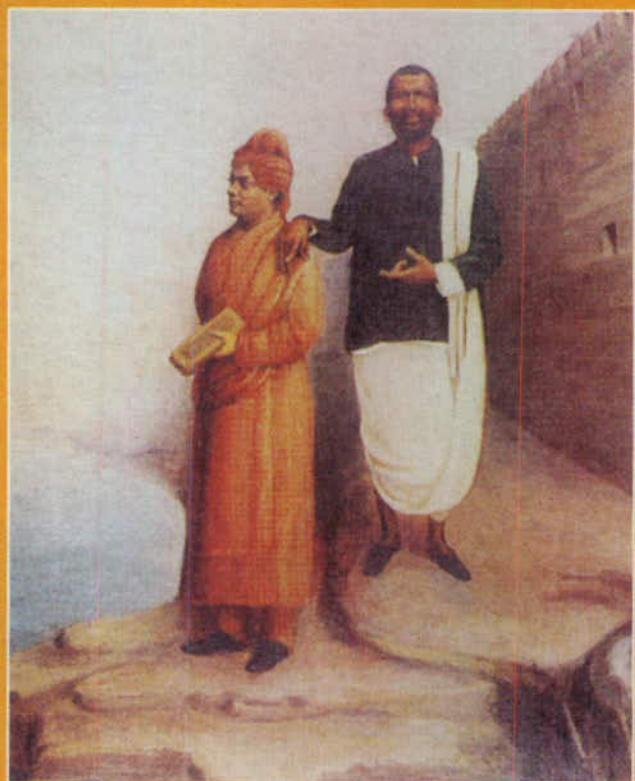
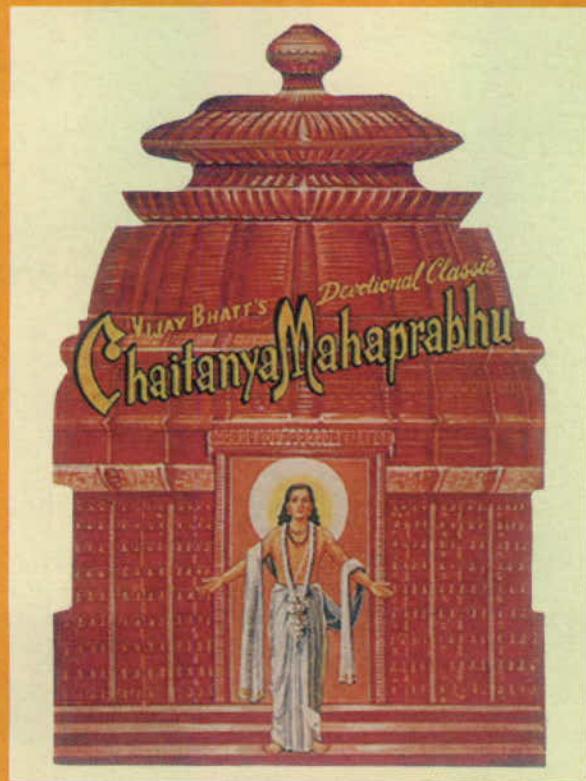




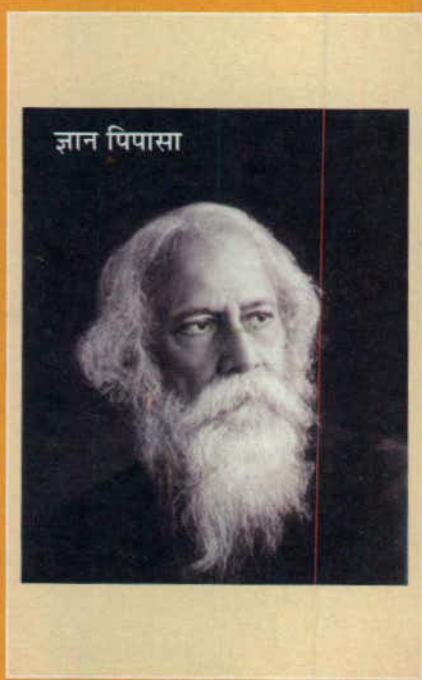
SEE INDIA

AKBAR RECEIVES AN EMBASSY
SENT BY QUEEN ELIZABETH TO
FATEHPUR SIKRI IN 1586





अलग किस्म की
आध्यात्मिकता की चाह



१९४७ अप्रैल, प्रथमी वार्षिक
संस्कार संस्कार चतुर्दशी १९४८



सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता नवीकरण पता बदलने के लिये

(जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का
 वार्षिक (100 रुपये) द्विवार्षिक (180 रुपये) त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूँ। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या तारीख

नाम

वर्ग विद्यार्थी शिक्षक संस्था अन्य

पता :

पिन

नवीकरण/पता बदलने के लिये कृपया अपनी सदस्य संख्या
यहां लिखें

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के
नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग

ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066

दूरभाष : 26100207, 26105590

पहली प्रति की ग्राहनि हेतु आठ से दस हफ्ते का समय दें।

1. हम दिल्ली से योजना अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में
कुरुक्षेत्र हिन्दी और अंग्रेज़ी में
आजकल हिन्दी और उर्दू में
और बच्चों की पत्रिका बाल भारती हिन्दी में प्रकाशित करते हैं।
2. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग को नयी दिल्ली में देय होना चाहिए।
3. यह कूपन विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 के पते पर
भेजिए।
4. सदस्य बनने के लिये आप हमारे निम्नलिखित केन्द्रों पर भी सम्पर्क कर सकते हैं :
प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पूर्वी खंड-IV रामकृष्ण पुरम, नयी दिल्ली-110001 (दूरभाष: 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन * बिक्रीकेंद्र) * सूचना भवन, सीजीओ कॉम्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष: 24365609) * 701, बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष: 22610081) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष: 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर, चेन्नायी-600070 (दूरभाष: 24917673) * प्रेस रोड, गवर्नरमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष: 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकला कॉम्लेक्स, एमजे रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष: 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034 (दूरभाष: 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष: 2301823) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-8, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष: 2325455) * अंबिका कॉम्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्डी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष: 26588669) * नौजान रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-781001 (दूरभाष: 2516792) * द्वारा/पीआईबी, मालवीय नगर, भोपाल-462003 (म.प्र.) (दूरभाष: 2556350) * द्वारा/पीआईबी, बी-7/बी, भवानी सिंह रोड, जयपुर-302001 (राजस्थान) (दूरभाष: 2384483)
5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

भारत की भवान पैदावार

○ अजीम प्रेमजी

सदियों पुराने साम्राज्यवाद ने 1940 तक भारत भूमि का दोहन कर इसे बंजर और ग़रीब बना डाला। स्वतंत्रता के बाद आसान विकल्पों द्वारा हमने अपनी भूमि को उर्वर बनाने का फैसला किया। वे तीन आदर्श विकल्प आज हमें गैरवान्वित करते हैं।

पहला आदर्श बहुलतावाद था, जो हमें यह विश्वास दिलाता है कि हमारे विविध मत, दर्शन और व्यवहार ऐसे मनके हैं जो हमें एक धारे के रूप में एक साथ पिरोते हैं और हमें हमारी पहचान देते हैं। दूसरा आदर्श लोकतंत्र है, जो हमें यह बताता है कि हम एक राष्ट्र हैं, जहां कोई नागरिक दूसरे नागरिक की तुलना में बड़ा नहीं है। तीसरा आदर्श गुटनिरपेक्षता है, जो मध्य मार्ग पर चलने के लिये आवश्यक है और जिससे बामपंथ और दक्षिणपंथ को विभाजित करने वाली लकीर धुंधली पड़ जाती है। इन ऊंचे आदर्शों को याद करना महत्वपूर्ण है, क्यों कि ये विश्व की अब तक की राष्ट्रीयता की सबसे ऊंचे आदर्श रहे हैं। इसने एक युद्ध पीड़ित विश्व को चुनौती दी। एक पूर्वाग्रह और एक आकांक्षा थी, जो संपन्नता के आधार पर अपने आप को सिद्ध करना चाहते थे, उनका दावा था कि एक देश को उसकी आर्थिक अथवा सैन्य शक्ति के द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता बल्कि उसे मानवता के प्रति सामूहिक दृष्टिकोण के आधार पर परिभाषित किया जाता है।

तब से लेकर हमने मन, वचन और कर्म से इस भूमि को जोतने का अथक प्रयास किया और अब जाकर भारत की पुनर्जीवित मिट्टी खेती के लिये तैयार हुई है।

कोई व्यक्ति एक राष्ट्र का सृजन किस प्रकार करता है? हम किस प्रकार यह सुनिश्चित करते हैं कि पिछले छह दशकों की मेहनत से हम एक नये और सक्षम समाज का सृजन कर सकेंगे, जो हमारे राष्ट्र निर्माताओं के आदर्शों के अनुकूल हो? सभी अच्छे किसानों को अपनी जोत के बारे में जानकारी लेकर खेती की शुरुआत करनी चाहिए। उन्हें फ़सल का चयन करने से पूर्व मिट्टी की जांच, जलवायु का अध्ययन और स्थानीय संसाधन का मूल्यांकन करना चाहिए। हमारे लिये यह लागू नहीं है पर इसके बावजूद हमारे लिये ज़रूरी है कि पहले हम फ़सल का चयन करें और फिर यह निर्धारित करें कि भूमि की तैयारी किस प्रकार करें।

फ़सल का चयन

पारंपरिक विकास मॉडल हमें बताते हैं कि भारतीय फ़सलों की दो विशेषताएं होनी चाहिए, पहला आर्थिक शक्ति और दूसरा मानवीय विकास। आर्थिक शक्ति एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के आकार, विकास की संभावना और प्रभाव से संबंधित है। मानव विकास एक ऐसा उपाय है जो प्रत्येक नागरिक को खाद्य, आवास, परिवहन, शिक्षा, न्याय आदि तक उसकी पहुंच सुनिश्चित करता है।

समकालीन विचार के अनुसार, हमलोग उस रास्ते पर हैं जो हमें विश्व की सबसे अधिक शक्तिशाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में स्थापित करेगा, किंतु दूसरी और हम मानव विकास के मुद्दे पर पीछे रह गए हैं।

क्या बहुलतावाद और समानता जैसी फ़सलें हमारी संवैधानिक आकांक्षाओं और स्थापित आदर्शों को संतुष्ट करने में सक्षम हैं? इसके अलावा, क्या भारत को राष्ट्रों और मतों के बीच कमतर हो चुके मैत्री संबंधों पर मानवीय गतिविधि के हानिकारक प्रभावों जैसी प्रमुख वैश्विक चुनौतियों से निपटने में अनुकरणीय भूमिका का निर्वाह नहीं करना चाहिए?

इसे ध्यान में रखते हुए मैं सुझाव देना चाहता हूं कि राष्ट्रनिर्माण में तीन प्रमुख प्रक्रियाएं शामिल होनी चाहिए। पहली प्रक्रिया भागीदारी की है, जो प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में सक्षम अवसर प्रदान करती है। दूसरी प्रक्रिया धारण क्षमता है, जो पारिस्थितिकी संरक्षण और जैविक संसाधनों पर हमारे प्रभाव को कम करने की हमारी क्षमता का द्योतक है। तीसरी प्रक्रिया समानुभूतिपूर्ण विमर्श है, जो व्यक्तियों, समूहों, समाजों और राष्ट्रों के बीच साझा धरातल तलाशने की प्राथमिक प्रक्रिया है।

अब हम एक जटिल प्रश्न की ओर चलते हैं। हम किस प्रकार का राष्ट्र चाहते हैं, हमें इसका आभास होना चाहिए। इतिहास से और अनुभव से भी हमें इसके घटकों की समझ है। लेकिन इसे सार्थक करने की जिम्मेदारी किसकी है?

किसानों के बारे में जानकारी

हमारा लक्ष्य चाहे राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के दायरे में हो अथवा मूलभूत अधिकारों तक नागरिकों की पहुंच से संबंधित हो, राष्ट्र निर्माताओं को नीति और कार्रवाई को प्रभावित करने वाले विषयों तक अपना ध्यान सीमित करना चाहिए। मैंने पहली बार यह एक सार्वजनिक सभा में सुना। यहां एक वक्ता ने यह महसूस किया कि यदि उसे राजनीतिक नेता, नौकरशाह, न्यायाधीश, उद्योगपति, संघ के नेता आदि के रूप में उनके कार्यकाल के संदर्भ में सार्थक लोगों की गिनती करने का काम मिले तो उसमें लगभग दो हजार लोगों के नाम आएंगे। उन्होंने कहा कि यदि हम कल्पना करें कि हमारे पूरे देश का भाग्य दो हजार लोगों के हाथ में हो, तो क्या हमें सिर्फ़ दो हजार वैसे ही लोग चाहिए जो हमारे राष्ट्र के भाग्य का नियंत्रण करे? क्या हम इन लोगों के चयन के बारे में अपने अधिकारों के इस्तेमालभर से अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं?

जब हम भागीदारी, यथासाध्य कार्रवाई और वार्ता जैसी प्रक्रियाओं को ज़रूरी मानते हैं तो प्रभुत्व का कोई भी विचार हो, उसका केवल दुष्परिणाम ही होगा। मैं आपको सुझाव देता हूं, इस प्रकार का विस्तृत और जटिल कार्य तभी हो सकेगा जब प्रत्येक भारतीय नागरिक राष्ट्र निर्माण का दायित्व अपने कंधे पर लेगा। इस प्रकार के राष्ट्र के सृजन की प्रक्रिया में नागरिक केवल एक मूकदर्शक ही नहीं है अथवा महज एक योगदानकर्ता ही नहीं है, बल्कि स्वामित्व का हिस्सेदार है और इस प्रक्रिया का एक सक्रिय भागीदार है। वह लेखक और लेख दोनों है।

भारत के लिये किस प्रकार की नागरिकता ज़रूरी है, इसे समझने के लिये हमारे लिये भारत के संविधान को पढ़ने के अलावा और कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। जड़ और संकीर्णतापूर्ण विशेषताओं को पेश करने के स्थान पर भारत का संविधान व्यापक रूप से एक आदर्श नागरिक की परिभाषा का सुझाव देता है। मैं आपके सामने एक नागरिक के मौलिक कर्तव्यों पर आधारित चुनिंदा उद्धरण रखना चाहता हूं:

- सभी लोगों के बीच सामंजस्य और साझा भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना,
- प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण और विकास करना और जीवों के प्रति दया रखना,
- वैज्ञानिक सोच, मानवतावाद का विकास करना और पूछताछ के प्रति उत्सुकता के साथ ही सुधार करना,
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि के सभी पहलुओं पर विशिष्टता प्राप्त करना ताकि राष्ट्र का प्रयासों और उपलब्धियों के उच्चतर स्तरों तक निरंतर उत्थान हो।

जब हम उन कर्तव्यों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व जैसे आदर्शों के क्रीब रखते हैं अथवा समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों के क्रीब रखते हैं तो हम महसूस करते हैं कि इनमें से प्रत्येक आदर्श, अधिकार और कर्तव्य महज भारत और इसके नागरिकों के बीच के संबंध को ही नहीं बताता है, बल्कि यह साबित करता है कि भारत की अवधारणा एक नागरिक की अवधारणा से भिन्न नहीं है। इसका कहना है कि जब एक खास प्रकार की नागरिकता सभी तरफ व्याप्त हो जाती है तो वैसे आदर्शों, अधिकारों और कर्तव्यों वाले समाज का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। निश्चित रूप से यह आधुनिक राष्ट्रों के उस सबसे बड़े भ्रम को तोड़ता है जो कहता है कि राष्ट्र और नागरिक दो भिन्न चीजें हैं।

राष्ट्र निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है और इसके लिये विभिन्न भागीदारों के साथ सशक्त भूमिका निभाने की ज़रूरत है। एक राष्ट्र के सृजन की प्रक्रिया नागरिकों और नागरिकता के विकास की प्रक्रिया है, जो राष्ट्रनिर्माण का केंद्र बिंदु है।

नागरिकता का विकास

अब समय आ गया है कि अब तक उपलब्ध नागरिकता के निर्माण की व्यापक अवधारणा से निकलकर हम एक भिन्न परिदृश्य तक पहुंचें। इसका निष्कर्ष यह है कि आदर्श नागरिक वह है जो सोच से साहसी और सुधारवादी हो, विचार से सृजनशील और समालोचक हो तथा कार्यशैली से प्रभावकारी मानवतावादी हो।

हमें मालूम है कि राष्ट्रवाद और नागरिकता का भारतीय आदर्श इतना ऊंचा है, इसलिये हममें कमियां मिलना स्वाभाविक है। इसलिये समकालीन समाज अपने आप में ऐसे नागरिकों के विकास के अवसर नहीं उपलब्ध कराता है। ऐसी स्थिति में हमारे सामने एक मात्र संसाधन यही है कि हम अपने स्कूलों में सावधानीपूर्वक ऐसे समाज का ताना-बाना बुनें। इसका कारण यह है कि स्कूल को सामाजिक रूप से पवित्र माना जाता है। यह ऐसा स्थान है जिसमें एक राष्ट्र का भविष्य निवास करता है। अगर ऐसा है तो इसका अर्थ यही है कि स्कूल के पर्यावरण और प्रक्रियाओं में हमारे राष्ट्र के आदर्शों की झलक मिलना ज़रूरी है। और, मैं यह महसूस करता हूं कि एक राष्ट्र के मूल्यांकन के लिये उसके स्कूलों की स्थिति के मूल्यांकन से बेहतर कोई तरीका नहीं है, और हम ऐसा ही करेंगे।

ख़तरे के कारण

हमें मालूम है कि हम एक लोकतांत्रिक और समानता आधारित समाज चाहते हैं। हमारे लिये यह कल्पना करना सुरक्षित है कि हमारे सभी बच्चे, उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि चाहे जैसी भी हो अथवा उनकी आंतरिक क्षमता जैसी भी हो, उनके लिये

गुणवत्तापूर्ण स्कूलों तक एक समान पहुंच सुनिश्चित होना चाहिए। वास्तव में हम समाज में जितना अधिक अलगाव देखते हैं उतना ही हम अपने स्कूलों में भी देखते हैं। हमारे चारों ओर ऐसा होना निश्चित है। मेरे कार्यस्थल के दो किलोमीटर की परिधि के भीतर ऐसे बच्चे हैं जो स्कूल जाते हैं। उस स्कूल में टिन की छप्पर तो है पर एक भी शिक्षक नहीं। इसका कारण यह है कि ये बच्चे प्रवासी मज़दूरों के परिवारों से हैं जो निर्माण स्थलों पर काम करते हैं। वहां एक नगरपालिका स्कूल है जहां शिक्षकों और कक्षाओं की कमी है। वहां एक अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल भी है, जो अपनी 'विश्वसनीय' स्कूल बस सेवा के साथ अपने आप को अलग करता है। वहां एक वैकल्पिक स्कूल है, जो अत्यंत संपन्न परिवार के बच्चों के लिये है, और इसके बाद एक इंटरनेशनल स्कूल भी है, जिसमें जिमनेजियम और घुड़सवारी की कक्षाएं आयोजित की जाती हैं, क्योंकि वहां पढ़ने वाले बच्चे आने वाले कल के नेता हैं। इस प्रकार की आश्चर्यजनक असमानता के बावजूद इन सभी स्कूलों के लिये बच्चा और पठन-पाठन एक साझा वस्तु है। ये बच्चों को धातु को चमकाने वाले पाउडर के रूप में देखते हैं और इसलिये शिक्षकों का छात्रों के साथ संबंध भी वैसा ही है, जैसा कुम्हार का संबंध मिट्टी के साथ होता है। इसका अर्थ यह है कि बच्चों के दिमाग में शब्दों, संख्याओं, फॉर्मूले और परिभाषाएं इस प्रकार स्थापित किए जाएं कि उनकी याददाशत और क्षमता के आधार पर पूर्व निर्धारित उत्तरों द्वारा शिक्षण की सर्वोत्कृष्ट पद्धति का पता चले। इसके बाद इस पूरी प्रक्रिया को बोर्ड परीक्षा द्वारा मान्यता दी जाती है, जो अपनी जांच द्वारा बच्चों के बीच ऊंची और स्वस्थ प्रतियोगिता कायम करती है।

अगर भारतीय शिक्षा की यही स्थिति है तो हमारे लिये सचेत होने की ज़रूरत है और इसके लिये हमारे लिये बढ़-चढ़ कर काम करना भी ज़रूरी है।

एक अच्छा स्कूल

इसके लिये किस प्रकार की कार्रवाई की ज़रूरत है इसे समझने के लिये हमारे लिये अपने देश के स्कूलों के स्वरूप को समझने की ज़रूरत है।

निश्चित तौर पर हमारा पहला कदम कक्षाओं तक हमारे सामाजिक आदर्शों को पहुंचाने का है। स्कूल के संदर्भ में बहुलतावाद, समानता, भागीदारी, चर्चा और धारण क्षमता का क्या अर्थ है? बहुलतावाद का अर्थ यह है कि शिक्षक और छात्र जो स्कूल के नागरिक हैं, उन्हें समाज में मौजूद विभिन्न प्रकार के लोगों, जैसे - गुरीब, धनी, हिंदू, मुसलमान, लंबा, छोटा, विकलांग, दुखी, सुखी, तेज़-तर्रा, युवा, बृद्ध, परिहासजनक लोग आदि के साथ समुचित रूप में पूरी सरलता के साथ प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

और, इस भेरे-पूरे परिदृश्य के भीतर हमें समानता की शर्त लागू करनी चाहिए। चाहे आप कोई भी हों, स्कूल की दीवारों के भीतर किसी भी दूसरे व्यक्ति की तुलना में बड़े अथवा छोटे नहीं हैं और छात्र शिक्षक के अधीन नहीं हैं। गणित के एक अच्छे छात्र को कला के एक कमज़ोर छात्र की तुलना में बेहतर नहीं माना जाना चाहिए।

अगर इसे समानुभूतिपरक विमर्श अथवा अंतर्क्रिया की प्राथमिकता प्रक्रिया के आवरण में रख कर देखें तो एक नयी अध्यापन कला उभर कर सामने आती है जहां छात्र और शिक्षक एक साथ मिलकर अपने बारे में पढ़ताल करने में सक्षम होने के साथ-साथ खुद को तलाशने तथा अपने आसपास की दुनिया को तलाशने में सक्षम होंगे। अगर हमारे स्कूल भी हमें यह बताने में सक्षम हों कि अपने पर्यावरण और अपनी पारिस्थितिकी के साथ हम किस प्रकार सामंजस्यपूर्वक रहें तो वैसे स्कूल हमारे लिये अनुकरणीय होंगे।

अगर हम अपनी आंखें खोलकर देखें तो पाएंगे कि मैंने जिस प्रकार के स्कूल का वर्णन किया है, वह मनगढ़त नहीं है। वास्तव में यह

हमारी दुनिया में मौजूद और हमें प्रेरित करने वाले अनुकरणीय स्कूलों का पुनर्सृजन भर है। इन स्कूलों में रवींद्रनाथ टैगोर का शांति निकेतन और गांधीजी के बेसिक स्कूल शामिल हैं। इन स्कूलों ने अन्य स्कूलों को प्रेरित किया और समाज के समकालीन पथ प्रदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभाई। जैसे - राजस्थान में दिगंतर, बंशलुरु में सेंटर फॉर लर्निंग, आंध्र प्रदेश में ऋषि वैली, केरल में कनावु और कई अन्य ऐसे स्कूल जो हमारे आसपास निरंतर उदित हो रहे हैं।

भारत की महान पैदावार

यद्यपि हमारी उम्मीदें स्कूलों से जुड़ी हैं, फिर भी हमें से अधिकांश ने भारतीय स्कूल प्रणाली को प्रभावित करने की दिशा में थोड़ा-बहुत ही काम किया है। इस स्थिति में सुधार तभी हो पाएगा जब हमें से प्रत्येक व्यक्ति एक शिक्षक, एक माता-पिता और समुदाय के सदस्य के रूप में इसकी मांग को अपना लक्ष्य बनाएंगे और उस दिशा में बदलाव के लिये काम करेंगे। हमारे लिये यह जानना ज़रूरी है कि मूक दर्शक बने रहकर अथवा अपने आसपास की स्थितियों को अपनी कार्रवाइयों का नियंत्रण और निर्धारण करने की अनुमति देकर हम न केवल चीज़ों को अपने रास्ते पर ही छोड़ देते हैं, बल्कि मुद्दे के प्रति योगदान भी करते हैं।

हम अपने पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी हैं और यदि मैं और आप इसमें विशिष्टता लाने की जिम्मेदारी अपने-अपने कंधों पर नहीं लेंगे तो हमारे भविष्य में कोई फ़र्क कैसे आएगा? अगर हम आज एक शैक्षिक क्रांति देख पाते हैं तो मुझे उम्मीद है कि हम एक विशिष्ट भारत को देख पाएंगे - एक वैसा भारत जो हमारे आदर्शों के अनुरूप निरंतर उत्कर्ष की ओर अग्रसर हो। हमें से प्रत्येक के लिये अब उठकर खड़े होने का समय आ गया है ताकि हमारी पहचान बने और फिर, जल्द ही भारत की महान पैदावार के लिये उचित समय आ जाएगा। □

(लेखक विप्रो के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं)

"दर्शनशास्त्र के साथ तैयारी के प्रारम्भिक वर्षों में ही सफलता पाई जा सकती है, यदि अध्ययन की नींव ठीक रखी गई हो एवं मार्गदर्शन सटीक हो।"

गजब का है गोविन्द



"दर्शनशास्त्र की कोई पृष्ठभूमि नहीं होने के बावजूद धर्मेन्द्र सर के मार्गदर्शन ने मुझे इस विषय में विश्वास जगाया। मेरी सफलता में उनका सतत प्रोत्साहित करने वाला मार्गदर्शन निःसंदेह उपयोगी सिद्ध हुआ।"

Govind Jaiswal (Rank 48)

प्रथम	देश भर में हिन्दी माध्यम में
प्रयास	दर्शनशास्त्र के साथ सर्वोच्च स्थान

शैक्षणिक पृष्ठभूमि - **B.Sc** (उम्र - 22½ वर्ष)

"मुझे दर्शनशास्त्र की अभियंति क्षमता के विकास में 'पतंजलि' संस्थान के श्री धर्मेन्द्र सर का मार्गदर्शन उपयोगी सिद्ध हुआ।"



Deepak Anand (Rank 55)

प्रथम	भारत का युवा सफल प्रतियोगी
प्रयास	

निबन्ध A Complete Study Programme

... जानिये उनके द्वारा जिन्होंने निबन्ध में बेहतरीन अंक प्राप्त किये हैं।

(अगस्त, प्रथम सप्ताह-2007)

पत्राचार कार्यक्रम (दर्शनशास्त्र मुख्य परीक्षा)

दर्शनशास्त्र (मुख्य परीक्षा) से संबंधित सम्पूर्ण सामग्री अब अपने परिष्कृत रूप में उपलब्ध है। इसमें वैसे सभी अध्यायों की भी समुचित एवं क्रमवार विवेचना की गई है जिस पर प्रमाणिक सामग्री सहजत से उपलब्ध नहीं है, जैसे ईश्वर की धारणाएँ, ईश्वरविहीन धर्म, वैज्ञानिक मनोवृत्ति, लिंग समानता, परिस्थितिकी दर्शन आदि। पत्राचार सामग्री को प्राप्त करने के लिए अपेक्षित राशि का दिल्ली में भुगतान योग्य बैंक ड्राफ्ट "PATANJALI IAS CLASSES" के नाम में। - पत्राचार कार्यक्रम का शुल्क : 4100/-

सर्वाधिक लोकप्रिय, अंकदारी एवं सशक्त विषय

उनके लिए - जो सिविल सेवा की तैयारी प्रारम्भ कर रहे हैं और उनके लिए भी जो सुधार चाहते हैं।

दर्शनशास्त्र

द्वारा - **धर्मेन्द्र कुमार**

तृतीय स्वतंत्र बैच

1 अगस्त

(परिचर्चा के साथ कक्षा प्रारम्भ)



Anchal
Khandelwal
(201 Rank)

Shailesh K. Chourasia
(44 Rank)



R.P. Maurya
(251 Rank)

Aslam Khan
(282 Rank)



Ajeet Kumar
(302 Rank)
प्रथम प्रयास
भारत का युवा सफल प्रतियोगी

Shradha Joshi
(297 Rank)



Saroj Kumar
(356 Rank)

Inder Solanki
(369 Rank)



Pankaj Kr.
Singh
(374 Rank)

Satyapal S.
Meena
(447 Rank)

नामांकन प्रारम्भ

2580, Hudson Line,
Kingsway Camp, Delhi-9

Phone : 011-32966281
Mob. : 9810172345

YH/8/7/4

योजना, अगस्त 2007

1857 पर कुछ हिंदी पत्रिकाओं के विशेषांक

आज की चुनौतियों को समझने की कोशिश

○ श्याम सुशील

भारतीय इतिहास में 1857 का महत्व असंदिग्ध है। वरिष्ठ इतिहासकार विपिन चंद्रा का तो कहना है कि 1857 के संग्राम का महत्व न तो आज के मॉर्डन इंडिया में कम हुआ है और न ही कभी हो सकता है। इसकी प्रासंगिकता आज भी बरकरार है। क्या यह कम बड़ी बात है कि इस संग्राम के बाद परिस्थितियों और भारतीय जनमानस में एक ऐसा बदलाव आया है कि आज हम एक स्वतंत्र राष्ट्र हैं। इसने भारतीयों को फिरंगी सरकार के खिलाफ एक जुट होने का नायब मौका प्रदान किया था। इस संग्राम का महत्व इसलिये है कि यह विदेशी राज और प्रभाव से मुक्त होने की एक छठपटाहट थी और इसमें हम भारत की साझी विरासत को मूर्त रूप लेते देख सकते हैं।

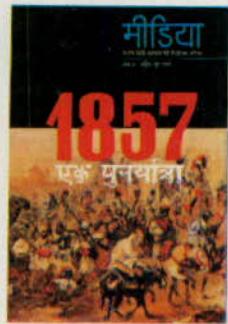
प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857) के एक सौ पचास साल पूरे होने के अवसर पर हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अपने विशेषांक प्रकाशित करके 1857 के महत्व और उसके दूरगामी परिणामों की रोशनी में आज की चुनौतियों को भी समझने की कोशिश की है। यहां हम कुछ चर्चित विशेषांकों के बारे में जानकारी दे रहे हैं। समाचार, विचार और संस्कृति का मासिक समयांतर का फरवरी, 2007 अंक '1857 और बदलाव का विमर्श' पर केंद्रित है। पत्रिका के संपादकीय '1857 इतिहास का वर्तमान' में विशेष रूप से इस बात पर चर्चा की गई है कि भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम के अपने सबक हैं, और जो, स्वतंत्रता संग्राम की बंजर अकादमिक

बहसों से कई गुना ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इन्हें 150वाँ वर्षगांठ के अवसर पर याद कर लेना ज़रूरी है। यह इसलिये भी सामयिक महत्व का है कि नव उपनिवेशवाद या नव साम्राज्यवाद आज जिस तरह से उभर रहा है वह कई तरह की चिंताएं और समस्याएं खड़ी कर रहा है। 'भूमिपुत्र के संग्रामी तेवर' आलेख में वैधव सिंह ने आमजन, किसानों और भारतीय सिपाहियों को इस जन विद्रोह का नायक बताते हुए स्पष्ट किया है कि इस विद्रोह का नेतृत्व भले ही कई जगह राजाओं और बड़े सामंतों ने किया हो, लेकिन इसके असली नायक या तो गांव में काम करने वाले किसान थे, या फिर ईस्ट इंडिया कंपनी के वे सिपाही जिनके तन पर वर्दी भले ही हो लेकिन उनके भीतर किसानी चेतना ही छिपी थी। 19वाँ सदी के अकाल-भुखमरी से जूझते किसान की तरह आज भी किसान से अधिक उत्पीड़ित वर्ग कोई नहीं, लेकिन उसकी पीड़ा पर ध्यान देने वाला आज भी कोई नहीं है। 1857 में भले ही आम सिपाही और किसान सामंतों के साथ खड़े दिखाई दे रहे हों, लेकिन उसके आगे-पीछे 25-30 सालों में वे सामंतों व महाजनों से लड़ते भी दिखाई देते हैं। 1862-76 का बंगाल में भड़का पाबना विद्रोह और 1875 में पूना और आसपास के इलाकों में भड़का दक्कन विद्रोह इसकी मिसाल हैं कि किस प्रकार गांव के किसान स्थानीय महाजनों और जर्मांदारों के चंगुल से छूटने के लिये छठपटा रहे थे। इस पूरी सदी में देश के कोने-कोने में

जिस तरह आदिवासियों के विद्रोह अंग्रेजों और सामंतों की संयुक्त शक्ति के खिलाफ़ फूटे, उससे लगता है कि देश में राजनीतिक चेतना नयी करवटें ले रही थी।

समयांतर के इस अंक में 'अंग्रेजी राज भारतीय समाज और विज्ञान' (दीपक कुमार), 'दलितों की भागीदारी' (सुनीता जोशी) और '1857 का आर्थिक विमर्श' (अशोक कुमार पांडेय) लेख काफी महत्व के हैं। आर्थिक विमर्श में ब्रिटिश शासक वर्ग के चरित्र को समझने के साथ-साथ 1757 से 1857 के बीच ब्रिटिश शासन के भारत पर पड़े आर्थिक प्रभावों तथा उसके प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से रिश्तों की गहराई से पड़ताल की गई है। अशोक कुमार पांडेय लिखते हैं कि भले ही 1857 के विद्रोह का तात्कालिक कारण चर्बी लगे कारतूस रहे हों पर इसके मूल में 100 सालों की अंग्रेजी लूट-खोट, भ्रष्टाचार, बर्बर उत्पीड़न तथा जनविरोधी आर्थिक नीतियों के चलते कृषि, उद्योग तथा व्यापार की भयंकर तबाही से उपजा असंतोष था। यही कारण था कि सदियों से शासन व्यवस्था के परिवर्तनों से असंबद्ध रहे किसानों ने अंग्रेजों के खिलाफ़ इस विद्रोह में न केवल बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया अपितु एक हद तक नेतृत्वकारी भूमिका भी निभाई।



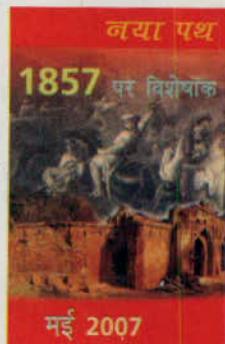


केंद्रीय हिंदी संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका मीडिया के दूसरे अंक (अप्रैल-जून, 2007) का केंद्रीय विषय '1857: एक पुनर्जाता' है। इस अंक के अतिथि संपादक रवींद्र त्रिपाठी डेढ़ सौ साल बाद 1857 को याद करते हुए 2007 में एक और शुरुआत की बात करते हैं। वे कहते हैं कि कुछ इतिहासकार 1857 को उस नव-साम्राज्यवाद के खिलाफ़ एक प्रेरणास्रोत के रूप में देख रहे हैं जिनके शिकार आज के गैरपश्चिमी देश हो रहे हैं। यानी डेढ़ सौ साल बाद वक्त फिर से बदल रहा है। सामान्य जन में 1857 फिर से लगभग वैसा ही ज़ब्बा पैदा कर रहा है जैसा उसने डेढ़ सौ साल पहले किया था। यह अंक भी उसी ज़ब्बे का नतीज़ा है। इस अंक के एक अन्य उद्देश्य के बारे में भी वे स्पष्ट करते हैं कि आज भी हमारे बीच ऐसे कई लोग मौजूद हैं जो उसी उपनिवेशवादी दृष्टिकोण के पक्षधर हैं जिनके कारण अंग्रेज़ों ने हिंदुस्तान पर दो सौ साल तक राज किया और जिसे आर.सी. मजूमदार और सुरेन्द्रनाथ सेन जैसे इतिहासकारोंने आधुनिकता का पर्याय समझ लिया था। उपनिवेशवादी ताक़तोंने जो मिथक बनाए थे उनकी रट आज भी कुछ लोग लगाए हैं। इसलिये यह आज भी ज़रूरी लगता है कि उन मिथकों को ध्वस्त किया जाए। इस दृष्टि से देखा जाए तो मीडिया के इस अंक में विभिन्न क्षेत्र के विद्वानों और लेखकों ने 1857 को परखने के परिप्रेक्ष्य में निस्संदेह कई नये आयाम जोड़े हैं। शंभुनाथ ने बहुत संक्षेप में इस अंक के बारे में कहा है कि समग्रता में यह अंक 1857 की शक्तियों और कमज़ोरियों की एक बहुआयामी समीक्षा है। 'राष्ट्रीय आंदोलन था 1857' (प्रभादीक्षित), 'क्यों और कैसे याद करें 1857 को?' (अरुण कुमार त्रिपाठी), एज़ाज अहमद, प्रो. इरफान हबीब, मंजूर एहतेशाम से बातचीत, 'मीडिया और 1857' पर हसन मोस्ना और ललित जोशी के आलेख, 'स्त्रियां और 1857' पर त्रिपुरारी शर्मा, वंदना मिश्र,

'दलित और 1857' (बद्रीनारायण), इनके अलावा अरविंद कुमार सिंह का खोजपूर्ण आलेख '1857 और भारतीय डाक-तार' इस अंक की उपलब्ध है।

जनवादी लेखक संघ की केंद्रीय पत्रिका नया पथ का मई 2007 का अंक 1857 पर विशेषांक है। यह विशेषांक 1857 की जंगे आज़ादी के तीन मुख्य पहलुओं पर केंद्रित है - इतिहास, कला और साहित्य। इतिहास के अंतर्गत मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का भाषण '1857 नये नज़रिये से देखने की ज़रूरत' के प्रकाशन के बारे में संपादक कहना है कि इंडियन हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन की 31वीं बैठक (मैसूर, 25 जनवरी, 1955) में दिए गए इस अध्यक्षीय भाषण का पुनर्प्रकाशन इसलिये आवश्यक है कि हम देखें कि एस.एन. सेन द्वारा तैयार किए गए सरकारी इतिहास और इसी मंत्रालय के कबीना मंत्री की मूलभूत मान्यताओं और दृष्टिकोणों में कितना फ़र्क था। एस.एन. सेन की किताब के प्रकाशन के बाद जो इतना भयंकर विवाद हुआ, वह होता ही नहीं यदि अबुल कलाम आज़ाद की सुस्पष्ट इतिहास-दृष्टि के संकेतों को ध्यान में रखकर 1857 की शतवर्षिकी पर वस्तुपरक ढंग से पहली ज़ंगे-आज़ादी का इतिहास लिखा जाता। अबुल कलाम की व्यापक इतिहास दृष्टि को समझने के लिये यह भाषण महत्वपूर्ण तो है ही और जिन लोगों ने एस.एन. सेन की किताब पढ़ी होगी, उनके लिये भी इस भाषण को पढ़ना काफ़ी दिलचस्प होगा।

नया पथ के इस अंक में काफ़ी सामग्री अनुवाद करके हिंदी में प्रस्तुत की गई है। '1857 की धरोहर' (पी.सी. जोशी), 'राष्ट्र, राष्ट्रीय चेतना और 1857 का विद्रोह' (बी.टी. रणदिवे), 'इतिहास दृष्टियों का नया आकलन' (सव्यसाची भट्टाचार्य), 'द लास्ट मुग्ल एक मूल्यांकन' (नलिनी तनेजा) आदि रचनाएं जानकारी के लिहाज़ से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं।



कला खंड में 'नाटक और रंगमंच के आईने में 1857' (देवेन्द्रराज अंकुर) '1857 और हिंदी सिनेमा' (जवरी मल्ल पारख), 'बगावत के दौर की कलाकृतियाँ' (एस.पी. वर्मा), 'बगावत, तस्वीरें और हिंदुस्तान की तारीख' (नुज़हत काज़मी) और साहित्य खंड में '1857 और हिंदी नवजागरण' (मनमोहन), 'लोक चेतना में अठारह सौ सत्तावन' (खगेन्द्र ठाकुर), 1857 के दौर की कुछ नज़रें जगज़लें जिनमें बहादुरशाह जफ़र से लेकर ग़ालिब, ज़हीर देहलवी, मिर्ज़ा दाग, हाली आदि शामिल हैं। राश्मि चौधरी द्वारा प्रस्तुत लोकविद्यों की रचनाएं जिनमें बाबू कुंभर सिंह पर मनोरंजन प्रसाद सिंह तथा हरेंद्रदेव नारायण के गीत लोक चेतना से भरपूर हैं। 1857 के संदर्भ में कुमार अंबुज, दिनेश कुमार शुक्ल, सुल्तान अहमद की कविताएं और योगेंद्र आहूजा, मैत्रेयी पुष्पा, विमल कुमार की कहानियाँ विशेष रूप से पठनीय हैं।

उद्भावना का 75वां अंक (अप्रैल-जून, 2007) '1857 निरंतरता और परिवर्तन' शीर्षक से आया है। पांच सौ बहतर पृष्ठ का यह भारी-भरकम अंक



बहुत मेहनत, सूझबूझ और बड़े मन से किया गया है। अंक की शुरुआत असद ज़ैदी की कविता '1857 : सामान की तलाश' की इन पंक्तियों से होती है : '1857 की लड़ाइयाँ जो बहुत दूर की लड़ाइयाँ थीं/ आज बहुत पास की लड़ाइयाँ हैं।' इस पत्रिका के अतिथि संपादक प्रदीप सक्सेना हैं, जिनका नज़रिया एकदम स्पष्ट है। उन्होंने अपने संपादकीय में साफ़ कर दिया है कि हमारा 1857 को महिमा मंडित करने का कोई इरादा नहीं है। लेकिन उसका अवमूल्यन भी हमको स्वीकार नहीं है। वस्तुनिष्ठा का तकाजा है कि हम चीज़ों को उनके सही नाम से पुकारें। हो सकता है कि 1857 फ़ांस की क्रांति या रूस की क्रांति से तुलनीय न हो लेकिन यह अपनी तरह की भारतीय क्रांति तो थी। उसके चरित्र की व्याख्या

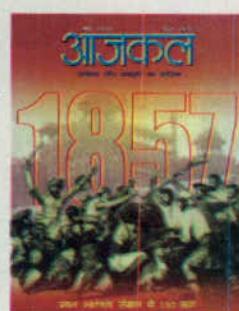
की जानी चाहिए। अगर वह महज एक घटना भी थी तो बताया जाना चाहिए कि दो साल तक चलने वाली यह घटना ज्वालामुखी की तरह क्या ऐसा लावा नहीं निकालती रही जिसने विदेशी साम्राज्य के लूट और दमन के अवाध प्रयत्नों को जलाकर खाक कर दिया और देशप्रेम की उन चिंगारियों को आकाश में फेंकती रही, जिनकी परिणति 1947 में हुई।

उदभावना के अतिथि संपादक का यह कहना कर्तई सही है कि हर देश में संघर्ष का इतिहास ही अगले संघर्ष की आधारशिला होता है। संघर्ष की श्योरियां कहीं की हों, प्रेरणाएं अपनी ही जनता के संघर्षों से आती हैं। कोई भी राष्ट्र इन प्रेरणाओं के बिना चल नहीं सकता। लेकिन जब इन प्रेरणाओं पर धूल पड़ी हो तो बुद्धिजीवी वर्ग का यही काम है कि वह इन प्रेरणाओं पर पड़ी धूल को पोछ दे ताकि राष्ट्र उसमें अपनी छवि को साफ़-साफ़ देख सके।

सन सत्तावन के शहीदों को समर्पित यह अंक दस खंडों में बंटा हुआ है। पहले खंड में सर सव्यद अहमद खां और मिर्जा ग़ालिब पर विशेष सामग्री है। दूसरे खंड में विनायक दामोदर सावरकर, जवाहरलाल नेहरू और मन्मथनाथ गुप्त की कलम से 1857 के महाविद्रोह को प्रस्तुत किया गया है। तीसरा खंड 'बहस की रोशनी' शीर्षक के अंतर्गत है जिसमें कार्ल मार्क्स, आर.सी. मजूमदार, सुंदरलाल, रामबिलास शर्मा, पी.सी. जोशी, विनय घोष और जेम्स ब्रायन का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। अन्य खंडों में '1857 का संग्राम और शूद्र-अतिशूद्र' (सुभाष गताडे), 1857 का विद्रोह और आदिवासी' (के.एस सिंह), '1857 की गाली' (दूधनाथ सिंह), 'भारतीय नवजागरण और इतिहास लेखन' (लाल बहादुर वर्मा), '1857 और हिंदी नवजागरण' (विजेन्द्रनारायण सिंह), 'हिंदोस्तान का विद्रोह अथवा नयी दुनिया' (अर्नेस्ट जॉन्स) तथा 'माई इंडियन म्युटिनी डायरी' (विलियम हॉवर्ड रसेल) आदि को पढ़कर हम 1857 और उसके बाद की निरंतरता और परिवर्तन को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। अंतिम खंड करीब 35 ऐसे दुर्लभ चित्रों का है, जिसमें हम 1857 के नायक-नायिकाओं और विद्रोही सिपाहियों के साथ-साथ खलनायकों की भी झलक पा सकते हैं। कुल

मिलाकर यह अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है।

साहित्य और संस्कृति का मासिक आजकल का मई, 2007 का अंक '1857 के स्वतंत्रता संग्राम पर विशेषांक' के



रूप में प्रकाशित हुआ है। संपादकीय में इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है कि सन 1857 का विद्रोह सिर्फ़ सिपाहियों का या राजा-रजवाड़ों का विद्रोह न होकर एक जन-विद्रोह था। इनमें स्वर्ण भी थे और दलित भी। आदिवासियों की भूमिका भी कुछ कम नहीं थी। इसमें मज़दूर, किसान, जर्मांदार और व्यापारी सभी ने अपना-अपना योगदान किया। इसमें शाही जनता ने ही भाग नहीं लिया बल्कि दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों ने भी पूरे तन-मन से अपना सहयोग दिया। इसमें छोटे-बड़े का कोई अंतर नहीं था। इसमें बहादुरशाह जफ़र, लक्ष्मीबाई, नाना साहब, तात्या टोपे, कुंवर सिंह जैसे सामंत थे तो झलकारी बाई जैसी आमजन भी थीं। इन सबने मिलकर स्वतंत्रता संग्राम के इस महायज्ञ में अपनी-अपनी आहुति दी। आजकल के इस अंक में '1857 की जनक्रांति की प्रासंगिकता' तथा '1857 की जनक्रांति के आयाम' विषय पर दो परिचर्चा का आयोजन किया गया है जिसमें मैनेजर पांडेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, सुधीश पचौरी, पुरुषोत्तम अग्रवाल, अनिल चमड़िया, प्रेमपाल शर्मा, रमणिका गुप्ता, अरुण त्रिपाठी, कंवल भारती आदि ने हिस्सा लिया है। डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार, 1857 के विद्रोह का सारतत्व है साम्राज्यवाद का विरोध। जो चेतना से जुड़ा नहीं होगा, वह 1857 के विद्रोह के व्यक्ति साम्राज्यवादी विरोधी महत्व को समझ ही नहीं सकता। सुधीश पचौरी कहते हैं कि 1857 की विफलता से उसका मोल कम नहीं हो जाता। इतिहास की तमाम क्रांतियां और विद्रोह विफल ही रहे हैं। विद्रोहों की विफलता भी बड़ी चीज़ों को पैदा करनेवाली होती है। हिंदुस्तान में आधुनिकता भी 1857

की कोख से पैदा हुई। प्रेमपाल शर्मा को मौजूदा भारत की तस्वीर में एक बार फिर 1857 से पहले की स्थितियों का अहसास हो रहा है। वे कहते हैं कि तब विदेशी ताक़तें राजनैतिक साम्राज्यवाद के इरादे से देश की इंच-इंच ज़मीन पर कब्ज़ा कर रही थीं तो आज आर्थिक साम्राज्यवाद के लिये चप्पे-चप्पे पर मंडरा रही हैं। जाति, धर्म, नवाब, मुगल, मराठा, जाट जैसे हज़ारों खानों में बंटा भारतीय समाज न तब उनका सामूहिक प्रतिरोध कर पाया, न आज।

'स्वाधीनता संग्राम और विश्वासघात' (हरिकृष्ण देवसरे), लाल किले के निर्माता लाल किले में पैर नहीं रखते' (इब्बार रब्बी), 'स्वतंत्रता संग्राम नये दृष्टिकोण की आवश्यकता' (रामशरण जोशी), 'संगठित प्रतिरोध का जन ऐतिहासिक संदर्भ, (देवेंद्र चौबे), '1857 की क्रांतिकारी महिलाएं' (विभा देवसरे) आदि लेख कुछ नयी जानकारियों को हमारे सामने लाते हैं। गुणाकर मुले ने विष्णुभट्ट गोडसे की मराठी पुस्तक माझा प्रवास का विस्तार के साथ परिचय प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक न केवल तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर, बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकारों पर भी प्रचुर प्रकाश डालती है। '1857 के यादगार सिक्के' भी अपनी किस्म का अलग लेख है जिसमें संजय गर्ग ने बहादुरशाह जफ़र के नाम के सिक्के के बारे में रोचक जानकारी दी है। □

(समीक्षक स्वतंत्र पत्रकार है)

1857 पर केंद्रित चर्चित पत्रिकाएं

- मीडिया (अप्रैल-जून, 2007), अतिथि संपादक : र्वॉड्र त्रिपाठी; केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र, मूल्य : 40 रुपये।
- नया पथ (मई 2007), संपादक : मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चैहान; 8 विद्युलभाई पटेल हाउस, नयी दिल्ली - 110001, मूल्य : 50 रुपये।
- उदभावना (अप्रैल - जून, 2007), अतिथि संपादक : प्रदीप सक्सेना; एच-55, सेक्टर 23, राजनगर, गाँजियाबाद; मूल्य : 150 रुपये।
- आजकल (मई, 2007), प्रभारी संपादक : योगेन्द्र दत्त शर्मा; प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोटी रोड, नयी दिल्ली - 110003; मूल्य : 20 रुपये।
- समयतर (फरवरी, 2007), संपादक : पंकज बिष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली - 110095, मूल्य : 25 रुपये।



CENTRAL
WAREHOUSING
CORPORATION



सम्पूर्ण गुणवत्ता हमारी वचनबद्धता:

उपलब्धियों के 50 स्वर्णिम वर्ष



1. मिनी रत्न श्रेणी-1 का एकल प्रबंधन के अधीन भारत का विशालतम वेअरहाउसिंग नेटवर्क



2. 10.3 मिलियन टन भंडारण क्षमता के 515 वेअरहाउसों का परिचालन



3. कष्टि उत्पादों से लेकर परिस्कृत औद्योगिक उत्पादों सहित 400 से भी अधिक वस्तुओं के लिए वेअरहाउसिंग सेवाएं



4. लाखों नियातिकों तथा आयातकों के लिए 30 कंटेनर फेट स्टेशन तथा अंतर्राष्ट्रीय किलेअरेंस डिपुओं का परिचालन



5. बन्दरगाहों तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्टेशनों पर अपने 95 बाण्डेड वेअरहाउसों पर बांडेड वेअरहाउसिंग सुविधाएं



6. भारत में सबसे बड़ा पैस्ट नियंत्रण ऑपरेटर



7. भारतीय रेल के साथ एक रणनीतिक समझौते के अधीन 22 रेल साइड वेअरहाउसों की स्थापना में संलग्न



8. लोनी तथा जे.एन.पी.टी. के बीच कंटेनर रेलगाड़ियों का परिचालन



9. मॉटोरिंगियों, उर्ध्वे में वेअरहाउस का परिचालन तथा फिलिपाइन एवं बुलगारिया में प्रबंधन वेअरहाउसिंग सुविधाएं सूजित करने पर विचार चल रहा है



कॉरपोरेट कार्यालय:

केन्द्रीय भण्डारण निगम

(भारत सरकार का उपक्रम)

4/1, सीरी इंस्टीच्यूशनल एरिया, अगस्त क्रांति मार्ग, (खेल गांव मार्ग), हौजखास, नई दिल्ली-110 016

टेलीफोन नं: 26566107 फैक्स: 26967844, 26518031

E-mail: warehouse@nic.in website: www.cewacor.nic.in

अहमदाबाद, बंगलौर, भोपाल, भुवनेश्वर, चण्डीगढ़, चेन्नई, दिल्ली, गुवाहाटी, हैदराबाद, जयपुर, कोलकाता, लखनऊ, मुम्बई, नवी मुम्बई, पंचकुला, पटना

क्षेत्रीय कार्यालय:

RAU'S IAS

A name that Nation trusts

Amazing Success

Our 2005 Exam Results : Nine positions secured by our students in first 20 and 49 in first 100 with overall 203 total selections. As regards the past achievements, Study Circle has contributed nearly one-third of the total selections done for Civil Services by UPSC since 1953.

It is a well known fact that Rau's is the most trusted and recommended name all over the country for IAS & PCS coaching.

Unbeatable Strategy

Answers that matter : The most crucial fact about coaching is that it should improve the quality of your answers in the minimum possible time. It is precisely this training on which we focus on at Rau's to give an extra edge to the answers you give / write in the Civil Services Examination.

Be Sure

We have no branches or associates anywhere in India except Jaipur. Our name which has become a legend among students for the highest standards in teaching, and hence has been copied by a lot of people across India, but no one can match our quality.

**If you are taught by
the stars, sky is the limit.**

New batches for 2008 Exam, start from 1st June, 2007

Admission Open, Apply Now.

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO of Rs. 50/- favouring



Head Office : 309, Kanchanjunga Bldg., 18, Barakhamba Road, Connaught Place, New Delhi-110001
Phone : 23738906-07, 23318135-36, 32448880-81, 65391202, Fax: 23317153

Jaipur Centre : 701, Apex Mall, Lal Kothi, Tonk Road, Jaipur - 302015, Ph.: 0141-6450676, 3226167, 9351528027

For full details on fast-track log-on our website: www.rauias.com

The Original Rau's - Since 1953

प्रकाशक व मुद्रक वीणा जैन, निदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिये अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, डब्ल्यू-30, ओखला औद्योगिक क्षेत्र फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। कार्यकारी संपादक : राकेशरेणु

क्या आप

बैंक प्रोबेशनरी ऑफीसर

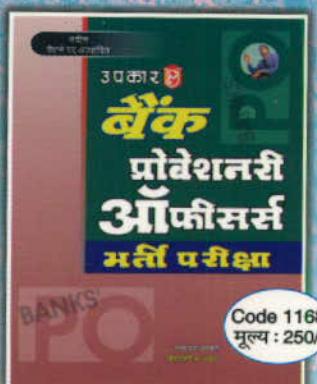
य दी क्षा में
सम्मिलित हो रहे
हैं, तो पढ़िए...

उपकार
की पुस्तकें

योग्य एवं अनुभवी लेखकों द्वारा
लिखित पुस्तकें जो आपको
महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी विषय-वस्तु
उपलब्ध कराने के साथ-साथ
परीक्षा में आपका उचित
मार्गदर्शन भी करेंगी।

उपकार की पुस्तकें
सर्वश्रेष्ठता का विकल्प नहीं

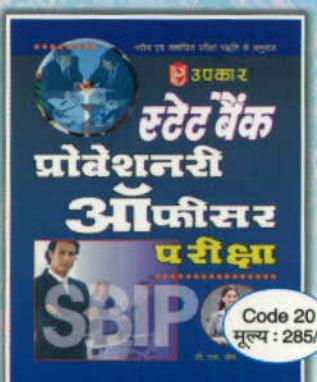
पिछले वर्षों
के हल
प्रश्न-पत्रों
सहित



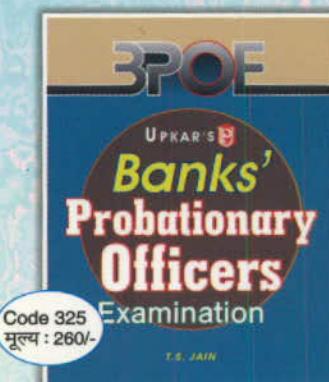
Code 1168
मूल्य : 250/-



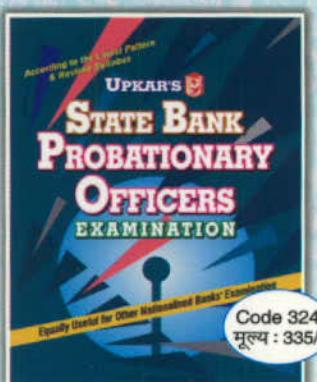
Code 1152
मूल्य : 265/-



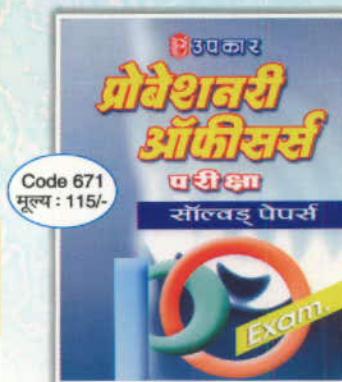
Code 20
मूल्य : 285/-



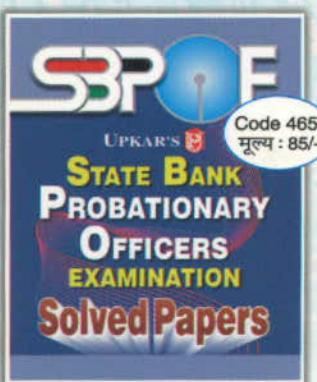
Code 325
मूल्य : 260/-



Code 324
मूल्य : 335/-



Code 671
मूल्य : 115/-



Code 465
मूल्य : 85/-



उपकार प्रकाशन 2/11 ए. स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : 2531101, 2530966, 3208693/4; फैक्स : (0562) 2531940
(An ISO 9001:2000 Company) • E-mail : info@upkarprakashan.com • Website : www.upkarprakashan.com

नांच ऑफिस : 4840/24, गोविन्द लेन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, फोन : 23251844/66